गायत्री सिद्धि

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो
देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्

गायत्री सिद्धि

(गायत्री द्वारा सुप्त शक्ति केन्द्रों को जाग्रत करने के प्रामाणिक विधान)

लेखक :

डॉ० चमनलाल गौतम

रचयिता : शिव-रहस्य, मन्त्र योग से रोग निवारण, मन्त्र शक्ति से रोग निवारण, ओंकार सिद्धि, कामना सिद्धि, प्राणायाम के असाधारण प्रयोग, योगासन, तन्त्र विज्ञान, तन्त्र रहस्य, तन्त्र महाविद्या, तन्त्र महासिद्धि आदि ।

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजाकुतुब, (वेद नगर) बरेली-२४३००३ (उ०प्र०)

फोन नं० ७४२४२

प्रकाशक :
डॉ० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)
बरेली-२४३००३ (उ० प्र०)
फोन : ७४२४२

●

लेखक :
डॉ० चमनलाल गौतम

●

●

संशोधित संस्करण
सन् १९९४

●

मुद्रक :
शैलेन्द्र बी० माहेश्वरी
नव ज्योति प्रेस
भीकचन्द मार्ग, मथुरा (उ० प्र०)
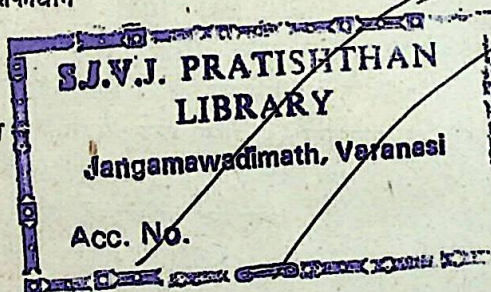
●

मूल्य :
चौबीस रुपये

भूमिका

गायत्री मन्त्र में २४ अक्षर होते हैं। मस्तिष्क हमारे शरीर और मन का नियन्त्रण केन्द्र है। इसके मूल से २४ ज्ञान तन्तु निकलते है जो सारे शरीर में फैल जाते हैं। यही शरीर की समस्त क्रियाओं का संचालन करते है। इन ज्ञान तन्तुओं का गायत्री के २४ अक्षरों से सूक्ष्म सम्बन्ध रहता है। जब गायत्री मन्त्र का उच्चारण किया जाता है तो योगियों को उसकी सूक्ष्म झंकार २४ स्थानों से सुनाई देती है। उस झंकार से यह ज्ञानतन्तु सशक्त होते हैं और निरन्तर क्रियाशील रहते हैं जिससे साधक हर क्षेत्र में दक्षता प्राप्त करता हुआ प्रगति पथ पर अग्रसर होता रहता है।

योगाचार्यों के अनुसार हमारे सूक्ष्म शरीर में ऐसे योगिक केन्द्र ग्रन्थियाँ, चक्र आदि होते हैं, जो साधारणः सुप्त अवस्था में रहते हैं परन्तु उनको जाग्रत कर लेने से साधक महान शक्तिशाली बन जाता है। गायत्री मन्त्र के अक्षरों का गठन इस चमत्कारी ढङ्ग से हुआ हैं कि एक के बाद एक अक्षर क्रमशः उन सूक्ष्म ग्रन्थियों पर आघात करता है उन्हें जगता हैं। यह ग्रन्थियाँ ही शक्ति का स्रोत मानी जाती हैं। इन्हीं के जागरण से योगी अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं। गायत्री भी एक ऐसा सरल योग है जो साधक को एक शक्ति केन्द्र के रूप में परिणत कर देता है। इन शक्ति केन्द्रों को जाग्रत करके साधक धन्य हो जाता है।

इस प्रकार से गायत्री साधक एक शक्तिपुंज बन जाता है। गायत्रीं मन्त्र के अक्षरों का गठन इस चमत्कारी ढङ्ग से हुआ है कि एक सामर्थ्य वाला हो जाता है। गायत्री के कौन से अक्षर से कौन सी शक्ति प्राप्त होती है। इनका विवरण इस प्रकार है :—पहले अक्षर से सफलता,

दूसरे से पुरुषार्थ, तीसरे से पालन, चौथे से कल्याण, पाँचवे से योग, छठे से प्रेम, सातवें से लक्ष्मी, आठवे से तेजस्विता, नवें से सुरक्षा, दसवें से बुद्धि, ग्यारहवें से दमन, बारहवें से निष्ठा, तेरहवें से धारणा, चौदहवें से प्राण, पन्द्रहवें से संयम, सोलहवें से तप, सत्रहवें से दूरदर्शिता, अठारहवें से जागरण, उन्नीसवें से सृष्टि, बीसवें से सरलता, इक्कीसवें से साहस, बाईसवें से पालन, तेईसवें से विवेक, चौवीसवें से सेवा भाव नाम की शक्तियों का उद्‌भव होता हैं। इन गुणों को पाकर वह क्षुद्रता से महानता और पशुता से देवत्व की भूमिका में कदम रखने का अधिकारी हो जाता है और अपने जीवन लक्ष्य को पूर्ण कर पाता है।

इन महान् शक्तियों के जागरण में स्वर विज्ञान का रहस्य छिपा है। स्वर में शक्ति होती है। उसके विधिवत् उच्चारण से मकान तक गिराये जा सकते हैं, अनेकों का उपचार किया जा सकता है, दूसरे के मन को मोहित किया जा सकता है। इसका प्रभाव मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी और कीट-पतङ्ग तक पर देखा गया है। मन्त्र में एक विशेष विधि से अक्षरों का गठन किया होता है जो उच्चारण काल में कुछ विशेष ग्रन्थियों को गुदगुदाते हैं, उनको जाग्रत करते हैं। वैज्ञानिक भाषा में यूँ कह सकते हैं कि जब गायत्री मन्त्र का जप किया जाता है, तो उसमें गुँथे अक्षरों के उच्चारण से कम्पन उत्पन्न होते हैं, जो विश्वव्यापी ईश्वर तत्व में फैल जाते और कुछ ही क्षणों में अपनी विश्व परिक्रमा करके अपने उद्‌गम स्थान पर लौट आते हैं। विश्वयात्रा के दौरान उनका अपने अनुकूल कम्पनों से मिलन होता है। अनुकूलता ही मिलन और संगठन का आधार है। अपने अनुकूल कम्पनों को वह अपने साथ लिये आते हैं जिससे शक्ति के विकास में सहायता मिलती हैं। गुप्त नाड़ी तन्तुओं में स्फुरण उत्पन्न होने से जो क्रम बद्ध यौगिक संगीत का प्रवाह ईश्वर तत्व में चलने लगता है, वही मन्त्र शक्ति का कारण बनता है।

पुराण शास्त्रों में अनेकों प्रकार की सिद्धियों का वर्णन है, लोक में भी योगियों द्वारा विविध प्रकार के चमत्कार देखने को मिलते हैं। यह सिद्धियाँ कोई दैवी वरदान नहीं है, न देवताओं के आशीर्वाद से प्राप्त होती हैं। यह तो मन्त्र उच्चारण से सूक्ष्म शरीर में जो वैज्ञानिक प्रक्रियाओं का प्रवाह चलने लगता है उसी का शुभ परिणाम है। गायत्री मन्त्र के सम्बन्ध में भी यही तथ्य लागू होते हैं। इस प्रकार से गायत्री मन्त्र का जप अनुष्ठान एक वैज्ञानिक साधना है जिससे सुनिश्चित परिणाम उपस्थित होते हैं।

गायत्री को वेदमाता, जगत्‌माता कहते हैं। इसकी सिद्धिदायक शक्तियों के कारण इसे गुरुमन्त्र, महानमन्त्र, महानतम जप, तप और साधना की सम्मानित उपाधियों से विभूषित किया गया है। यह सनातन अनादिकाल का मन्त्र है। पुराणों में कथा आती है सृष्टि का निर्माण करने वाले ब्रह्मा को आकाशवाणी से गायत्री मन्त्र प्राप्त हुआ था। साथ ही यह भी आदेश मिला कि इसी साधना से सृष्टि निर्माण की शक्ति प्राप्त होगी। ब्रह्मा ने दीर्घकाल तक गायत्री की तपश्चर्या की। तभी वह सृष्टि रचना करने में समर्थ हो सके। विश्वामित्र गायत्री मन्त्र के ऋषि हैं उन्होंने गायत्री मन्त्र की सर्वाधिक तपश्चर्या की थी। पुराण कथा के अनुसार उन्होंने अपने तप बल पर नई सृष्टि की रचना की थी। दूसरा अभिप्राय यह है कि विश्व में महानतम और कठिनतम कार्यों को सम्पादित करने की क्षमता गायत्री महाशक्ति में है। यदि विश्वामित्र ने घोर तप करके गायत्री की असाधारण शक्तियों को विकसित कर लिया तो आज भी कोई भी साधक अपेक्षित तप की अग्नि से जागृत करके जीवन निर्माण के कार्य में सफल हो सकता है भौतिक व आध्यात्मिक सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व सफलताएँ प्राप्त कर सकता है। गायत्री एक शक्ति है। जो इसको जगाने की विधि जानता है वह निश्चय ही सिद्धियों को प्राप्त होता है।

—चमन लाल गौतम

गायत्री सिद्धि की विषय-सूची

गायत्री सिद्धि

गायत्री उपनिषद्

प्रथम कण्डिका

एतद्धस्म एतद् विदां समेंकादशाक्षं।
मौदगल्य ग्लावो मैत्रेयोऽभ्याजगामः ।।

एकादशाक्ष मौद्गल्य के समीप ग्लाव मैत्रेय आये।

स तस्मिन् ब्रह्मचर्यं वसतीति विज्ञायोवाच।
कि स्विन्मर्या अयं तन्मौद्गल्योऽध्येति।
यदस्मिन्ब्रह्मचर्यं बसतीति।

मौद्गल्य के ब्रह्मचारी को देखकर और उसे सुनाकर ग्लाव ने (उपहास उड़ाते हुए) कहा कि—मौद्गल्य अपने इस ब्रह्मचारी को क्या पढ़ाता है अर्थात् कुछ नहीं पढ़ाता है।

तद्धि मौद्गल्यस्यान्तेवासी शुश्राव।
स आचार्ययाव्रज्या चचष्टे।

मौद्गल्य के ब्रह्मचारी ने इस बात को सुनकर अपने आचार्य के पास जाकर कहा—

दुरीधांयानं वा अयं भवन्तमवोचद्यऽयमघातिथिर्भवति।
जो आज अतिथि हुए हैं आपको उन्होंने मूर्ख कहा है।
कि सौम्य बिद्वानीति—
क्या वह विद्वान् हैं ? मौद्गल्य ने पूछा।
त्रीनून्वेदान् ब्रूते भो इति—
हां, वे तीनों वेदों के प्रवचनकर्त्ता हैं, शिष्य ने कहा—

तस्य सौम्य यो विद्वान् विहृष्टो विजिगीषोंऽतेवासी
तं मेऽऽह्वयेति ।

हे सौम्य ! उसका जो विद्वान्, सूक्ष्मदर्शी तथा विजय चाहने वाला शिष्य हो, तुम उसे मेरे पास ले आओ ।

तमाजुहाव । तमभ्युवाचा साधिति भो इति ।
तब वह उसे बुला लाया और बोला—ये ये हैं ।
किं सौम्य त आचार्योऽध्येतीति ।
मौद्‌गल्य ने उससे पूछा—हे सौम्य ! तुम्हारे आचार्य क्या पढ़ाते हैं ?
त्रीन्वेदान् ब्रू ते भो इति ।
उसने उत्तर दिया—वे तीनों वेदों का प्रवचन करते हैं ।
यन्नु खलुसौम्यास्मासि: सर्वे वेदा मुखतो गृहीता:
कथं व एवमाचार्यो भाषते, कथं नु स चेत्सौम्य
दुरधीयानो भविष्यति आचार्यो वालब्रह्मचारी
ब्रह्मचारिक्षं सावित्री प्राह, इति वक्ष्यति ।

हे सौम्य ! यदि वे जानते होंगे तो कहेंगे कि आचार्य अपने ब्रह्मचारी को जितना उपदेश देते हैं, वह सावित्री है अर्थात् जो गायत्री का शव्दार्थ, स्थूल अर्थ है, उसे ही वता देंगे ।

तत्वं ब्रूसाद दुरधीयानं तं वैभवान्सौद्‌गल्य
मवोचत्: स त्वां य प्रश्नमप्राक्षीन्न तं व्यवोच: ।
पुरा सम्वत्सरातार्तिमारव्यसीति ।

तब तुम कहना कि आपने तो हमारे आचार्य मौदगल्य को मूर्ख बतलाया था । वे आपसे जो प्रश्न पूछते हैं उसे आप नहीं बतला सके तो एक वर्ष के भीतर आपको कुछ कष्ट होगा ।

शिष्टा: शिष्टेभ्य एव भाषेरन् । यं ह्येनमहंप्रश्न
पृच्छामि न तं विवक्ष्यति, नह्नेनमध्येतीति ।
हे सौम्य ! हमने भी सब वेद अध्ययन किये हैं फिर तुम्हारे आचार्य

मुझे मूर्ख क्यों कहते हैं ? क्या शिष्टों का शिष्टों के लिए ऐसा कहना ठीक है ? हम उनसे जो प्रश्न पूछेंगे, वे उसे बतला न सकेंगे तो वे उसे पढ़ाते भी न होंगे।

स ह मौद्गल्यः स्वन्तितेवासिनमुवाच परे हि सौम्य, ग्लावं मैत्रेयमुपासीत्, अधीहिः भोः सावित्री गायत्रीं चतुर्विंचति योनि द्वादश मिथुनां, यस्यांभृग्वगिरश्च क्षुर्यस्यां सर्वमिदं श्रितं वां भवान् प्राव्रत्विति।

तब उन मौद्गल्य ने अपने ब्रह्मचारी से कहा—"सौम्य! तुम जाओ, ग्लाव मैत्रेय के समीप उपस्थित होकर कहो कि बारह मिथुन तथा चौबीस योनि वाली भृगु और अंगिरा जिसके नेत्र हैं तथा जिसके आश्रय यह सब हैं, उस सावित्री गायत्री को हमें पढ़ाइये।

द्वितीय कण्डिका

स तत्राजगाम यत्रेतरो बभूव। तहप्रपच्छ स ह न

मौद्गल्य का शिष्य मैत्रेय के पास आया। उसने उससे पूछा, किन्तु वे उसका उत्तर न दे सके।

तं होवाच दुरधीयान तं वै भवान्मौद्गल्यमवो चन्सत्वायं प्रश्नमक्षीन्न तं व्यवोचः पुरा संवत्सरार्दतिमारिष्यसीति।

उसने कहा—आपने मौद्गल्य को मूर्ख कहा था। उन्होंने जो आपसे पूछा, आप उसे नहीं बतला सके, इसलिए एक वर्ष में आपको कष्ट होगा।

स ह मैत्रेयः स्वानन्तेवासीन उवाच-यथार्थं भवन्तो यथागृहं यथामनो विप्रसृज्यन्ताम् दुरधीयानं वा अहं मौद्गल्य तवोचम्, स य प्रश्नमप्रीक्षीन्न त व्यवोच, तमुपैष्यामि, शान्ति करिष्यामीति।

तब मैत्रेय ने अपने शिष्यों से कहा—अब आप लोग अपनी-अपनी इच्छानुसार अपने-अपने घरों को लौट जाइये। मैंने मौद्गल्य को मूर्ख

कहा था, पर उन्होंने जो पूछा है, मैं उसे नहीं बतला सका हूँ। मैं उनके पास जाऊँगा और उन्हें शान्त करूँगा।

स ह मैत्रेयः प्रातः समित्पाणिमौद्गल्यमुपसादासौ व अहं भो मैत्रेय इति।

दूसरे दिन प्रातःकाल में समिधा लेकर मैत्रेय मौद्गल्य ऋषि के पास आये और कहा—मैं मैत्रेय आपकी सेवा में आया हूँ।

किमर्थ मिति

"किसलिए ?" उन्होंने पूछा।

दुरधीयानं वा अहं भवन्तमवोचं त्वं मा व य प्रश्नमप्रक्षीन त ब्यवोचं, त्वमुपैष्यामि, शांति करिष्यामीति।

मैत्रेय ने कहा—मैंने आपको मूर्ख कहा था। आपने जो पूछा, मैं उसे न बतला सका। अब मैं आपकी सेवा में उपस्थित होकर आपको शान्त करूँगा।

स होवाच-अत्र वा उपेत च सर्वं च कृतं पापकेन त्वा यानेन चरन्तमाहुः अथोऽवं मम् कल्याणस्तं ते ददामि तेन याहोति।

मौद्गल्य ने कहा—आप यहाँ आये हैं, लेकिन लोग कहते हैं कि आप शुद्ध भावना से नहीं हैं, तो भी मैं तुम्हें कल्याणकारी भाव देता हूँ। तुम इसे लेकर लौटो।

स होवाच। एतदेवात्रांत्षि चानृशंस्यं च यथा भवानह। उपायामि त्वेव भवन्तमिति।

मैत्रेय ने कहा--आपका कहना अभयकारी एवं सत्य है। मैं आपकी सेवा में समित्पाणि होकर उपस्थित होता हूँ।

त ही तेथाय—

अब वे विधिपूर्वक उनकी सेवा में उपस्थित हुए।

होपेत्य पप्रच्छ—

उपस्थित होकर पूछा—

किस्विदाहुर्यो सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य कवयः किमाह।

धियो विचक्ष यदि ताः प्रत्वेत्थ प्रचोदयन्सवितायारेति ।।

(१) सविता का वरेण्य किसे कहते हैं ?

(२) वस देव का भर्ग क्या है ?

(३) यदि आप जानते हों तो धी संज्ञक तत्वों को कहिए, जिनके द्वारा सबको प्रेरणा देता हुआ सविता विचरण करता है।

तस्मा एतत्प्रोवाच—

उन्होंने उत्तर दिया—

वेदाश्छन्दांसि सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य कवयोऽन्नमाहुः ।
कर्माणि धियस्तदुते ब्रवीमि प्रचोदयन्सवितायाभिरेति ।।

(१) वेद और छन्द सविता का वरेण्य है।

(२) विद्वान पुरुष अन्न को ही देव का भर्ग बतलाते हैं।

(३) कर्म ही वह धी तत्व है जिसके द्वारा सबको प्रेरणा देता हुआ सविता विचरण करता है।

तमुपसंग्रह्य पप्रच्छा धीति भोः कः सविता का गायत्री ।

यह सुनकर उनने फिर पूछा—सविता क्या है और सावित्री क्या है ?

तृतीय कण्डिका

मन एव सविता वाक् सावित्री यत्र ह्येव मनस्तद्वाक् ।
यत्र वै वाक् तन्मन इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ।।१

मन सविता है वाक् सावित्री, जहाँ मन है वहाँ वाक् है, जहाँ वाक् है वहाँ मन है। ये दोनों दो योनि और एक मिथुन हैं।१।

अग्निरेष सविता पृथिवी सावित्री यत्र ह्यै वाग्निस्तष्पृथिवी।
यत्र वै पृथिवी तदग्निरिति एते द्वे योनी एक मिथुनम् ।२।

अग्नि सविता है, पृथ्वी सावित्री। जहाँ अग्नि है वहाँ पृथ्वी है, जहाँ पृथ्वी है वहाँ अग्नि है। यह दो योनि तथा एक मिथुन है।२।

वायुरेव सविता अन्तरिक्षं सावित्री, यत्र ह्येव वायुस्तद-

न्तरिक्षम् यत्र वा अन्तरिक्षं तद्वायुरिति एते द्वे योनि एकं मिथुनम् ।३।

वायु सविता है अन्तरिक्ष सावित्री हैं, जहाँ वायु है वहाँ अन्तरिक्ष है, जहाँ अन्तरिक्ष है वहाँ वायु है। ये दोनों योनि और एक मिथुन हैं ।३।

आदित्य एव सविता द्यौः सावित्री यत्रह्येवादित्यस्तद् द्यौः। यत्र वै द्यौस्तदादित्य इति। एते द्वेयोनी एकं मिथुनम् ।४।

आदित्य सविता है, द्यौ सावित्री। जहाँ आदित्य है वहाँ द्यौ है, जहाँ द्यौ हैं वहाँ आदित्य है। ये दोनों योनि और एक मिथुन हैं ।५।

चन्द्रमा एव सविता नक्षत्राणां सावित्री यत्र ह्येव चन्द्रमा स्तन्नक्षत्राणि। यत्र वै नक्षत्राणि तच्चन्द्रमा इति। एते द्वे योनी एक मिथुनम् ।५।

चन्द्रमा सविता है, नक्षत्र सावित्री है, जहाँ चन्द्रमा है, वहाँ नक्षत्र है, जहाँ नक्षत्र है वहाँ चन्द्रमा है। ये दोनों योनि और एक मिथुन हैं ।५।

अहएव सविता रात्रिः सावित्री यत्र ह्येवाहस्तद्रात्रिः। यत्र व रात्रि स्तदहरिति एते योनी एकं मिथुनम् ।६।

दिन सविता है और रात्रि सावित्री है। जहाँ दिन है, वहाँ रात्रि है, जहाँ रात्रि है, वहाँ दिन है। ये दो योनि और एक मिथुन हैं ।६।

उष्णमेव सविता शीत सावित्री यत्र ह्ये वोष्णं तच्छीतं। यत्र वै शीत तदुष्णमिति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ।७।

उष्ण सविता है, शीत सावित्री। जहाँ उष्ण है वहाँ शीत है, जहाँ शीत है, वहाँ उष्ण है। ये दोनों योनि और एक मिथुन हैं ।७।

अभ्रमेव सविता वर्षं सावित्री यत्र ह्ये वाभ्रं तद्वर्षं। यत्र वै वर्षं तदभ्रमिति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ।८।

बादल सविता है और वर्षा सावित्री। जहाँ बादल हैं वहाँ वर्षा

हैं, जहाँ वर्षा है, वहाँ बादल है। ये दोनों योनि तथा एक मिथुन हैं।८

विद्यु देव सविता स्तनयित्नुः सावित्री। यत्र ह्येव विद्युत्त त्स्तनयित्नुः यत्र वै स्तनयित्नुस्तद्विद्युदिति एते द्वे योनी एक मिथुनम्।९।

विद्युत् सविता है और उसकी तड़क सावित्री। जहाँ बिजली है, वहाँ उसकी तड़क है। जहाँ तड़क है वहाँ बिजली है। ये दोनों योनि और एक मिथुन हैं।९।

प्राण एव सविता अन्नं सावित्री यत्र ह्येव प्राणस्तदन्नम्। तत्र वा अन्नं मत्प्राण इति। एते द्वे योनीं एकं मिथुनम्।१०।

प्राण सविता है, अन्न सावित्री। जहाँ प्राण है, वहाँ अन्न है, जहाँ अन्न है, वहाँ प्राण है। ये दोनों योनि तथा एक मिथुन हैं।१०।

वेदा एव सविता छन्दांसि सावित्री यत्र ह्येव वेदास्तच्छन्दांसि। यत्र वै छन्दांसि तद्वेदा इति। एते द्वे योनी एक मिथुनम्।११।

वेद सविता हैं, छन्द सावित्री। जहाँ वेद हैं, वहाँ छन्द है, जहाँ छन्द हैं, वहाँ वेद हैं। ये दो योनि और एक मिथुन हैं।११।

यज्ञ एव सविता दक्षिणा सावित्री यज्ञह्येव यज्ञस्तद्दक्षिणा। यत्रवैदक्षिणास्तद्यज्ञ इति। एते द्वे योनी एकं मिथुनम्।१२।

यज्ञ सविता है और दक्षिणा सावित्री। जहाँ यज्ञ है, वहाँ दक्षिणा है, जहाँ दक्षिणा है, वहाँ यज्ञ है। ये दोनों योनि तथा एक मिथुन हैं।१२।

एतद्धस्मै तद्विद्वांसमोपकारीं मासस्तुर्ब्रह्मचारी ते संस्थित इति।

विद्वान् तथा परोपकारी महाराज! आपकी सेवा में यह ब्रह्मचारी आया है।

अथैव आसस्तुरा चित्र इव चिती बभूव अथोत्थाय प्रावाजीदिति।

यह ब्रह्मचारी आपके यहाँ आकर ज्ञान से परिपूर्ण हो गया है। इसके बाद वे वहाँ से चले गये।

एतद्वा अहं वेद नैतासु योनिष्वतऐतेभ्यो वा
मिथुनेभ्यः सम्भवतो ब्रह्मचारी मम पुरायुषः प्रयादिति।

और उन्होंने कहा कि अब मैं इसे जान गया हूँ, इन योनियो अथवा इन मिथुनों में आता हुआ कोई ब्रह्मचारी अल्पायु नहीं होगा।

चतुर्थं कण्डिका

ब्रह्म हेदं श्रियं प्रतिष्ठामायतनमैक्षत तत्तयैस्का यदि तद्‌ब्रूते धियेद् तत्सत्येत प्रत्यतिष्ठत्।

ब्रह्म ने श्री प्रतिष्ठा और आयतन को देखा, वह था कि—तप करे। यदि तप के व्रत को धारण किया जाय, तो सत्य में प्रतिष्ठा रहती है।

स सविता सावित्र्या ब्राह्मणं स्रष्ट्वा तत्सावित्री पर्यंदधात्।

उस सविता ने सावित्री से ब्राह्मण की सृष्टि की तथा सावित्री को उससे घेर दिया।

तत्सवितुर्वरेण्यं इति सावित्र्याः प्रथमः पादः।

'तत्सवितुर्वरेण्यं' यह सावित्री का प्रथम पाद है।

पृथिव्यचं समधात्। ऋचा अग्निम्। अग्निवाशियत् श्रिया स्त्रियं। स्त्रियो मिथुनम्। मिथुने प्रजाम्। प्रज्या कर्म। कर्मणा तपः। तपसां सत्यम्। सत्येन ब्रह्म। ब्रह्मणा ब्राह्मणम् व्रतम्। व्रतेन वै ब्राह्मणः संशितो भवति। अशून्यो भवति, अविच्छिन्नो भवति।

पृथ्वी से ऋक् को जोड़ा, युक्त किया। ऋक् से अग्नि को, अग्नि से श्री को, श्री से स्त्री को, स्त्री से मिथुन को, मिथुन से प्रजा कों, प्रजा से कर्म को, कर्म से तप को, तप से सत्य को, सत्य से ब्रह्मा को, ब्रह्मा से ब्राह्मण को, ब्राह्मण से व्रत को। ब्राह्मण व्रत से ही तीक्ष्ण होता पूर्ण है और अविच्छिन्न होता हैं।

अविच्छिन्नोऽस्य तन्तुरविच्छिन्नं जीवनं भवति य एवं वदेत्, यश्चैवं विद्वानेवमेत सवित्र्याः प्रथम पादं व्याचष्टे ।

जो इस प्रकार से इसे जानता है और जानकर जो विद्वान इसकी इस प्रकार व्याख्या करता है वह उसका वंश तथा उसका जीवन अविच्छिन्न होता है ।

पंचम कण्डिका

भर्गो देवस्य धीमहीति सावित्र्याः द्वितीयः पादः ।

भर्गो देवस्य धीमहि यह गायत्री का दूसरा पाद है ।

अन्तरिक्षेण यजुः समदद्यात् यजुषा वायुम् वायुना अभ्रम् । अभ्रेम वर्षम्अर्षे णोषधि वनस्पतीन् औषधि वनस्पतिभिः पशून् पशुभिः कर्म, कर्मणा तपः, तपसा सत्यम्, सत्येन ब्रह्म, ब्रह्मणा ब्राह्मणम्, ब्राह्मणेन व्रतं, व्रतेन वै ब्राह्मणः संशितो भवत्यशून्यो भवत्यविच्छिन्नो भवति ।

अन्तरिक्ष से यजु से, वर्षा को वर्षा से, औषधि वनस्पतियों को मेघ को मेघ से, वर्षा को वर्षा से, औषधि वनस्पतियों को, औषधि वनस्पतियों से पशुओं को, पशुओं से कर्म को, कर्म से तप को तप से सत्य को, सत्य से ब्रह्म को, ब्रह्म से ब्राह्मण को, ब्राह्मण से व्रत को । व्रत से ब्राह्मण तीक्ष्ण और अविच्छिन्न होता है ।

अविच्छिन्नोऽस्यतन्तरविच्छिन्नं जीवनं भवति, एकं वेद यश्चैवविद्वानेवमेतं सावित्र्याः द्वितीयः पादं व्याचष्टे ।

जो विद्वान् इस प्रकार जानकर सावित्री के द्वितीय पादकी व्याख्या करते हैं उनका वंश तथा जीवन अविच्छित होता है ।

षष्ठ कण्डिका

धियो यो नः प्रचोदयादिति सावित्र्यास्तृतीयं पादः ।

धियो यो नः प्रचोदयात्--यह गायत्री का तीसरा पाद है ।

दिवा साम सम धात् साम्नाऽऽदित्यम् आदित्येन रश्मीन् रश्मिभिवर्षम् वर्षणौषधिवनस्पतीन् औषधि वनस्पतिभिः पशून्,

पशुभिः कर्म, कर्मणा तपः तपसा सत्यम् सत्येन ब्रह्म, ब्रह्मणा ब्राह्मणम्, ब्राह्मणेन व्रतम्, व्रतेन वै ब्राह्मणः संशितो भवत्यशून्यो भवत्यविच्छिन्नो भवति । अविच्छिन्नोऽस्य तन्तुरविच्छिन्नं जीवनं भवति य एवं वेद यश्चैवं विद्वानेवमेतत् सावित्र्यास्तृतीय पादं व्याचष्टे ।

द्यु लोक, से साम को युक्त करता है, साम से आदित्य को आदित्य से रश्मियों की, रश्मियों से वर्षा को, वर्षा से औषधि वनस्पतियों को, औषधि वनस्पतियों से पशुओं को, पशुओं से कर्म को, कर्म से तप को तप से सत्य को, सत्य से ब्रह्म को, ब्रह्म से ब्राह्मण को, ब्राह्मण से व्रत को। व्रत से ब्राह्मण तीक्ष्ण पूर्ण और अविच्छिन्न वंश वाला होता है । जो विद्वान् यह जानकर सावित्री के तृतीय पाद व्याख्या करते हैं अपने वंश एवं जीवन को अविच्छिन्न बनाते हैं।

तेंन ह वा एवं विदुषा ब्राह्मणेन ब्राह्मभिन्नं ग्रसितं परामृष्टम् ।

सावित्री के तीन पाद जानने वाला ब्राह्मण ब्रह्म प्राप्त ग्रसित और परामृष्ट होता है ।

प्राप्त––

ग्रसित––

परामृष्ट––

ब्रह्मणा आकाशमभिपन्नं, ग्रसितं परामृष्टम् आकाशेन वायुरभिपन्नो ग्रसितः परामृष्टःवायुना । ज्योतिरभिपन्नो ग्रसितः परामृष्टः (ज्योतिषापोऽभिपन्नो ग्रसितः परामृष्टा । अद्भिर्भूमिरभिपन्ना ग्रसितः परामृष्टा। भूम्यान्नमभिपन्नं ग्रसितं परामृष्टम् अनेन प्राणोऽभिपन्नो ग्रसितः परामृष्टः । प्राणेन मनोऽभिपन्नं ग्रसितं परामृष्टम् । मनसा वागभिपन्ना ग्रसितः परामृष्टा । वाचावेदा अभिपन्ना ग्रसितःपरामृष्टाः।वेदैर्यज्ञोऽभिपन्नो ग्रसितः

परामृष्टः तानि ह वा एतानि द्वादश महाभूतान्येव वेदे प्रतिष्ठितानि । तेषां यज्ञ एव परार्ध्यः ।

ब्रह्म से आकाश प्राप्त ग्रसित एवं परामृष्ट है । आकाश से वायु प्राप्त, ग्रसित एवं परामृष्ट है । वायु से ज्योति अभिपन्न, ग्रसित और परामृष्ट हैं । ज्योतिसे जल प्राप्त, ग्रसित और परामृष्ट है। जलसे पृथ्वी प्राप्त, ग्रसित और परामृष्ट है । भूमि से अन्न, अभिपन्न, ग्रसित और परामृष्ट है । अन्न से प्राण अभिपन्न, ग्रसित तथा परामृष्ट है । प्राण से मन अभिपन्न, ग्रसित तथा परामृष्ट है । मन वाक् अभिपन्न ग्रसित तथा परामृष्ट है । वाक् से वेद अभिपन्न, ग्रसित एवं परामृष्ट है। वेदोंसे यज्ञ प्राप्त ग्रसित एवं परामृष्ट हैं । इस प्रकार का ज्ञान रखने वालों में ये बारह महाभूत प्रतिष्ठित रहते हैं । इनमें यज्ञ ही सर्वश्रेष्ठ है ।

त ह स्मैतमेव विद्वांसो मन्यते विद्मै नमिति यथातथ्यम विद्वांस ।

जो विद्वान् यह समझ लेते हैं कि हम इस यज्ञ के जानकार हो गये हैं, वे इसे नहीं जानते ।

अयं यज्ञो वेदेषु प्रतिष्ठितः वेदा वाचि प्रतिष्ठिताः वाङ्-मनसि प्रतिष्ठिता । मनःप्राणे प्रतिष्ठितम् । प्राणोऽन्ने प्रतिष्ठितः अन्न भूमौ प्रतिष्ठितम् । भूमिरप्सु प्रतिष्ठिता । आपो ज्योतिषि प्रतिष्ठितः ज्योतिर्वायौ प्रतिष्ठितम् । वायुराकाशे प्रतिष्ठितम् आकाशं ब्रह्मणि प्रतिष्ठितम् ब्रह्म ब्राह्मणोब्रह्म विदि प्रतिष्ठितम् ।

यो ह वा एवं चित् स ब्रह्मविपृण्यां च कीर्ति लभते सुरभीश्च गन्धान् । सोऽपहतपापात्मानन्तां श्रियमश्नुते य एवं वेद यश्चैवं विद्वानेवमेतां वेदानां मातरं सावित्रीं सम्पदमुपनिषमुपास्त इति ब्राह्मणम् ।

यह यज्ञ वेद में प्रतिष्ठित है । वेद वाक् में प्रतिष्ठित है वाक् मन । में प्रतिष्ठित है । मन प्राण में प्रतिष्ठित है । प्राण अन्न में प्रतिष्ठित हैं ।

अन्न भूमि में प्रतिष्ठित है। भूमि जल पर प्रतिष्ठित हैं। जल तेज पर प्रतिष्ठित हैं। तेज वायु पर प्रतिष्ठित हैं। वायु आकाश पर प्रतिष्ठित है। आकाश ब्रह्म पर प्रतिष्ठित है। ब्रह्म ब्रह्मवेता ब्राह्मण पर प्रतिष्ठित है। इस प्रकार जानने वाला ब्रह्मज्ञानी पुण्य एवं कीर्ति को प्राप्त करता है तथा सुरक्षित गन्धों को पाता है। वह व्यक्ति पापहीन होकर अनन्त ऐश्वर्य को प्राप्त होता है।

॥ गायत्री उपनिषद् समाप्त ॥

गायत्रीरहस्योपनिषद्

ॐ स्वस्ति सिद्धम्। ॐ नमो ब्रह्मणे। ॐ नमस्कृत्य याज्ञवल्क्यः ऋषिः स्वयंभुवं परिपृच्छति। हे ब्रह्मन् गायत्र्या उत्पत्ति श्रोतुमिच्छामि। अथातो वसिष्ठ स्वयंभुवं परिपृच्छति। यो ब्रह्मा स ब्रह्मोवाचं। ब्रह्मज्ञानोत्पत्तेः। प्रकृति व्याख्यास्यामः। को नाम स्वयंभू पुरुष इति। तेनाङ्गुलीमध्यमानात् सलिलम्भवत्। सलिलात्। फेनम्भवत्। फेनाद्वृद्बुदम्भवतः। बुदबुदा दण्डमभवत्। अण्डाद्ब्रह्मभवत्। ब्रह्मणो वायुरभवत्। वायोरग्निरभवत्। अग्नेरोंकारोऽभवत्। ओंकाराद्व्याहृतिरभवत्। व्याहृत्याः गायत्र्यभवत्। गायत्र्याः सावित्र्यभवत्। सावित्र्याः सरस्वत्यभवत्। सरस्वत्याः सर्वे वेदा अभवन्। सर्वेभ्यो वेदेभ्यः सर्वे लोका अभवन्। सर्वेभ्यो लोकेभ्यः सर्वे प्राणिनोऽभवन्।

ॐ कल्याण हो, सबको सिद्धि प्राप्त हो। ब्रह्म को नमस्कार हो। इस प्रकार प्रणाम कर याज्ञवल्क्य स्वयंभुव से पूछते हैं--गायत्री की उत्पत्ति किस प्रकार हुई। वह बोले—ब्रह्मज्ञान की उत्पत्ति की प्रकृति के आदि कारण की व्याख्या की जाती है। कौन 'स्वयंभू' है ? वही पुराण पुरुष ही 'स्वयम्भू' है। उसने अँगुली का मन्थन (इशारा) करते हुए जल को उत्पन्न किया, उसी स्वयंभू से जल उत्पन्न हुआ। जल से

फेन, फेन से बुद्बुद् से अण्डा, अण्डा से ब्रह्मा, ब्रह्मा से वायु, वायु से अग्नि अग्नि से ॐकार, ॐकार से व्याहृति, व्याहृति से गायत्री, गायत्री से सावित्री, सावित्री से सरस्वती, सरस्वती से सभी वेद, सब वेदों से सारे लोक और अन्त में सब लोकों में सारे प्राणी उत्पन्न हुए।

अथातो गायत्री व्याहृतयश्च प्रवर्तन्ते। का च गायत्री काश्च व्याहृतयः। किं भूः किं भुवः किं स्वः किं महः किं जनः किं तपः किं सत्यं किं तत् किं सवितुः किं वरेण्य किं भर्गः किं देवस्य किं धीमहि किं धियः, किं यः किं नः किं प्रचोदयात्। ओम् भूरिति भुवो लोकः। भुव इत्यन्तरिक्षलोकः स्वरिति स्वर्गं लोकः। मह इति महर्लोकः। जन इति जनोलोकः। तपः इति तपोलोकःसत्य मिति सत्यलोकः तदिति तदसौ तेजोमयं तेजोऽग्निर्देवता। सवितुरिति सविता सविता सावित्रमादित्यौ वै। वरेण्यमित्यनेन प्रजा पतिः। भग इत्यापो वै भर्गः। देवस्य इतीन्द्रो देवो द्योतत इति स इन्द्रस्तस्मात् सर्वपुरुषो नात रुद्रः धीमहीत्यन्तरात्मा। धिय इत्यन्तरात्मा परः यः इति सदाशिवपुरुषः। नो इत्यस्माक स्वधर्मे। प्रचोदयादिति प्रचोदितिकाम इमान् लोकान्प्रत्याश्रयते यः परो धर्मं इत्येषा गायत्री।

सो यहीं से गायत्री तथा व्याहृतियाँ प्रवृतित होतीहैं। इस पर याज्ञवल्क्यने पूछा—गायत्री कौन है? व्याहृतियाँ कौन हैं? भू, भुवः, स्वः, महः जनः, तपः, सत्यः, तत्, सवित्, वरेण्यं, भर्गः, देवस्य, धीमहि, धियः,यः नः और प्रचोदयात् क्या है? इनका यथार्थ रूप क्या है? स्वयंभूने उत्तर दिया ॐ ही ब्रह्म है। 'भूः' भूलोक का वाचक है, 'भुवः' आकाश का, 'स्वः' स्वर्गलोक का, 'मह': महलोक, 'जनः' जनलोक का, तपः' तपोलोक का, 'सत्यः' सत्यलोकका, तत्' तेजस्वी अग्निदेव का, 'सवितुः' सूर्य का 'वरेण्यं' प्रजापति ब्रह्मा का, भर्गः जल का, 'देवस्य' तेजस्वी इन्द्र का (जो परम ऐश्वर्य का द्योतक है, सर्वपुरुष है, रुद्र नाम से

प्रसिद्ध है), धीमहि अन्तरात्मा का धियः परमात्मा का, यः सदाशिव (कल्याणमय) पुरुष का, 'नः' अपने समष्टि रूप का वाचक है। ये सभी यथोक्तक्रम से तत्तत् स्वरूप के बोधक हैं। "प्रचोदयात्" प्रेरणा, सद्-भावना और इच्छा का द्योतक है। इन सभी लोकों का दिव्याभास जो धर्म करादे, वही गायत्री है।

सा च किंगोत्रा कत्यक्षरा कतिपादा। कति कुक्षयः। कानि शीर्षाणि। सांख्यायनगोत्रा सा चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री त्रिपादा चतुष्पादा। पुनस्तस्याश्चत्वारः पादाः षट् कुक्षिकाः पंच शीर्षाणि भवन्ति। के च पादाः कांश्च कुक्षयः कानि शीर्षाणि। ऋग्वेदोऽस्याः प्रथमः पादो भवति। यजुर्वेदो द्वितीयः पादः। सामवेदस्तृतीयः पादः। अथर्ववेदश्चतुर्थः पादः। पर्वादिक प्रथमा कुक्षिर्भवति दक्षिणा द्वितीया कुक्षिर्भवति। पश्चिमा तृतीया कुक्षिर्भवति। उत्तरा चतुर्थी कुक्षिर्भवति। ऊर्ध्व पंचमी कुक्षिर्भवति अधः षष्ठी कुक्षिर्भवति। व्याकरणोऽस्याः प्रथमः शीर्षो भवति। शिक्षा द्वितीयः। कल्पस्तृतीयः। निरुक्तश्चतुर्थः ज्योतिषामयनमिति पंचम। का दिक् वर्णः किमायतनं कः स्वरः किं लक्षणं कान्यक्षरदैवतानि के ऋषयः कानि छन्दांसि काः शक्तयः कानि तत्वानि के चावयवाः पूर्वायां भवतु गायत्री। मध्यमायां भवतु सावित्री। पश्चिमायां भवतु सरस्वती रक्ता गायत्री। श्वेता सावित्री। कृष्णा सरस्वती। पृथिव्यन्तरिक्ष द्यौरायतनानि।

याज्ञयल्क्य ने फिर प्रश्न किया वह किस गोत्र वाली, कितने अक्षर वाली, कितने पाद वाली, कितनी कुक्षि वाली है? उसके शीर्ष मूर्धा आदि स्थान कौन हैं?

स्वयंभू बोले—यह सांख्यायन गोत्र वाली है। यह चौवीस अक्षरों वाली हैं। गायत्री के तीन पाद और चार पाद हैं। उसकी छः कुक्षियाँ है। पाच शिर हैं। याज्ञवल्क्य ने पुनः जिज्ञासा की-गायत्री के कौन—

कौन से पाद हैं ? कुक्षियाँ कौन-कौन सी है ? सिर कौन-कौन से हैं ! स्वयंभू ने उत्तर दिया-ऋग्वेद उसका प्रथम पाद है । यजुर्वेद दूसरा, सामवेद तीसरा और अथर्ववेद इसका चौथा पाद है । पूर्व दिशा प्रथम कुक्षि, दक्षिण दिशा दूसरी कुक्षि, पश्चिम दिशा तीसरी और उत्तर दिशा चौथी कुक्षि है । ऊर्ध्व देश (आकाश) पाँचवी कुक्षि तथा नीचे की भूमि छठी कुक्षि हैं ।

व्याकरण इसका पहला सिर है, शिक्षा दूसरा,कल्प तीसरा निरुक्ति चौथा और ज्योतिष पाँचवाँ शिर है ।

इस पर याज्ञवल्क्य ने पुनः प्रश्न किया—किस दिशा में किस रङ्ग की अधिष्ठात्री देवियाँ स्थित है ? उनका विस्तार क्या है ? स्वर:लक्षण क्या है ? किन अक्षरों की वह अधिष्ठात्री देवियाँ हैं ? कौन उनके ऋषि हैं ? कौन छन्द हैं ? कौन शक्तियां हैं ? कौन तत्व हैं तथा कौन अवयव हैं ?

स्वयंभू जी बोले पूर्व में गायत्री, जिसका रङ्ग लाल है, दक्षिण में सावित्री, जिसका रङ्ग सफेद है,पश्चिम मैं सरस्वती जिसका रङ्ग काला है, स्थित है । इसी वर्ण में ये ध्यान करने योग्य है ।

पृथ्वी, आकाश और स्वर्ग इनके विस्तार स्थल और निवास स्थान हैं ।

अकारोकाररूपोदात्तादिस्वरात्मिक । सर्वा सन्ध्या हंसवाहिनीं ब्राह्मी । मध्यमा वृषवाहिनी माहेश्वरी । पश्चिमा गरुड़वाहिनी वैष्णवी । पूर्वाह्नकालिका सन्ध्या गायत्री कुमारी। रक्ता रक्ताङ्गी रक्तवासिनीं रक्तगन्धमाल्यानुलेपनी पाशांकुशाक्ष मालाकमण्डलुवरहस्ता हंसारूढा ब्रह्मदैवत्या ऋग्वेदसंहिता आदित्यपथगामिनी भूमण्डलवासिनी। मध्याह्नकालिका सन्ध्या सावित्री युवती श्वेताङ्गी श्वेतवासिनी श्वेतगन्धमाल्याद्रलेपनी त्रिशूलडमरुहस्ता वृषभारूढा रुद्रदैवत्य यजुर्वेदसहिता आदित्य पथगामिनी भुवौलोके व्यवस्थिता । सायं सन्ध्या सरस्वती वृद्धा

कृष्णाङ्गीकृष्णवासिनी कृष्णगन्धमाल्यानुलेपनीशंखचक्रगदाभय-हस्ता गरुडारूढाविष्णुदैवत्या सामवेदसंहिताआदित्यपथगामिनी स्वर्गलोकव्यवस्थिता ।

ये तीनों अकार, उकार तथा मकार रूप उदात्तादि स्वरात्मक है ।

प्रात:कालीन जो संध्या है, वह हंस पर बैठने वाली ब्रह्माके स्वरूप के समान,मध्याह्नकाल की संध्या बैल पर आरूढ़ शङ्कर स्वरूपिणी तथा अन्तिम सायंकालीन संध्या गरुड़ के ऊपर स्थित तथा विष्णु स्वरूप चतुर्भुजा शङ्खादिधरा है ।

पूर्वाह्न काल वाली सन्ध्या गायत्री, कुमारी लाल वर्ण, लाल वस्त्र वाली, लाल चन्दन, लाल मालाओं को धारण करने वाली, पाश,अंकुश अक्षमाला, कमण्डलु आदि से सुशोभित हाथ वाली, हंस पर बैठी, ब्रह्मादि देवताओं से सेवित, ब्रह्म स्वरूपिणी ऋग्वेद सहित, सूर्य के मार्ग में विचरण करने वाली तथा पृथ्वी पर निवास करने वाली हैं ।

मध्याह्नकाल वाली जो संध्या है, वह यौवन सम्पन्न है, स्वच्छ सफेद वर्ण वाली है, सफेद वस्त्रों को धारण करने वाली और सफेद चन्दन तथा मालाओं से युक्त है, त्रिशूल तथा डमरू धारण करके बैल पर बैठी हुई, रुद्रादि देवताओं से सेवित है । उसके एक हाथ में यजुर्वेद है । वह सूर्य मार्ग में संक्रमण करती हुई आकाश में स्थित है ।

सायंकालीन सन्ध्या सरस्वती है । वही बूढ़ी है । काले रङ्ग की है, काले वस्त्रों को धारण किए हुए हैं । काले गन्धों और मालाओं से युक्त है । शङ्ख, चक्र और गदा लिए हुए है । विष्णु उसका अधिदेवता है । हाथ में सामवेद धारण किये हुए है । वह सूर्य मार्ग गामिनी है । स्वर्ग लोक में निवास करने वाली है ।

अग्निवायुसूर्यरूपाऽऽहवनीयगार्हपत्यदक्षिणाग्निरूपा ऋग्यजुसामरूपभूर्भुवस्वरितिव्याहृतिरूपाप्रातर्मध्याह्नतृतीयसवनात्मिकात्वरजस्तमोगुणात्मिकाजाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिरूपा वसुरुद्रादित्यरूपा

गायत्रीत्रिष्टुप्जगतीरूपाब्रह्मशंकरविष्णुरूपेच्छज्ञानक्रियाशक्तिरूपास्वराड्विराड्वषड् ब्रह्मरूपेति। प्रथममाग्नेयं द्वितीयं प्राजापत्यंतृतीयं सौम्यं चतुर्थमाशाशं पंचमादित्यं षष्ठंगार्हपत्यं सप्तमं मत्रंमष्टमं भगदैवतं नवमंमर्यमाण दशमं सवित्रमेकादशं त्वाष्ट्रं द्वादशं पौष्णं त्रयोदशमैन्द्राग्नं चतुर्दशं वायव्यं पंचदशं वामदेवं षौडशं मैत्रावरुणं सप्तदशं भ्रातृव्यमष्टादशं वैष्णवमेकोनविंश वामनं विंशवैश्वदेवमेकविंश रौद्रद्वाविंश कौवेर त्रयोविंशमाश्विनं चतुर्विंशं ब्राह्ममिति प्रत्यक्षरदैवतानि। प्रथमं वासिष्ठं द्वितीयं भरद्वाजं तृतीयं गार्ग्यं चतुर्थमौपमन्यवं पंचमं भार्गवं पृष्ठं शाण्डिल्यम् सप्तमम् लोहितमष्टमं वैष्णवम् नवमम् शातातपं दशमम् सनत्कुमारमेकादशम् वेदव्यासम् द्वादशम् शुकम् त्रयोदशम् पाराशर्यम् चतुर्दशम् पौण्ड्रकम् पंचदशम् क्रतुम् षोडशम् दक्षम् सप्तदशम् काश्यपमष्टादशमात्रेमेकोनविंशमगस्त्यं विंशमोद्दालकमेकविंशमांगिरसम् द्वाविंशम् नामिकेतुं त्रयोविंशम् मौद्गल्यम् चतुर्विंशमाङ्गिरसवैश्वामित्रमिति प्रत्यक्षराणामृषयो भवन्ति।

यह गायत्री अग्नि, वायु और सूर्य रूपिणीहै। आह्वनीय, गार्हपत्य तथा दक्षिणाग्नि रूपिणी है। ऋग्वेद,यजुर्वेद और सामवेद उसका अपना स्वरूप है। वह भूःर्भुवः और स्वः व्याहृति वाली है। प्रातः, मध्याह्न और सायं उसकी आत्मा है। वह सत,रज और तम से युक्त है। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति उसी के रूप हैं। वसु, रुद्र तथा आदित्यात्मिका गायत्री त्रिष्टुप् जगती रूप है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी उसी के रूप हैं। वह इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया रूपिणी है। वह स्वराट् विराट तथा वषट् रूप वाली ब्रह्म है।

उसका पहला अक्षर अग्नि दैवत्य, दूसरा प्रजापति दैवत्य, तीसरा चन्द्र दैवत्य, चौथा ईशान (शिव), पाँचवा आदित्य, छठा गार्हपत्य (अग्नि विशेष) सातवां मंत्र, आठवां भग दैवत्य, नौवां अर्यमा दैवत्य,

दसवां सविता दैवत्य, ग्यारहवां त्वष्टा, बारहवां पूषा, तेरहवां इन्द्राग्नि चोदहवां वायु पन्द्रहवा वामदेव, सोलहवां मैत्रावरुण, सत्रहवां भ्रातृव्य, अट्ठारहवां विष्णु दैवत्य, उन्नीसवां वामन, बीसवां वैश्वदेव, इक्कीसवां रुद्र दैवत्य, बाईसवां कुवेर दैवत्य, तेईसवां अश्विनी कुमार दैवत्य और चौबीसवां अक्षर ब्रह्मादि दैवत्य है।

पहले अक्षर का ऋषि वशिष्ठ, दूसरे का भारद्वाज, तीसरे का गर्ग चौथे का उपमन्यु, पांचवें का भृगु, छठे का शांडिल्य, सातवें को लोहित, आठवें का विष्णु, नौवें का शातातप, दसवें का सनत्कुमार, ग्यारहवें का वेदव्यास, वारहवें का शुकदेव, तेरहवें का पराशर चौदहवें का पौड्रकर्म पन्द्रहवें का क्रतु सोलहवें का दक्ष, सत्रहवें का कश्यप अट्ठारहवें का अत्रि, उन्नीसवें का अगस्त्य,बीसवें का उद्दालक इक्कीसवें का नाककेतु, तेइसवें का मुद्गल और चौबीसवें का अङ्गिरा बीजक गोत्रज विश्वामित्र क्रमशः उनके ऋषि हैं। (अर्थात् गायत्री के जो चौवीस अक्षर हैं, उनके द्रष्टा ये चौबीस ऋषि हैं।)

गायत्रीत्रिष्टुप्जगत्यनुष्टुप्पङ्क्तिबृहत्युंष्णिगदितिरिति त्रिरावृत्तेन छन्दांसि प्रतिपाद्यन्ते। प्रह्लादिनी प्रज्ञा विश्वभद्रा विलासिनी प्रभा शान्ता मां कान्तिःस्पर्शा दुर्गा सरस्वती विरूपा विशालाक्षी शालिनी व्यापिनी विमला तमोऽपहारिणी सूक्ष्मा-वयवा पद्मालया विरजा विश्वरूपा भद्रा कृपा सर्वतोमुखीति चतुर्विंशतिशक्तयो निगद्यन्ते। पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशगन्धरस-रूपस्पर्शशब्दवाक्यानि पादपायूउपस्थत्वक्चक्षु श्रोत्र जिह्वाघ्राण मनोबुद्ध्यहंकारचित्तज्ञानमिति प्रत्यक्षराणां तत्वानि प्रतीयन्ते। चम्पकातसीकुङ्कुमपिङ्गलेन्द्रनीलाग्निप्रभोद्यत्सूर्यविद्युत्तारकस-रोजगौरमरकतशुक्लकुन्देन्दुशंखपाण्डुनेशनीलोत्पलचन्दनागुरुकस्तूरीगोरोचनघनसारसन्निभम्प्रत्यक्षरमनुस्मृत्यसमस्तपातकोपपातकमहापातकागमनगो हत्याब्रह्महत्याभ्रूणहत्यावीरहत्या पुरुष-हत्याऽऽजन्मकृतहत्यास्त्रीहत्यागुरुहत्यापितृहत्याप्राणहत्याचराचर

हत्याभक्ष्यपक्षहत्या ह्रस्वकर्मविच्छेदनस्वा॰याविहीनकर्मकरण-परधनापहरणशूद्रान्नभोजनशत्रुमारणचण्डालीगमानादिसमस्त-पाप हरणार्थम् संस्मरेत् ।

गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती अनुष्टुप्, पंक्ति, वृहती उष्णिक् ये त्रिरांवृत (तीन आवृत्ति युक्त) छन्द गिनाये जाते हैं ।

गायत्री की चौबीस शक्तियाँ इस प्रकार हैं—प्रह्लादिनी, प्रज्ञा, विश्वभद्रा, विलासिनी, प्रभा, शान्ता, मा, कान्ति, स्पर्धा, दुर्गा, सरस्वती विरूपा, विशालाक्षी, शालिनी, व्यापिनी, विमला तमोऽपहारिणी, सूक्ष्म-अवयवा, पद्मलया, विरजा, विश्वरूपा, भद्रा, कृपा और सर्वतोमुखी गायत्री की शक्तियाँ हैं ।

गायत्री के चौबीस अक्षरों के चौबीस तत्व क्रमशः इस प्रकार हैं—पृथ्वी, जल तेज, वायु, आकाश, गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, वाक्य, पैर, मल, मूत्रेन्द्रियाँ, त्वचा, आँख, कान, जीभ, नाक, मन, बुद्धि, अहं-कार, चित्त तथा ज्ञान-ये गायत्री के प्रत्येक अक्षर के तत्व हैं ।

चम्पा, अतसी, कुंकुम, पिंगल, इन्द्र, नील, अग्निप्रभा अद्यत्सूर्य, विद्युत्तारक, सरोज,गौर मरकत, शुक्ल, कुन्द, इन्दु,शङ्ख पाण्डु नेत्र,नील कमल, चन्दन, अगरु,कस्तूरी, गोरोचना और कपूर के समान गायत्री के इन प्रत्येक अक्षरों का आश्रय सभी उपपातक, महापातक, अगम्या-गमन (जिनसे योनि सम्बन्ध नहीं होना चाहिए, उनसे योनि सम्बन्ध करना आदि), गौहत्या, ब्रह्म हत्या, भ्रूण हत्या (गर्भपात), वीर हत्या पुरुष हत्या, अन्यान्य जन्मों में की हुई हत्यायें, स्त्री हत्या, गुरु हत्या, पितृ हत्या, आत्म हत्या, चराचर जीवों की हत्या, जो खाने लायक नहीं उन्हें खाने से होने वाली हत्या, दान व स्वकर्तव्य कर्म का त्याग, स्वामी के विपरीत किया अपकर्म, दूसरे के धन को छुराने से होने वाला पाप शूद्र के अन्न सेवन का दुष्प्रभाव, चाण्डाली से योनि सम्बन्ध अन्य पातक तथा और सारे पापों के हरण के लिए गायत्री का स्मरण करना चाहिए ।

मूर्धा ब्रह्मा शिखान्तो विष्णुर्ललाट रुद्रश्चक्षुषीं चन्द्रादित्यौ कर्णौ शुक्रवृहस्पती नासापुटे अश्विनौ दन्तोष्ठावुभे सन्ध्ये मुखं मरुत: स्तनौ वस्यादयौ हृदयं पर्जन्य उदरमाकाशो नाभिरग्नि: कटि रिन्द्राग्नी जघनं प्राजापत्यउरू कैलासमूलंजानुनीविश्वंदेवौ जंघे शिशिर: गुल्फानि पृथिवीवनस्पत्यादीन नखानि महती अस्थीनि नवग्रहा असृक्केतुर्मा समृतुसन्धय: कालद्वयास्फालन संवत्सरोनिमेषोऽहोरात्र मिति वाग्देवीं गायत्रीं शरणमहं प्रपद्ये।

य इदं गायत्रीरहस्यमधीते तेन क्रतुसहस्रमिष्टं भवति य इदं गायत्रीरहस्यमधीते विसक्त पाप नाथयति प्रातधीयानो जन्मकृतं पापं नाशयति। य इदं गायत्रीरहस्यं ब्राह्मण: पठेत्तेन गायत्र्या: षष्टिसहस्रलक्षाणि जप्तानि भवन्ति। सर्वान् वेदाधीतो भवति । सर्वेषुतीर्थेषुस्नातो भवति । अपेयपानात् पूतो भवति । अभक्ष्यभक्षणात् पूतो भवति । वृषलीगमनात् पूतो भवति । अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी भवति । पङ्क्तिषू सहस्रपानात् पूतो भवति अष्टो ब्राह्मणान्ग्राहयित्वा ब्रह्मलोकं स गच्छति।इत्याह भगवान् ब्रह्मा ।

मैं ऐसी वाणी की अधिष्ठात्री देवी गायत्री का आश्रय लेता हूं जिसका सिर ब्रह्म है, शिखान्त भाग (चोटी) विष्णु हैं, ललाट (मस्तक) रुद्र है । जिसकी आँखें सूर्य और चन्द्रमा कान हैं । शुक्राचार्य तथा वृहस्पति नाक के रन्ध्र हैं,नासापुट हैं । अश्विनीकुमार दांतऔर ओष्ठ है । दोनों संध्यायें मुख है । मरुत (वायु) श्वसन वसु आदि है । हृदय बादल पेट आकाश, नाभि, अग्नि, कमर इन्द्र और अग्नि हैं । जांघ प्रजापत्य दोनों उरु कैलाश के मूल-स्थल, घुटने विश्वे देव, जंघायें शिशिर, गुल्फ पृथ्वी की वनस्पति आदि, नख महान तत्व, हड्डियां नवग्रह, आतें केतु, मांस ऋतु सन्धियां हैं । दोनों कानों का गमन बोधक जिसका वर्ष है । निमेष जिसके दिन और रात हैं ।

जो इस सर्वकाल रूपा,सर्व लोक रूप और सर्व पदार्थ रूपा गायत्री

का अध्ययन करता है, उसने तो मानों हज़ारों यज्ञ कर लिए। जो इस गायत्री रहस्यको पढ़ता है, वह दिन में किये पापों को नष्ट कर देनाहै।

जो सुबह एवं मध्याह्न में इसे पढ़ता है,वह छः महीने में किये गए पापों को नष्ट कर देता है। जो प्रतिदिन प्रातः सायं इसका अध्ययन करता है, वह सारे जन्मके पापों को नष्ट कर देता है। जो ब्राह्मण इस गायत्री रहस्य को पढ़ता है वह साठ हजार लाख गायत्री मन्त्र के जप से प्राप्त होने वाले लाभों को उपलब्ध करता है। उसने मानों सारे वेदों का अध्ययन कर लिया, सारे तीर्थों में स्नान कर लिया। न पीने लायक वस्तु (शराब आदि) के पीने से जो पाप होता है, वह उससे मुक्त हो जाता है। न खाने लायक को (मांस, मछली, अण्डा आदि को) खाने से जो पाप लगता है वह उससे मुक्त हो जाता है।

वह यदि ब्रह्मचारी नही है, तो भी ब्रह्मचारी के समान (गृहस्थ होकर भी) तेजस्वी हो जाता है। पंक्तियों (सहभोग) में हजार बार अपेय पान करके भी पवित्र हो जाता है। जो आठ ब्राह्मणों को इसका रहस्य-तत्व समझा कर उन्हें ग्रहण करवा देता है, वह ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है। ऐसा भगवान् प्रजापति ब्रह्मा का कथन है।

कः सविता का सावित्री? अग्निरेव सविता पृथिवी सावित्री स यत्राग्निस्तत् पृथिवी यत्र वा पृथिवी तत्राग्निस्ते द्वे योनिस्तदेकं मिथुनम् ।१। कः सविता का सावित्री ? वरुण एव सविताऽऽपः सावित्री स यत्र वरुणस्तदापो यत्र वा आपस्तद्वरुणस्ते द्वे योनिस्तदेकं मिथुनम् ।२। कः सविता का सावित्री ? वायुरेव सविताऽऽकाशः सावित्री स यत्र वायुस्तदाकाशो यत्र वा आकाशस्तद्वायुस्ते द्वे योनिस्तदेकं मिथुनम्।३। कः सविता का सावित्री? यज्ञ एवं सविता छन्दांसि सावित्री स यत्र यज्ञस्तच्छन्दांसि यत्र

वा छन्दांसि स यज्ञस्ते द्वे योनिस्तदेकं मिथुनम् ।४। कः सविता का सावित्री ? स्तनयित्नुरेव सविता विद्युत् सावित्री स यत्र स्तनयित्नुस्तद्विद्युत् यत्र वा विद्युत्स्तनयित्नुस्ते द्वे योनिस्तदेकं मिथुनम् ।५। कः सविता का सावित्रो? आदित्य एव सविता द्यौः सावित्री स यत्रादित्यम्यद्द्योर्यत्र वा द्यौस्तदादित्यस्ते द्वे योनिस्तदेकं मिथुनम् ।६। कः सविता का सावित्री ? चन्द्र एव सविता नक्षत्राणि सावित्री स यत्र चन्द्रस्तन्नक्षत्राणि यत्र वो नक्षत्राणि स चन्द्रमास्ते द्वे योनिस्तदेकं मिथुनम् ।७।कः सविता का सावित्री ? मन एव सविता वाक् सावित्री स यत्र वा मनस्तद्वाक् यत्र वा वाक् तन्मनस्ते द्वे योनिस्तदेकं मिथुनम् ।८। कः सविता का सावित्री ? पुरुष एव सविता स्त्री सावित्री स यत्र पुरुषस्त्रतत् स्त्री यत्र वा स्त्री तत् पुरुषस्ते द्वे योनिस्तदेकं मिथुनम् ।८।

सविता किसे कहते हैं और सावित्री किसे ? अग्नि, सविता और पृथ्वी सावित्री हैं। जहाँ अग्नि है, वहीं पृथ्वी है और जहाँ पृथ्वी है, वहाँ अग्नि है वे दोनों योनि संसार के जन्मदाता है । वे दोनों एक युग्म हैं। सविता किसे कहते हैं और सावित्री किसे ? वरुण देव ही सविता हैं, वहीं वरुण देवता है। दोनों योनि अर्थात् संसार उत्पत्ति-कर्त्ता है। वे दोनों एक युग्म हैं। सविता किसे कहते हैं और सावित्री किसे कहते हैं ? वायु सविता है और आकाश सावित्री । जहाँ वायु देव हैं, वही आकाश है। जहाँ आकाश है, वही वायु देव हैं। ये दोनों योनि है, एक युग्म हैं सविता किसे कहते हैं और सावित्री किसे कहते हैं ? यज्ञ देव सविता हैं और छन्द सावित्री । जहाँ यज्ञ देव हैं, वहीं छन्द हैं, जहाँ छन्द हैं, वही यज्ञ देव है। वे दोनों योनि हैं, एक युग्म हैं। सविता किसे कहते हैं और सावित्री किसे कहते हैं ? गर्जन करने वाले बादल सविता हैं और विद्युत सावित्रीहै । जहाँ गर्जन करने वाले बादल हैं,वही विद्युत है। यहाँ विद्युत है वही गर्जन करने वाले बादल हैं । वे दोनों एक

योनि हैं। एक युग्म है। सविता किसे कहते हैं और सावित्री किसे कहते हैं? सूर्य को सविता कहते हैं और द्युलोक को सावित्री। जहाँ सूर्यदेव हैं, वही द्युलोक है, जहाँ द्युलोक हैं, वहीं सूर्यदेव हैं। वे दोनों योनि हैं, एक युग्म है। सविता किसे कहते हैं और सावित्री किसे कहते हैं? चन्द्रदेव को ही सविता कहते हैं और नक्षत्र को सावित्री। जहाँ चन्द्रदेव हैं, वही नक्षत्र है। जहाँ नक्षत्र है, वही चन्द्रदेव हैं। ये दोनों एक योनि हैं, एक युग्म हैं। सविता किसे कहते हैं और सावित्री किसे कहते हैं? मन को ही सविता कहा गया है और वाणी को सावित्री, जहाँ मन है, वही वाणी है, जहाँ वाणी है, वही मन है। दोनों एक योनि हैं, एक युग्म है। सविता किसे कहते हैं और सावित्री किसे कहते हैं? पुरुषको ही सविता कहा गया है और स्त्री को सावित्री कहा गया है। जहाँ पुरुष है, वहीं स्त्री है, जहाँ स्त्री है वहीं पुरुष है। वे दोनों एक योनि हैं, एक युग्म हैं।९।

तस्या एष प्रथमः पादो भूस्तत्सवितुर्वरेण्यमित्यग्निर्वै वरेण्यमापो वरेण्यं चन्द्रमा वरेण्यम्। तस्या एव एष द्वितीयः पादो भर्गमयो भुवो भर्गो देवस्य धीमहीत्यग्निर्वै भर्ग आदित्यो वै भर्गश्चन्द्रमा वै भर्गः।११। तस्या एष तृतीयः पादः स्वर्धियो यो नः प्रचोदयादिति स्त्री चैव पुरुषश्च प्रजयनतः।१२।

यो वा एतां सावित्रीमेवं वेद स पुनर्मृत्युं जयति।१३।

सावित्री का पहला पाद भूः—तत्सवितुर्वरेण्यम' है। अग्नि' जल व चन्द्रमा देवता ही वरेण्य हैं। सावित्री का दूसरा पाद है-भुवः—भर्गो देवस्य धीमहि' वह तेजोमय है। अग्नि, सूर्य व चन्द्रमा देवता ही वह भर्गः तेज है। सावित्री का तीसरा पाद है—धियो योनः प्रचोदयात्। इस सावित्री देवी को जो स्त्री और पुरुष गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए समझते हैं, वे मृत्यु से छूट जाते हैं अर्थात् पुनः जन्म नहीं लेते।१०-१३।

बलातिबलयोर्विराट् पुरुष ऋषिः। गायत्री छन्दः। गायत्री

देवता । अकारोकारमकारा बीजाद्याः क्षुधाऽऽदिनिरसने विनियोगः । वाक्यामित्यादि षडङ्गम् ध्यानम् ।

अमृतकरतलाग्रौ सर्वं सञ्जीवनाढ्या-
वघहरणसुदक्षौ वेदसारे मयूखे ।
प्रणवमविकारौ भास्कराकारदेहौ
सततमनुभवेऽहं तौ बलातिबलान्तौ ॥

ॐ ह्रीं बले महादेव ह्रीं महाबले क्लीं चतुर्विधपुरुषार्थ-सिद्धिप्रदे तत्सवितुर्वरदात्मिके ह्रीं वरेण्य भर्गो देवस्य वरदात्मिके अतिबले सर्व दयामूर्ते बले सर्वक्षुच्छ्रपापनाशिनी धीमहि धियो यो नर्जाते प्रचुर्या या प्रचोदयात्मिके प्रणवशिरस्कात्मिके फट् स्वाहा: ॥१४

एवं विद्वान् कृतकृत्यो भवति सावित्र्या एव सलोकतांजयतीत्युपनिषद् ॥१५

बला अतिबला नाम की दो विद्याओं के ऋषि विराट् पुरुष है और उनका छन्द और देवता गायत्रीहैं । उसका 'अ'कार बीजहै और 'उ'कार शक्ति । उनका 'म'कार कीलक है । भूख की निवृत्ति के लिए इसका विनियोग है । क्लीं के माध्यम से इनका षडङ्गन्यास करना चाहिए । ॐ क्लीं हृदयाय नमः ॐ क्लीं शिरसे स्वाहा, ॐ क्लीं शिखायै वषट्, ॐक्लीं कवचाय हुम्, ॐक्ली नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐक्ली अस्त्राय फट् ।' अब ध्यानका वर्णन किया जाता है । मैं उन बला अतिबला विद्याओं के देवताओं को सदैव अनुभव करता हूं जो सूर्य के समान चमकते हुए शरीर वाले, प्रणव स्वरूप, किरणात्मक, वेदों के साररूप पालों को समाप्त करने में दक्ष, सब तरह की संजीवनी शक्तियों से अधिष्ठित हैं और जिनके हाथ अमृत से भरे हुये हैं । बला और अतिबला दोनों विद्याओं का मन्त्र इस प्रकार है :-

ह्रीं बले महादेव ह्रीं महाबले क्लीं चतुर्विध पुरुषार्थं सिद्धिप्रदे तत्क्षवतुर्वरदात्मिके ह्रीं वरेण्य भर्गो देवस्य वरदात्मिके अतिबले सर्वं

दयामूर्ते बले सर्पक्षुत्श्रम्रापनाशंनि धीमहि धियो यो नो जाते प्रचुयं य प्रचोदयात्मिके प्रणवशिरस्कात्मिके हुंफट् स्वाहा ।

इस तरह इन विद्याओं को जानने वाला धन्य हो जाता है । वह सावित्री देवी के लोक से पहुँचने की सामर्थ्य रखता है । यह उपनिषद् है ।१४।

॥ सावित्युपनिषद् समाप्त ॥

गायत्री कल्पः

प्रथम परिच्छेदः

स्वगुरुं पूजयेन्नित्यमुपचारैस्तु पञ्चकैः ।
भक्तिश्रद्धानुसारेण विश्वामित्रं प्रकल्पयेत् ।१
अस्य कृतस्नस्य मन्त्रस्य प्राणायामं निरुन्धयेत् ।
प्राणायामं नियम्याशु गुरुपूजापुर सरम् ।२
प्रातरुत्थाय यो विप्रः शयने पर्यवस्थितः ।
एकाग्रमानसो भूत्वा ध्यायेन्मूलेऽथ कुण्डलीम् ।३
नाभिसन्निहिता ज्ञेयाद्विंत्रिशवर्णसंख्यया ।
एवं ज्ञात्वा प्रभातायां षडाधारं तथा न्यसेत् ।४
षडाधारं तथा वक्ष्ये विन्यसेच्चतुरक्षरम् ।
आद्यन्त-प्रणयैर्युक्तं पट्कुक्षिस ततो न्यसेत् ।५
सहस्रदलमध्यस्थां सवालां सत् रीयके ।
हंस-हंसेति विज्ञानात् संकल्प-ध्यानपूर्वकम् ।६
यस्याः संकल्पमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
ततः स्थिता बहिर्गम्य मलमूत्रविसर्जनम् ।७

साधना करने वाले मनुष्य को चाहिए कि वह प्रतिदिन नियमानुसार अपने गुरुदेव की पांच उपचारों के द्वारा पूजा करे । पांच पूजन में निम्नांकित उपचार ग्रहण करने चाहिए—चन्दन, पुष्प, धूप, दीप

और नैवेद्य ये ही पाँच उपचार होतेहै। साधक अपनी भक्ति की भावना से एवं श्रद्धा के अनुकूल ही विश्वामित्र ऋषि की मूर्ति की स्थापना करे।१। सबसे पहिले साधक का यह कर्त्तव्य होता है कि मन्त्र को सिद्ध करने के वास्ते उसे शय्या के त्याग करने के पश्चात् प्रभात वेला में अपने गुरुदेव का मानसिक यजन करे और प्राणायाम करना चाहिए। इसके अनन्तर साधक को चाहिए कि अपने मन को एकाग्र करके नाभि के नीचे मूलाधार में कुण्डलिनी का ध्यान करे।२३। यह कुण्डलिनी मनुष्य की नाभि के पास ही होती हैं और उसके बत्तीस वर्ण हुआ करते है। इस प्रकार से उसको जानकर प्रभात वेला में उसका चार-चार अक्षरों को आदि और अन्त में प्रणव से संयुत करके षडाधार में न्यास करना चाहिए। षडाधार के विषय में आगे बतलाया जायगा। इसके उपरान्त षट् कुक्षि में न्यास करे।४-५। एक सहस्र दल वाले कमल के मध्य में समवस्थित परा स्वरूप वाली हंस हंस-निज्ञान से इस वाला गायत्री देवी का ध्यान तथा सङ्कल्प करे। इस गायत्री के केवल संकल्प से ही ब्राह्मण सभी पापों से विमुक्त हो जाया करता है। इस रीति से शय्या से उठकर प्रातःकाल गायत्री का चिन्तन करते हुए मूलाधार में कुण्डलिनी का ध्यान विप्र को करना चाहिए। फिर शय्या का त्याग करके बाहर चला जाए और मल-मूत्र का परित्याग करे।६-७।

दुर्गन्धत्यागपर्यन्तं कृत्वा शौचं समाहितः।
ततो नदीं समागम्य गङ्गाध्यानपुरःसरम्।८
आचमनत्रयं कृत्वा त्रिवारं स्नानमाचरेत्।
अग्निमण्डलमालिख्या जलमध्ये स-बिन्दुकम्।
मायाबीजेन मध्यस्थमुभयोर्व्याहृतित्रयम्।९
ततः शुद्धाम्बुनाऽऽचम्य प्राणायामत्रयं कुरु।
देशकालाद्यमुच्चार्य गायत्रीध्यानपूर्वकम्।१०
सूक्ताग्निमार्जनं कुर्याद्यथाशाखोक्तमार्गतः।

अघमर्षणमन्त्रं च स्नानं पंचाङ्गपूर्वकम् ।११
श्रोत्रे नासाक्षि रुद्ध्वा च सहस्रान्तं जले वपुः ।
मन्नं कुर्याज्जपेन्मत्रे कुर्याद्वायुनिरोधनम् ।१२
ततः स्नानत्रयं कुर्याद्त्रिरोव्याहृतिपूर्वकम् ।
त्रिवारं त्रिप्रकारं स्नानं पायुमेढं शिरःस्तनम् ।१३
प्रोक्षयेत्शंखमुद्राभिर्व्याहृत्यादि-शिरौऽन्तकम् ।
ततस्तीरं समागत्य गायत्रीकवचं पठेत् ।१४

ब्राह्मण का कर्त्तव्य है कि वह परम सावधान होकर शरीर के सभी दूषित गन्धो का त्याग कर अधिक शुद्ध होकर ही भागीरथी गङ्गा का ध्यान करता हुआ नदी के तीर पर पहुँच जाए ।८। वहाँ पर तीन बार आचमन करके तीन बार ही स्नान करना चाहिए । फिर जल मध्य में अग्नि मण्डल का लेखन करे और बिन्दु के सहित आदि-अन्त में प्रणव से समन्वित माया बीज के साथ गायत्री को लिखे । प्रणव और गायत्री के मध्य में भूःभुवः स्वः इन तीनों व्याहृतियों को लिखना चाहिए ।९। इसके अनन्तर विशुद्ध जल से आचमन करके तीन बार प्राणायाम करे । इसके उपरान्त गायत्री के ध्यान के साथ देश-काल आदि का उच्चारण करते हुए संकल्प करना चाहिए ।१०। इसके पश्चात् अपनी जो भी शाखा हो उसी के अनुसार अर्थात् शाखा की वर्णित पद्धति के क्रम से सूक्तो को पढ़ता हुआ ही अग्नि मार्जन करे । और अघमर्षण मन्त्र का उच्चारण करके फिर पञ्चांग पूर्वक स्नान करना चाहिए । जप होम, तर्पण, अभिषेक और विप्रों का समाराधन—ये पांच अङ्ग कहे जाते हैं ।११। इसके अनन्तर दोनों कान, नाक और आंखों को मूंदकर और जल में शरीर को डुबाकर तथा प्राण वायुको रोककर एक सहस्र गायत्री का जाप करना चाहिए ।१२। इसके पश्चात् 'ॐ भूःभुंवः स्वः इन तीन व्याहृतियों का उच्चारण करता हुआ शिरसे स्नान करे । इसी रीति से तीन बार तीन प्रकार से स्नान करना चाहिए । प्रत्येक स्नान करने के समय से शङ्ख की मुद्रा से जनेन्द्रिय गुदा, शिर और स्तनों तक प्रोक्षण

करे। फिर पानी से निकलकर तट पर स्थित होकर गायत्री कवच का पाठ करना चाहिए।१३-२४।

शुचिवस्त्रांगमाश्रित्य ललाटे तिलकं तथा।
ॐ आपो ज्योतिमन्त्रेण शिखाबन्धनमाचरेत्।१५
त्रिकोणमध्ये ह्लींकारं कोणान्ते प्रपदं तथा।
दण्डेषु व्याहृति चैवमुल्लिखेदुदकं तथा।१६
प्रणवेन वह्निर्जप्त्वां जल पीत्वा च मार्जनम्।
न तत्र विन्यसेत् सन्ध्यामन्यथा शूद्रवद् भवेत्।१७

इसके अनन्तर धुले हुए अथवा शुद्ध वस्त्रों के द्वारा अङ्गों को ढक कर अर्थात् वस्त्रों का परिधान करके ललाट पर भस्म या चन्दन का तिलक लगावे। फिर ॐ आपो ज्योतिरसोऽमृतम्"–इस मन्त्र से शिखा का बन्धन करे।१५। इसके उपरान्त जल में त्रिलोक की रचना करके उसके मध्य में 'ह्लीं' लिखे तथा कोण के अन्त में प्रपद लिखे और दण्ड पर व्याहृति का लेखन करे।१६। फिर जल से बाहर आकर प्रणव सहित ह्लीं का अर्थात् 'ॐ ह्लीं' का जप करे। जल का पान करके उससे मार्जन करना चाहिए। वहाँ पर सन्ध्या नहीं करे। ऐसा न करने से अर्थात् वहीं पर सन्ध्या करने से ब्राह्मण शूद्र के ही समान हो जाया करता है।१७।

द्वितीय परिच्छेद:

चतुर्विंशतिनामानि तत्तत्स्थानेषु विन्यसेत्।
केशवादिनां विन्यस्य पौराणाचमनं चरेत्।१
चर्विंशतिवर्णानां केशवादिरनुक्रमात्।
देव्या: पादैस्त्रिभि: पीत्वा चाङ्ग लैर्नवभि: स्पृशेत्।२
सप्तव्याहृति गायत्री शिरस्तुर्यद्वय न्यसेत्।
श्रुति–स्मृति विधानेन द्विविधं परिकल्पयेत्।३
तृतीयं मूलमन्त्रेण क्रमाद् वर्णानि विन्यसेत्।

आचमनविधिः प्रोक्तः पौराणः स्मार्त्त आगमः ।४
श्रौत मानसमाचम्य पञ्चभिः श्रुतिचोदितैः ।
सन्धया प्रारम्भकाले त्वंचमनत्रितयं न्यसेत् ।५
कुरुते सर्वसिद्धिः स्यान्नास्ति तेन्निष्फलं भवेत् ।
संहताङ्गुलिना यो ब्रह्मतीर्थे पिवेत्जलम् ।
मुक्तागुष्ठं कनिष्ठायां शेषेणाचमनं भवेत् ।६
गोकर्णाकृतिहस्तेन माषमात्रं जलं पिवेत् ।
न्यूनातिरिक्तमात्रेण तज्जलं सुरया समम् ।७

केशव आदि भगवान् विष्णु के चौबीस नामों के द्वारा उन-उन स्थानों पर न्यास करके फिर पुराणों में वर्णित विधानसे आचमन करना चाहिए ।१। केशव आदि चौबीस वर्णों का क्रम से गायत्री देवी के तीन पादों से तीन बार जल का पान करके नौ अंगुलियों से न्यास करें ।१२। सात व्याहृतियों वाले गायत्री मन्त्र से शिर का आठ बार न्यास करना चाहिए । फिर श्रुति और स्मृतियों में वर्णित विधि के अनुसार दो प्रकार से आचमन तथा न्यास करना चाहिए ।३। तीसरा न्यास मूल मन्त्र के द्वारा क्रमशः उन-उन वर्णों से न्यास करे । आचमन करने का विधान वेदों के द्वारा प्रति पादित, पुराणोक्त, स्मृतियों द्वारा कथित, आगम श्रोत और मानस के भेदों से आचमन पांच प्रकार का कहा गया है उन्हींसे आचमन करना चाहिए । जो पुरुष सन्ध्या के आरम्भके समय में इसी विधि से तीन आचमनो को किया करते हैं उनको सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त हुआ करती हैं अन्यथा अर्थात् ऐसा न करने से उनकी सन्ध्या सर्वथा निष्फल ही हुआ करती है । कर के अंगुष्ठ को पृथक् रखकर शेष सभी अंगुलियों को मिलाये हुए दाहिने कर से आचमन करना चाहिए । आचमन में केवल एक ही मासा जल लेवे और हाथ को गौ के कान के समान बना लेवे । इसको ही ब्रह्मतीर्थ कहा जाता है । जिसमें अँगूठे को मुक्त करके कनिष्ठिका में शेष सें आचमन किया जाना चाहिए । एक मासे न तो जल अधिक होना चाहिए और न न्यून

ही होना चाहिए। इसके विपरीत न्यून या अधिक जल होता है तो यह जल मदिरा के ही समान हो जाया करता है ।४-७।

आदौ चान्ते तथा मध्ये न्यसेत् आचमनं क्रमात् ।
श्रुति-स्मृति पुराणानि पर्यायेण विलोमतः ।८
केशवादित्रिभिर्नामं अपः पीत्वा यथाविधिः ।
गोविन्दमग्रतो न्यस्य विष्णुं सुषुम्नि विन्यसेत् ।९
मधुसूदनमादित्यं शुद्धांशुंच त्रिविक्रमम् ।
अग्रतो वामनं चैव हस्तयोः श्रीधरं तथा ।१०
हृषीकेशं पद मनाभंमुभयोः पादयोर्न्यसेत् ।
दामोदरं ब्रह्मरन्ध्रे नासा संकर्षणस्य च ।११
नासामध्ये तु विन्यस्य नासान्ते वा विनिर्दिशेत् ।
दक्षनासां तु विन्यस्य वासुदेवं तथैव च ।१२
प्रद्युम्नं तथा वामे अनिरुद्धं च दक्षिणे ।
पुरुषोत्तमं वामनेत्रे दक्षिणे च अधोक्षजम् ।१३
नारसिंहं वामनेत्रे नाभौ चाप्यच्युतं न्यसेत् ।
जनार्दनं हृदि न्यस्य हरिं दक्षिणबाहुके ।१४

सन्ध्या-वन्दना के आदि में मध्य में और अन्त में क्रम से आचमन तीन बार करना चाहिए। आचमन श्रुति-स्मृति और पुराण में कहे हुए पर्याय के द्वारा विलोम से भिन्न-भिन्न हुआ करते हैं ।८। श्रुति-वर्णित आचमन यथा—ऊँ माधवाय नमः, ऊँ नारायणाय नमः, ऊँ केशवाय नमः—इन मन्त्रो के द्वारा किये जाया करते हैं। स्मृति में कहे हुए आचमन—ऊँ नारायणाय नमः, ॐ केशवाय नमः, ॐ माधवाय नमः—इन मन्त्रों से किए जाते हैं। पुराणोक्त आचमन—ॐ केशवाय नमः, ॐ नारायणाय नमः ॐ माधवाय नमः इन मन्त्रों के द्वारा किए जाया करते हैं। इन्हीं केशव आदि भगवान् के नामों द्वारा विलोम विधि से ठीक रीति के अनुसार जल का पान करके आचमन भरने चाहिए। फिर 'ॐ गोविन्दाय नमः' इस मन्त्र से और "ॐ विष्णवे नमः—इस

मन्त्र से सुषुम्ना में न्यास करे ।९। "ॐ मधुसूदनाय नमः, ॐ आदित्याय नमः, ॐ शुद्धांशये नमः, ॐ त्रिविक्रमाय नमः—'इन मन्त्रों से आगे की ओर और ॐ वामनाय नमः ॐ श्रीधराय नमः" इन मन्त्रों से दोनों करो में न्यास करना चाहिए ।१०। साधक को अपने दोनों चरणों में "ॐ हृषीकेशाय नमः ॐ पद्मनाभाय नमः"—इन दोनों मन्त्रों से न्यास से करना चाहिए। 'ॐ दामोदराय नमः,—इस मन्त्र से ब्रह्मरन्ध्र में अर्थात् शिर के मध्य में और 'ॐ संकर्षणाय नमः" इस मन्त्र से नासिका में न्यास करे ।११। नासिका के मध्य भाग में विन्यास नासिका के अन्तिम में न्यास करे ।११। नासिका के मध्य भाग में विन्यास नासिका के अन्तिम भाग में न्यास करना चाहिए । "ॐ वासुदेवायनमः" इस मन्त्र के द्वारा नासिका के दक्षिण भाग में न्यास करे और 'ॐ प्रद्यु-म्नाय नमः' इस मन्त्र से नासिका के वाम भागमें न्यास करना चाहिए । 'अनिरुद्धाय नमः' दूसरे दाहिने भाग में नासिका में न्यास करे । 'ॐ पुरुषोत्तमाय नमः' इस मन्त्र से बाँये नेत्र में और 'ॐ क्षधोक्षजाय नमः' इस मन्त्र से दाहिने लोचन में न्यास करे । 'ॐ नरसिंहाय नमः इससे फिर बाँये नेत्र में न्यास करना चाहिए । 'ॐ अच्युताय नमः' इस मन्त्र से नाभि में न्यास करे और 'ॐ जनार्दयनाय नमः'—इससे बाँयी भुजा में तथा 'ॐ हरायनमः' इस मन्त्र से दक्षिण भुजा में न्यास करे ।१२-१४।

तृतीय परिच्छेदः

प्राणायामत्रयेणैव प्रातः सन्ध्यां समाचरेत् ।
प्राणायामसमायुक्तं प्राणायाममिति स्मृतम् ॥१
उद्यमं नवधा चैव मध्यमं ऋतुसंख्यया ।
अधमं त्रयमित्याहुः प्राणायामो विधीयते ॥२
सप्तव्याहृतिभिश्चैव प्राणायामं संपुटीकृतेन् ।
व्याहृत्यादि-शिरोऽन्तं च प्राणायामत्रकम् ॥३
सव्याहृतिं स-प्रणवां गायत्री शिरसा सह ।

त्रि: पठेदायत: प्राणान् प्राणायाम: स उच्यते ।।४
बिन्दुत: प्राणमार्गं च गायत्री बिन्दुसंयुताम् ।
व्याहृत्यादि-शिरोऽन्तं च प्राणायायत्रियमम् ।।५
आदौ कुम्भकमाश्रित्य रेचक-पूरक-वर्जितम् ।
व्याहृत्यादि-क्षिरोऽन्तं च प्राणायामं तु कुम्भकम् ।।६
प्राणायाम-समान-बिन्दुसहित बिन्दुत्रयं संयुतं ।
सप्तव्याहृतिबिन्दुसम्पुटपरं वेदादिपादत्रयम् ।
गायत्री शिरसा त्रिनाडिसहितामीड्यद्वये द्वे परे ।
शुद्धं केवलकुम्भकं प्रतिदिनं ध्यायामि तत्व पदम् ।।७

तीन बार प्राणायाम करने के पश्चात् ही प्रात:कालीन सन्ध्या करनी चाहिए । प्राण वायुओं का आयाम अर्थात् विस्तार करने को प्राणायाम इस नाम से कहा जाया करता है ।१। यह प्राणायाम भी तीन प्रकार का होता है । जिस प्राणायाम में नौ बार गायत्री को पढ़कर सम्पन्न किया जाता है वह उत्तम कोटि का प्राणायाम होता है । जिसमें छै बार गायत्रो पढ़ कर पूरा किया जावे वह मध्यम श्रेणी का प्राणायाम कहा जाता हैं तथा जो केवल तीन बार ही गायत्री पढ़कर किया जाता है वह अधम प्राणायाम होता है ।२। जो सात व्याहृतियों से सम्पुटी करण करके आरम्भ करे स्वरोम पर्यन्त तीन-तीन गायत्री मन्त्र पढ़कर ही प्रत्येक प्राणायाम को करना चाहिए।३। प्रणव (ओंकार) के सहित तथा सात व्याहृतियों के साथ सम्पूर्ण गायत्री मन्त्र का पूरक, कुम्भक, रेचक के द्वारा जप करने को ही प्राणायाम कहां जाता है । ॐ भू: ॐ भुव:, ॐ स्व:, ॐ मह:, ॐ जन:, ॐ तप:, ॐ 'सत्यम्—ये सात व्याहृतियां होती हैं । प्रणव तो सभी व्याहृतियां के साथ लगाना चाहिए । भू:—वहां से प्रारम्भ करके 'स्वरोम' पर्यन्त सम्पूर्ण गायत्रीका तीन बार मानसिक उच्चारण करके प्राणायाम करे । बिन्दु से प्राणमार्ग में बिन्दु संयुत गायत्री को व्याहृतियों से आदि लेकर अन्त पर्यन्त तीन बार प्राणायाम करना चाहिए ।४५। साधना करने वाले को चाहिए

कि सर्व प्रथम कुम्भक का समाश्रय ग्रहण करे अर्थात् वायु का निरोध करे। पूरक और रेचक को नहीं करना चाहिए। व्याहृतियो से आरम्भ करके शिर अन्त तक जो प्राणायाम किया जाता है वही कुम्भक हैं ।६। भूर्भुवः स्वः-इन से समन्वित सर्वदा व्याहृतियों से सम्पुटित इडा, सुषुम्ना और पिङ्गला—इन प्रमुख तीन नाड़ियों से युक्त गायत्री मन्त्र ही पूरक तथा रेचक से उत्तम प्राणायाम तन्त्र शास्त्र की रीति से माना गया है ।७।

अधमे द्वादशी मात्रा मध्यमे द्विगुणा मताः।
उत्तमा त्रिगुणा प्रोक्ता प्राणायामं निरुन्धयेत् ।८
रेचकं कुम्भकं चैव पूरकं वायुरोधनम् ।
एवं क्रमेण युञ्जीत प्राणायामस्य लक्षणम् ।९
निषिद्धं रेचकं ज्ञेयं पूरकं च तथैव च।
अमोघं कुम्भकं प्रोक्तं प्राणायामं प्रकीर्त्तितम् ।१०
अघोष-निर्घोष-गसा-ऽऽगमस्थं
नाडीद्वयं रेचक पूरकं च।
कुम्भोपमं पूर्णघटप्रकारं
ह्येवंविधं स्याच्छ्वसनस्य साध्यम् ।११
शब्दपूर्वकमभ्यासं शब्दव्यञ्जनसंयुतम्।
भिन्नभाण्डोदकं यद्वच्छ्वसनस्य व्यतिक्रमात् ।१२
इडा-पिंगला-सुषुम्ना-छब्दपूर्वं व्यतिक्रमात्।
तत्सर्वं निष्फलं प्रोक्तमिति शंकरभाषितम् ।१३
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ।
ततो धर्मं समाश्रित्य प्राणायामविदो विदुः ।१४

सबसे अधम कोटि का जो प्राणायाम हैं वह बारह मात्रा के काल तक हुआ करता है। जो मध्यम श्रेणी का प्राणायाम है वह चोबीस मात्रा के समय तक होता है। तथा उत्तम प्राणायाम छत्तीस मात्रा के काल तक माना गया है ।८। सर्व प्रथम पूरक होता हैं जिसमें वायु को

खीचा जाता है। फिर कुम्भक होता है जिसमें वायुका अन्दर ही निरोध किया जाया करता है। इसके अनन्तर रेचक होता है जिसमें वायु का निस्सारण किया जाता है। इसी रीति से क्रमशः प्राणायाम का लक्षण होता है किन्तु रेचक और पूरक जो प्राणायाम के अङ्ग हैं ये फल से हीन होने के कारण से निषिद्ध होते हैं। कुम्भक ही एक फलप्रद होता है और वह अमोघ माना गया हैं ।१०। श्वास-निःश्वास में संस्थित शब्द से रहित एवं निःशब्द इडा-पिङ्गलामें रहने वाला अर्थात् इन दोनों नाड़ियों से संयुत रेचक एवं पूरक प्राणायाम कहा जाता है। इस श्वास की सम्पूर्ण सिद्धि तो पूर्ण घट के सदृश कुम्भक प्राणायाम से ही हुआ करती है।११। प्राणायाम का आरम्भ में अभ्यास शब्द के साथ अर्थात् शब्द की व्यञ्जना के सहित ही करना चाहिए। कारण यह है कि प्राणायाम करने के समय में वायु का थोड़ा भी व्यतिक्रम हो जाने से वह प्राणायाम सर्वथा निष्फल हो जाया करता है जिस तरह से घट की भग्नता से उसका सम्पूर्ण जल धीरे-धीरे चू जाया करता है।१२। इडा, पिंगला और सुषुम्ना के अर्थात् इन तीनों नाड़ियों के शब्द के व्यतिक्रम से जो प्राणायाम हो भगवान् शंकर ने निष्फल बताया है।१३। अतएव प्राणायाम की प्रक्रिया की विधि को जानने वाले विद्वान् महापुरुषों ने कहा है कि ब्रह्मचारी, ग्रहाश्रमी, वानप्रस्थी और संन्यासी सभी को चाहिए कि प्राणायाम के काल में वायु का व्यतिक्रम न होने देवें ।१४।

नासापुटं त्वंगुलिभिः पञ्चभिर्वायुरोधनम्।
शनैः शनैस्तु निःशब्दं प्राणायामं निरोधयेत् ।१५
नासिकापुटमंगुल्या निधायैकेन मारुतम्।
आकृष्य धारयेदग्निं प्राणायामं विचिन्तयेत् ।१६
प्राणायामेन ज्ञात्वा च स्थापयेच्चिन्मयं शिवम्।
तदादौ मानसं कुर्यात्तदा केवलकुम्भकम् ।१७
पञ्चप्रज्वालकं चैव प्राणायामि समाचरेत्।

पूजामानससयुक्तं प्राणायामफलं भवेत् ।१८
पंचपूजां विना येन प्राणायामं करोति यः ।
तस्य निष्फलितं कर्मं विश्वामित्रेण भाषितम्।१९
लकारं च हकारं च यकारं च रकारयोः ।
चकारमिति विख्यातं पंच पूजात्मकं जपेत् ।२०
सिद्धासनसमो नास्ति न कुम्भेनवलोपमम् ।
मन्ददिष्टसमो नास्ति प्राणायामं समभ्यसेत् ।२१
अन्तश्चेतो बहिश्चक्षु रथःस्थाप्य सुखासनम् ।
समत्वं च शरीरस्य प्राणायामं समभ्यसेत् ।२२
अस्त्रप्रयोगकाले तु प्राणायामं च लम्बकः ।
प्राणायामबलोपेत उपसंहारकः ।२३
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्राणायामं समाचरेत् ।
सर्वधर्मपरित्यागी स महापातकी भवेत् ।२४

प्राणायाम करने वाला पुरुष अपनी पाँचों अंगुलियों से नासिका के अग्रभाग को बन्द करके धीरे-धीरे किसी शब्द का श्रवण न करता हुआ ही वायु को रोक कर प्राणायाम करे। नासिका के अगले भाग को एक अंगुलि से बन्द करके प्राण वायु को खींचकर अग्नि तत्व का उस समय ध्यान करना चाहिए ।१५-१६। प्राणायाम के समय ज्ञान के स्वरूप वाले भगवान् शिव का ही ध्यान करना चाहिए और आप का मानस पूजन भी करना चाहिए। और केवल कुम्भक में आना आवश्यक है । प्राणायाम के समय में पाँच प्रज्वलापूर्वक मानस मन करने ही से प्राणायाम करने का फल प्राप्त हुआ करता है ।१७-१८। जो लोग पंच पूजा को छोड़कर वैसे ही प्राणायाम किया करते हैं उनका ऐसा किया हुआ प्राणायाम फल से शून्य हुआ करता है—यह विश्वामित्र ऋषि ने कहा है ।१९। लकार रकार और चकार अर्थात् ल, ह, व, र और व—इन रूपों वाले वर्णों का ध्यान करना ही पञ्च पूजन होता है। अतएव प्राणायाम के समय में इन उपयुक्त पाँच वर्णों की मानस अर्थात् मन में ही की

जाने वाली पूजा अवश्य ही करनी चाहिए ।२०। प्राणायाम करने के समय से सिद्धासन, कुम्भक प्राणायाम और अपने नेत्रों का मूँद कर रखना ये ही तीन क्रियाओं का करना सबसे श्रेष्ठ होता है ।२१। प्राणों का निरोध करने के समय में सुखासन पर बैठना चाहिए और शरीर को एकदम सीधा रखकर नेत्रों को बन्द करके ही प्राणायाम का आरम्भ करना चाहिए ।२१। जब प्राणायाम की समाप्ति करने का समय हो तब कुम्भक से जो श्वास रोकी गयी है उसको अपनी शक्ति के अनुसार बहुत ही धीरे से निकालना चाहिए यह श्रेष्ठ प्राणायाम की विधि है । एकदम दीर्घ श्वास को छोड़ देना हानिप्रद होता है ।२३। उसी कारण से सभी तरह के उपायों का आचरण करते हुए ही प्राणायाम का अभ्यास करे । जो पुरुष वर्णों और आश्रमों के धर्म का परित्याग करके गायत्री का पुरश्चरण किया करते हैं वे महापातकी होते हैं ।२४।

चतुर्थं परिच्छेदः

पादं पादं क्षिपेन्मूर्ध्नि प्रतिप्रणवसम्पुटम् ।
निक्षिपेदष्टपादं तु अधो यस्य क्षयाय च ।१
अष्टाक्षरं नवपदं पदादौ ब्रह्महा भवेत् ।
ऋचादौ मार्जनं कुर्यात् सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।२
यस्य क्षयाय पादं तु आपः सिन्धुत्वमेव ।
भूमौ पादौ विनिः शिष्य इतरत्मूर्ध्नि विन्यसेत् ।३
प्रातः सूर्यश्च मन्त्रेण सायंमग्निः पिवेज्जलम् ।
आपः पुनन्तु मध्याह्ने क्रमेणाऽऽचमनं न्यसेत् ।४
आपो हिष्ठेति मन्त्रेण नवपादं द्विवोरकम् ।
हिरण्यवर्णाश्चत्वारो दधिमन्त्र-द्विवारकम् ।५
पदादौ क्लीं मध्ये पदान्ते मार्जनं भवेत् ।
ऋचादौ प्रणव ऋचीरन्ते मार्जनं भवेत् ।६

सत्व रजस्तमो जातं मनो-वाक् कातिकादिषु ।
जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्त्यादि नवैतान्नवभिर्गहेत् ।७
दधि-द्विमार्जन चैव हिरण्यादि चतुष्टयम् ।
काम-क्रोधादि-षड्वर्ग मार्जयेत् सर्वमार्जनम् ।८

गायत्री मन्त्र में तीन पाद हैं । इन प्रत्येक पाद के आरम्भ में प्रणव (ॐकार) को लगा कर इससे समन्वित करना चाहिए । इस तरह से तीन वार अपने शिर पर अभिषिञ्चन करे । इसके अनन्तर "आपो हिष्ठामयो भुवः" इन मन्त्रों से अपने शिर पर जल छोड़ना चाहिए । ये मार्जन करने के नौ मन्त्र हैं और इनके प्रत्येक मन्त्र में आठ-आठ अक्षर होते हैं । वे मन्त्र निम्न प्रकार के होते हैं—१—आपोहिष्ठामयी भुवः २—तान ऊर्जे दधात नः, ३—महेरणाय चक्षसे, ४—मोवः शिवनमो रुद्रः,५—तस्य भाजतनेयः,६—उशती रिवः,मातरः७—तस्माऽवरङ्ग मामवः, ८—यस्य क्षयाय जिन्वथ, ९—आयोजनयथाचभः । इन मन्त्रों में केवल पद के आदि से ही मार्जन कभी न करे । ऐसा करने से ब्रह्म हत्या का महान् दोष लगा करता है । अतएव प्रत्येक मन्त्र के आदि से मार्जन करे । इसी विधि से मार्जन करने से अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त हुआ करता ।१-२। "यस्य क्षयाय जिन्वथ" "आयोजनयथा च नः',— इन दो मन्त्रों से भूमि पर जल छोड़ना चाहिए और अन्य ऋचाओं से अपने शरीर पर,मार्जन करे । त्रिकाल संध्या में तीनों कालों में आचमन करने के भिन्न-भिन्न मन्त्र होते हैं । प्रातःकाल जो सन्ध्या की जाती है उस समय में "सूर्यश्च मामन्युश्च" इत्यादि मन्त्र से आचमन करे । सायंकाल में "अग्निश्च मा मन्युश्च" इत्यादि ऋचा से आचमन करना चाहिए । मध्याह्न काल "आपः पुनन्तु पृथिवीम्" इत्यादि मन्त्र से आचमन करे । फिर "आपोहिष्ठा" इत्यादि नौ पादों वाले मन्त्र से दो बार आचमन करके 'हिरण्यवर्णा" तथा "दधि" इन मन्त्रों से दो-दो बार आचमन करना चाहिए ।३-४-५। इनमें प्रत्येक मन्त्र के 'क्लीं" यह पद तथा अन्त में प्रणव लगाकर पाठ करते हुए ही मार्जन करना चाहिए

।६। "आपोहिष्ठा" इत्यादि लेकर "आपोजनयथा च नः" इन मं ऋचाओं से कायिक, वाचिक, मानसिक, सात्विक, राजस, तामस, एवं जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति में किए गये नौ प्रकार के पापों से विमुक्ति हो जाया करती है ।७। "दधि" इत्यादि मन्त्र दो बार एवं 'हिरण्यादि मन्त्र से चार बार मार्जन करने का ऐसा फल होता है कि मनुष्य के काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर इन स्वाभाविक षड् वर्गों का विनाश हो जाया करता है ।८।

पंचम परिच्छेदः

सन्ध्यावन्दनवेलायामर्घ्यं दद्यात् त्रयं बुधः ।
सायं प्रातः समानः स्यान्मध्याह्ने च पृथगविधिः ॥१
एकं मध्याह्नकाले तु सायं प्रातःत्रयस्त्रयः ।
एवं ज्ञात्वा सृजेदर्घ्यं सूर्यं नक्षत्रपूर्वकम् ॥२
एकं शस्त्रास्त्रनाशाय एकं हननाशने ।
असुराणां वधायाऽर्घ्यं प्रायश्चित्तार्थसंयुतम् ॥३
दद्यात् केवलगायत्र्या मूढों ह्यर्घ्यं तु यो द्विजः ।
स बिन्दु-ब्राह्मणो नाम सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥४
ब्रह्मास्त्र नाभिजानाति स विप्रः शूद्र एव हि ।
तस्य कर्मादिकं जातं धर्माद्यं निष्फलं भवेत् ॥५
बीजमन्त्रेण गायत्र्या प्रणवेत्यभिधीयते ॥६
देहस्तु दण्ड इत्युक्त संज्ञाकवचमेत्र च ।
सर्वाङ्गानि पादो सर्वमन्त्रे त्वयं विधिः ॥७

सन्ध्या वन्दना में कतिपय बातें मुख्य होती हैं सङ्कल्प, सूर्यदेव अर्घ्य जप आदि ही परम मुख्य है । उस समय तो सूर्यदेव को तीन बा अर्घ्य देना ही चाहिए । सूर्य ही परम उपासना करने के योग्य देव है प्रातःकाल और सायं काल में यो अर्घ्य देने का विधान एकसा ही हो है केवल मध्याह्न सन्ध्या में इसकी विधि पृथक् होती है ।८। मध्याह

काल में सूर्यका साक्षिभूत केवल एक ही अर्घ्य पर्याप्त है तथा प्रातःकाल और सायंकाल में नक्षत्रों के साक्षिभूत तीन-तीन बार अर्घ्य समर्पित करना चाहिए ।२। इन तीनों अर्घ्यों में एक अर्घ्य तो सूर्यदेव के शत्रु राहु के शस्त्रों और अस्त्रों के विनाश के लिए दिया जाता है, दूसरा अर्घ्य उसके ही विनाश के लिए दिया है और तीसरा अर्घ्य समस्त असुरों के वध करने के लिए दिया जाया करता है । तीसरे अर्घ्य से राहु के द्वारा आयी हुई विपत्तियों का विनाश हुआ करता है ।३। जो ब्राह्मण केवल गायत्री मन्त्र से सूर्य को अर्घ्य दिया करता है वह बिन्दु संज्ञा वाला ब्राह्मण होता है और वह किसी भी धर्म-कर्म का अधिकारी नहीं हुआ करता है ।४। जो ब्राह्मण ब्रह्मास्त्र का ज्ञान नहीं रखता है वह शूद्र के ही समान होता है । ऐसे विप्र के द्वारा किया हुआ सभी धर्म-कर्म विफल हुआ करता है ।५। मन्त्र कीं यही विधि है कि जो गायत्री का बीज है वही प्रणव कहा जाता है । देह दण्ड है और गायत्री कवच इसकी संज्ञा है तथा पद और मन्त्र सभी अङ्ग होते है ।६७।

अस्त्राष्टवारतः प्रोक्ता गायत्री व्याप्त उच्यते ।
एतत् षण्मन्त्रक ज्ञात्वा अर्घ्यं दद्याद्धि नामतः ।।८
एक मध्याह्नकाले च प्रायश्चित्तं द्वितीयकम् ।
अर्घ्यद्वयं तु मध्याह्ने तथा भुक्तं महामुने ! ।।९
अर्घ्यत्रयं प्रयोगार्थं प्रायश्चित्तं चतुर्थकम् ।
सायं प्रातः द्विजादीनामेवमेव विधिः क्रमात् ।।१०
ब्रह्मास्त्र ब्रह्मदण्डं च ब्रह्मशीर्षं च संयुतम् ।
अर्घ्यत्रयं प्रयोगार्थमेवमुदाहृतम् ।।११
शस्त्रमादौ ततोदण्डं शिखात्रीणि समुच्चरेत् ।
पर्यायेण त्रिरुच्चार्यमंजलिं च त्रिधा हरेत् ।।१२
अर्घ्यत्रयं प्रयोक्तव्यमभिमन्त्रिमञ्जलिम् ।
त्रियवृतं विसृजेदर्घ्यममुराणां वधाय च ।।१३

अस्त्रदण्ड शिरोयुक्तमर्घ्यमेक समुच्चरेत् ।
अस्त्र वाहनरक्षोघ्नमेकाञ्जलिजलं क्षिपेत् ।१४

गायत्री मन्त्र में व्याप्त अस्त्रों का आठ बार प्रयोग करना आवश्य होता है । इन छै मन्त्रों का ज्ञान प्राप्त करके "सूर्याय नमः"—इस म से अर्घ्य देना चाहिए ।८। ऐसा ही विधान अर्घ्य दान का बताया ग है कि मध्याह्नकाल में एक अर्घ्य होता है । दूसरा जो अर्घ्य है व प्रायश्चित्त संज्ञा वाला होता है । इस रीति से ही अर्घ्य होते हैं । सायंकाल को सन्ध्या करने में तीन अर्घ्य दिए जाते हैं । चौथा अर्घ्य दिया जाता है वह प्रायश्चित संज्ञा वाला ही दिया जाया कर है । इस तरह से विप्रों को प्रातःकाल में तीन, मध्याह्न में दो औ सायंकाल की सन्ध्या में चार बार अर्घ्य देना चाहिए ।१०। प्रथम अ का नाम ब्रह्मास्त्र होता है दूसरे का नाम ब्रह्मा दण्ड है और तीसरे नाम ब्रह्माशीर्ष होता है । ऐसा ही विद्वानों का कथन हैं ।११। अ दान करने के समय में जब प्रथम अर्घ्य देवें तब 'इदं ब्रह्म शस्त्रम्'- यह और दूसरे अर्घ्य के देने के समय में "इदं ब्रह्मदण्डम्"—यह त तृतीय अर्घ्य में "इदं ब्रह्मशीर्षम्"—यह कहकर ही क्रम से हाथ में ब लेना चाहिए ।१२। इस रीति से गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित करके तीन बार अर्घ्य असुर गणों के वध के लिए अर्घ्य देना चाहिए ।१ पहिला अर्घ्य अखण्ड स्वरूप शिर से स्पर्श करते हुए ही एक अञ्जलि जल की भर कर छोड़नी चाहिए । अर्घ्य से सूर्य देव के बाहर सुरक्षा और राक्षस का विनाश हुआ करता है ।१४।

प्रायश्चित्तं द्वितीयार्घ्यमसुराणां वधाय च ।
प्रदक्षिणां पृथिव्यां च सर्वं पापैः प्रमुच्यते ।१५
असावादित्यमन्त्रेण ब्रह्मेत्यादि प्रदक्षिणम् ।
आपोभिरयुतं कार्यं सर्वाघौघ-निकृन्तनम् ।१६
'हं हं हं से'ति मन्त्रस्य वृहत्यन्तं समुच्चरन् ।
शिरसा दण्डमस्त्रं च सम्मुखे इव निक्षिपेत् ।

उपमन्त्रं समुच्चार्यं शिरस्तत्र समुद्धरेत् ।
अर्घ्यमेकं तु मध्याह्ने तथा भुक्तं महामुने ! ॥१८
तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन राक्षसी मुद्रिका भवेत् ।
राक्षसी-मुद्रिकादत्तं तत्तोयं रुधिरं भवेत् ॥१६
निक्षिपेद्यदि मूढात्मा रौरवं नरकं व्रजेत् ।
अङ्गुठात्छायापति देवता-मुद्रिका भवेत् ॥२०
देवता-मुद्रिकादत्ते सर्वे पापैः प्रमुच्यते ।
एवं विज्ञानमात्रेण सद्यः सिद्धिर्भविष्यति ॥२१

असुरगणों के वध के निमित्त प्रायश्चित स्वरूप दूसरा अर्घ्य अपने दाहिने भाग की ओर भूमि पर छोड़ना चाहिए । ऐसा करने से अर्घ्य दाता पुरुष सभी तरह के पापों से छुटकारा पा जाया करता है ।१५। गायत्री मन्त्र के साथ "असौ आदित्यो ब्रह्म"—ऐसा उच्चारण करके अर्घ्य देवे । ऐसे अर्घ्य जब दश सहस्र पूर्ण हो जाया करते हैं तब मानव के सभी प्रकार के पाप विनिष्ट हो जाया करते हैं ।१३। हंस-हंस 'बृहत्यन्त' मन्त्र को पढ़कर शिर से स्पर्श करते हुए अर्घ्य प्रदान सम्मुख में ही करना चाहिए । इसी को अस्त्र दण्ड कहते हैं ।१७। उपमन्त्र का उच्चारण करते हुए शिर से संयुक्त करके एक अर्घ्य मध्याह्न के समय में देना चाहिए ।१८। राक्षसी मुद्रा से दिया हुआ अर्घ्य निषिद्ध होता है और वह अर्घ्य का जल रुधिर के ही समान हो जाया करता है । तर्जनी अंगुलि और अंगूठा को युक्त कर देने से राक्षसी मुद्रा हो जाया करती है—अतएव इसका अर्घ्य दानमें पूर्ण ध्यान रखकर ही अर्घ्य दिया करते है । ऐसे मनुष्य को रौरव नरक प्राप्त हुआ करता है । जिस अर्घ्य में अंगुष्ठ की छाया पड़ा करती है वह देव मुद्रा कही जाया करती हैं ।२०। देव मुद्रा के देने पर मनुष्य सभी प्रकार के पापों से विमुक्त हो जाया करता है । इस प्रकार से इसके केवल विज्ञान से ही तुरन्त ही सिद्धि हो जाया करती है ।२१।

षष्ठ परिच्छेदः

ओंमित्येकाक्षरं प्रोक्तं न्यास-ध्यान-पुरःसरम् ।
यथाशक्ति जपं कुर्यादनित्यकर्म समाचरेत् ॥१
शुचिभूमौ लिखेद् यन्त्रं बीजे बिन्दुसमन्वितम् ।
बीजराजं लिखेन्मध्ये वह्निमण्डलमध्यगे ॥२
चतुरस्रं ततो हस्तं सुदृढं मृदु निर्मलम् ।
तत्रोपरि समासीनो गायत्री जप माचरेत् ॥३
मुखशुद्धि भूतशुद्धि च कृत्वा शोषणदानहनम् ।
प्लवते च ततः कुर्यात् प्रणवादित्रय क्षरैः ॥४
प्राणायामसमायुक्तं अन्तर्बाह्यं समातृकात् ।
देहें न्यासं ततः कुर्यात् कराङ्गन्यासमाचरेत् ॥५
ऋषि न्यसेत् पूर्वमुखे तथा च्छन्द उदीतरिम् ।
देवता हृदि विन्यस्य गुह्ये बीजमिति स्मृतम् ॥६
शक्तिं विन्यस्य आधारे पादयोः कीलकं न्यसेत् ।
एवं न्यासविधि कृत्वा ऋष्यादिन्यासपूर्वकम् ॥७
आवाहनादि-भेदं च दश-मुद्रा प्रदर्शयेत् ।
आयांतु वरदा देवी अङ्ग-प्रत्यङ्ग सङ्गमे ॥८
प्रातःगायत्री सावित्री मध्यान्हे च सरस्वती ।
एवंआवाहनं ज्ञात्वा सन्ध्यायां जपमाचरेत् ॥९

गायत्री का ध्यान तथा न्यास करने के पश्चात् ॐ—इसका जप करना चाहिए। इस ॐकार के जप के अनन्तर अपने नित्य कर्म का जो भी अनुष्ठान हो उसे सम्पन्न करना चाहिए ।१। परमशुद्धि भूमि पर मन्त्र का लेखन करके उसके ऊपर बिन्दु के साथ बीज मन्त्र लिखना चाहिए। अग्नि तत्व के अन्दर बीजराज को लिखे ।२। इस सबके करने के उपरान्त वहाँ पर चार हाथ परिणाम वाली एक परम सुन्दर एवं ठोस वेदी की रचना करनी चाहिए। उस वेदी पर बैठकर ही गायत्री

मन्त्र का जप करे ।३। सबसे पूर्व आत्मा की शुद्धि करके फिर भूत शुद्धि करनी चाहिएं । इसके उपरान्त प्रणव से समन्वित महा व्याहृतियों का उच्चारण कर प्लवन-क्रिया करे ।४। प्राणायाम करने के पश्चात् आन्तरिक एवं बाह्य शुद्धि करनी चाहिए । इसके अनन्तर अङ्गन्यास और करन्यास करना चाहिए ।४। मुख में छन्द और सप्तर्षियों का, हृदय में देवगणों का गुह्य स्थान में बीज का न्यास करें ।५। आधार में शक्ति का यम चरणों में कीलक का उच्चारण करके न्यास करना चाहिए । इस रीति से ऋषि आदि का न्यास करके आवाहन आदि करे और कि दश मुद्राओं को प्रदर्शित करना चाहिए । ध्यान की रीति यह है कि प्रातःकाल के समय में साधक अङ्ग-प्रत्यङ्ग में वरदा गायत्री देवी का ध्यान करें, मध्यान्ह में सावित्री देवी का तथा सायंकाल में सरस्वती का ध्यान करना चाहिए । इसी रीति से आवाहन करके गायत्री मन्त्र का जप करने का विधान है ।७-६।

हस्ताभ्यामनुलोमेन आवाहनमनाहुते ।
नामत्रयमृषिश्छन्दः क्रमेणाऽऽवाहन भवेत् ॥१०
मूलाधारेण गायत्री सावित्री मणिपूरके ।
द्वादशारे सरस्वती छन्दो नाडीत्रयं तथा ॥११
ऋषिर्मूध्नि सुविज्ञेयं आवाहनमनुक्रमात् ।
आवाहनं यथोक्तं च यथोक्तं तु विसर्जनम् ॥१२
एवं जानीहि विप्रेन्द्र ! जपध्यान समाचरेत् ।
आवाहनं ततो न्यासं विना जाप्यं तु निष्फलम् ॥१३
चतुर्विंशतिगायत्रीं प्रातः स्नात्वा जपेन्मनुम् ।
प्राणायामं ततः कुर्यान्न्यास ध्यानं समाचरेत् ॥१४

साधक अपने दोनों करो को सीधा रखकर ही आवाहन करे आवाहन के काल में क्रम से ऋषि देवता एवं छन्द का उच्चारण करना भी नितान्त आवश्यक होता है ।१०। यह ध्यान रखना चाहिए कि गायत्री मूलाधार में निवास किया करती है तथा मणिपूरक चक्र में सावित्री

देवी और द्वादशार चक्र में सरस्वती देवी का निवास हुआ करता है। इडा, पिङ्गला और सुषुम्ना–इन तीन प्रमुख नाड़ियोंमें छन्दों का निवास हुआ करता है ।११। मूर्धा में ऋषियों का निवास रहा करता है। दस तरह से क्रमानुसार ही देवता, ऋषि और छन्द के साथ ही आवाहन करना चाहिए। इसी विधि से "उत्तम शिखरे भूम्यां जाता पर्वत मूर्धनि। गायत्री छन्दां मातागच्छ देवि यथा सुखम्' अर्थात् हे छन्दों की माता गायत्री देवि आप उत्तर शिखर पर भूमि में पर्वत की चोटी पर विद्यमान रहा करती हैं। अब आप सुखपूर्वक यहाँ से गमन कीजिये। इस विधि से गायत्री देवी का विसर्जन करना चाहिए ।१२। हे विप्रेन्द्र ! यही विधान हैं, इसका सर्व प्रथम ज्ञान प्राप्त कर लो। फिर गायत्री का ध्यान और जप करना चाहिए। विना विधि आवाहन के और ध्यान के गायत्री का जप निष्फल ही हुआ करता है ।१३। नित्य ही प्रातःकाल में स्नान करके प्राणायाम, अङ्गन्यास और ध्यान करके इस सबके उपरान्त चौबीस अक्षरों से युक्त गायत्री मन्त्र का जप करना चाहिए ।१४।

करन्यासं तयः कुर्यात्अङ्गन्यासं तथैव च।
चतुश्चतुश्चतुष्कं च चतुश्चतुश्चतुः ॥१५
षडाङ्ग विन्यसेद् देवी गायत्रीं वेदमातरम्।
व्याहृतित्रयमुच्चार्य अनुलोमं च बिभ्रतः ॥१६
करा ङ्गन्यासमारभ्य गायत्री पूर्ववद्भवेत्।
अकारं च उकारं च मकारं बिन्दुसंयुतम् ॥१७
अनुलोमं न्यसेत्तत्र त्रिराक्षरसमन्वितम्।
चतुर्विंशतिवर्णानां पल्लवोऽयमुदाहृतः ॥१८
चतुराक्षरसंयुक्तं करांगन्यासमाचरेत्।
तुर्यपदं विना न्यासमाद्यन्तं प्रणवैः सह ॥१९
व्याहृतित्रयमुच्चार्य चतुराक्षरसंयुक्तम्।
पुनर्व्याहृतिमुच्चार्य करांगन्यासमाचरेत् ॥२०

पादंपादं द्विपादं च प्रतिप्रंणवसम्पुटम् ।
करांगन्यास-संयोगात् षड्भागैस्त्रिपदा भवेत् ॥२१
अंगुष्ठादि-चतुर्वर्णामनुलोमक्रमेण तु ।
हृदयादि-चतुर्वर्णा क्रमेणैव विलोमतः ॥२२
चतुर्वर्णान् विना यस्तान् विपर्णं संन्यसेद् द्विजः ।
तस्य वैफलमाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः ॥२३
अंगन्यासं करन्यासं देहन्यासं विना जपेत् ।
अन्धत्वं बधिरत्वं च मूकत्वं च प्राप्नुयाः मनुः ॥२४

स्नान के उपरान्त चार प्राणायाम चार ध्यान, चार अंगन्यास और चार करन्यास करके ही सबके अनन्तर जप करे ।१५। समस्त वेदों की जननी गायत्री के प्रथम तीन व्याहृतियों का (भूः भुवः स्वः) उच्चारण करके षडांगन्यास करना चाहिए । फिर करन्यास करे । गायत्री से प्रणव अर्थात् अकार उकार और मकार का प्रयोग ॐ में करे ।१६-१७।पल्लव विधि यही होती है कि अनुलोम गायत्री के तीन-तीन अक्षरों में चौबीस वर्णों का न्यास करे और अनुलोम गायत्री के चार-चार अक्षरों से कर-न्यास करना चाहिए तथा न्यास के आदि एवं अन्त में प्रणव अवश्य ही रहना चाहिए । चतुर्थ पाद का न्यास नहीं करे ।१८-१९। तीन व्याहृतियों का उच्चारण करके गायत्री के चार-चार अक्षरों में न्यास करना चाहिए । फिर व्याहृतियों का उच्चारण करें ।२०। त्रिपदा गायत्री का चार-चार अक्षरों में छै भाग करने चाहिए फिर प्रत्येक में पाद-पाद के ही अनुसार प्रणव लगाकर न्यास करे ।२१। अंगुष्ठ आदि क्रमों से चार-चार वर्णों वाली, गायत्री के छै भागो से न्यास करें । विलोम क्रम से हृदय आदि का न्यास करे ।२२। जो कोई चार-चार वर्णों के बिना ही न्यास किया करते हैं उनका किया हुआ जप निष्फल होता है । यह सर्वथा सत्य है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । जो अङ्गन्यास और कर-न्यास के बिना ही जप करते हैं वे अन्धे, बहिरे और गूँगे हो जाया करते हैं ।२१-२४।

सप्तम परिच्छेदः

ध्यानं मुद्रां नमस्कारं गुरुमन्त्र तथैव च ।
संयोगमात्मसिद्धि च पञ्चधैवं विभावयेत् ॥१
प्रातः केवलगायत्री मध्याह्ने व्याहृतीयुता ।
सायाह्ने तुर्य या युक्तां नित्यजाप्यं समाचरेत् ॥२
पादादो रेफसंयुक्तां गायत्रीजपलक्षकम् ॥३
पादत्रयं समुच्चार्य प्रतिलोमं ततश्चरेत् ।
रेफबिन्दु तदाद्यन्तौ गायत्रीजपमाचरेत् ॥४
गायत्रीं पूर्वमुच्चार्य तुर्यान्त्यादिविलोमतः ।
सायं सन्ध्यां जपेदेवं साधकः सर्वसिद्धये ॥५
तुकारादि-यकारान्तमनुलोमं विलोमतः ।
तुर्यपादं तु विना मन्त्रं प्रातः सन्ध्यामथाचरेत् ॥६
भकारादि-हिकारान्तं मध्यपादमिति स्मृतम् ।
तृतीयं तु प्रयोक्तव्यं तदर्ध्यं प्रथमं भवेत् ॥७
क्षकारादि-यकारान्तं तृतीयं पादमुच्चरेत् ।
प्रथमं च द्वितीयं च त्रिविधं जपलक्षणम् ॥८

साधना करने वाले द्विज को प्रमुख पांच बातों का ध्यान रखना परमावश्यक है। ध्यान, मुद्रा, नमस्कार, गुरुमन्त्र और अपनी सिद्धि के साथ संयोग--ये ही पांच बातें हैं । प्रातःकाल केवल गायत्री का मध्याह्न में व्याहृतियों से युक्त तथा सायं काल में तुरीय (प्रणव) से युक्त करके गायत्री का जप करे ।१।२। प्रत्येक पाद के आदि में ॐ इस बीज मन्त्र का उच्चारण करके जप करना चाहिए ।३। गायत्री के तीनों पादों का उच्चारण करके पुनः उसका उल्टा उच्चारण करे । और आदि अन्त में 'ॐ भू' का भी उच्चारण करना परमावश्यक होता है ।४। सायं बेला में एक बार गायत्री का उच्चारण करके पुनः उसका विलोम जप से उच्चारण करना चाहिए । ऐसे ही विधान से जप करने

से जप साधना से पुरुष के समस्त कार्यों की सिद्धि हो जाया करती है ।५। तत् के तकार से लेकर 'यत्' तक का उच्चारण गायत्री का अनुलोम उच्चारण कहा जाता है । 'यात्' के आरम्भ कर 'तत्' पर्यन्त उच्चारण करना गायत्री का विलोम उच्चारण कहा जाता है । चौथे पाद के विना ही प्रातःकाल गायत्री मन्त्र का जप करे । गायत्री के चौवीस अक्षरों में छै छै अक्षरों की गणना से चार पाद हुआ करते हैं । इसमें चतुर्थपाद---"योनः प्रचोदयात्"---यही होता है ।३। 'भर्गो' के मकार से आरम्भ करके धीमहि" के 'हि' उस वर्ण तक गायत्री मन्त्र का मध्यपाद कहा जाया करता है अर्घ्यदान जब किया जाता है उस समय में तीनों उक्त पादों का भली भाँति उच्चारण करके ही अर्घ्य अर्पित करना चाहिए । 'धियो' के धकार से लेकर 'यात्' के मकार पर्यन्त तीसरा पाद होता है । इसी रीति से पहले-दूसरे और तीसरे पाद के उच्चारण के साथ गायत्री मन्त्र का जप करना चाहिये ।७-८।

कालत्रयं त्रिधा जाप्यं त्रिकालं विविध स्मृतम् ।
अनुलोम-विलोमाभ्यां चिरं सिद्धिमवाप्नुयात् ॥९

चतुर्विंशति वर्णानामनुलोमं जपेदपि ।
पूर्णजाप्यफलं नास्ति अर्द्ध जाप्यफलं लभेत् ॥१०

चतुष्पादं तु गायत्री अनुलोम-विलोमतः ।
नित्यं जाप्यं प्रकुर्वीत मुक्ति भुक्ति लभेन्नरः ॥११

नित्यं-नैमित्तकाम्यादि-व्यस्त-ऽव्यस्तं जपन्मनुम् ।
प्रात-र्मध्यान्ह-सायाह्न जपेदेवं क्रमेण तु ॥१२

जपपारायणं कुर्यात् त्रिपदा सम्पुटं नव ।
एवं ज्ञात्वा जपेन्नित्यमेकः कोटिगुणं भवेत् ॥१३

कालत्रयं यथोक्तं च जाप्यपारायणं परम् ।
अनन्तफलमाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः ॥१४

अष्टोत्तरसहस्रं वा अष्टोत्तरशतं तु वा ।
अष्टाविंशतिमेवाऽथ गायत्रीदशकं जपेत् ॥१५

ओंकारः पुरुषश्चैव गायत्री सुन्दरी तथा ।
तयोः संयोगकाले तु वस्त्रेणाच्छाद्य गण्यते ॥१६
वरेण्यं विरलं चोक्त्वा जपकाले विशेषतः ।
पारायणेषु युक्तं स्यादन्यथा विफलं भवेत् ॥१७

त्रिकाल प्रातः मध्यान्ह और सायंकाल के भेदों से तीन प्रकार का होता है । इन तीनों कालों में तीनों पादो से समन्वित गायत्री का जप करना चाहिये। इसी रीति में ऊपर में बताये हुए विधानके अनुसार अनुलोम एवं प्रतिलोम के क्रम से गायत्री का जप करने से बहुत शीघ्र ही सिद्धि का लाभ हो जाया करता है ।९। चौबीस वर्णो वाली गायत्री का केवल अनुलोम जप करके भी प्रतिलोम गायत्री का जप न करने पर इस जप का पूरा-पूरा फल प्राप्त नहीं हुआ करता है । ऐसा करने से सिर्फ आधे जप का ही फल प्राप्त हुआ करता है ।१०। गायत्री मन्त्र के क्रम से चार पाद होते हैं । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्" इसमें जो चार पाद हैं. इनका एक बार अनुलोम जप तथा यात् से आरम्भ करके क्रम से प्रत्येक पाद का प्रतिलोम जप करने से जापक पुरुष को सांसारिक सुखों का उपभोग और सांसारिक भीषण बन्धनों से अन्त में छुटकारा दोनों ही प्राप्त हुआ करते हैं ।११ कर्म भी तीन प्रकार के होते हैं कुछ कर्म नैत्यिक हैं कुछ निमित्त के लिए किये जाते हैं वे नैमित्तिक हैं और कुछ कर्म विशेष कामना को लेकर किये जाते हैं वे काम्य होते हैं । इन सभी में गायत्री का अनुलोम एवं प्रतिलोम जप प्रातः मध्यान्ह और सायंकाल में अवश्य ही करना चाहिए ।१२। गायत्री त्रिपदा होती है---इसका नौ बार सम्पुटित करके गायत्री मन्त्र का पारायण करे । इस रीति से किया गया एक बार का जप भी करोड़ों गुना फल देने वाला हुआ करता है।१३।प्रातः मध्यान्ह और सायं समय में त्रिकाल में इसी विधि से किया हुआ जप अत्यन्त फल का प्रदान करने वाला हुआ करता है । यह कथन सर्वथा सत्य है और इसमें लेशमात्र भी संशय का का अवसर नहीं है ।१४। विप्र के

गायत्री का जप अवश्य ही करना चाहिए। प्रतिदिन कम से कम १००८ बार जप करे। यदि इतना न कर सके तो १०८ बार करे। यह भी न बन सके तो २८ बार और कम से कम १० बार तो अवश्य ही गायत्री का जप करना ही चाहिए।१५। ॐकार पुरुष हैं, गायत्री उसकी सुन्दरी प्रियतमा है। इन दोनों का संयोग करके गायत्री के जप करने में वस्त्र से ढककर ही गणना करे। जप काल में वरेण्यं विरतं' कहकर जप का पारायण करे। ऐसा न करने से गायत्री के जप का फल नष्ट होता हैं ।१६-१७।

गायत्री पद्धति

गायत्री पंचागम्

ब्रह्म-विष्णु-शिवाराध्यां गायत्रीं लोकपावनीम्।
नमस्कृत्यानुरोधेन लिखेयं पद्धतिं क्रमात् ॥१

साधकः ब्राह्मे मुहुर्ते चोत्थाय यथोक्तं शौचं कृत्वा, नद्यादौ स्नानं कृत्वा, प्राणायामत्रयं च कृत्वा अर्घ्यान्तां सन्ध्यां कुर्यात्।

प्राणायाम—

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यं ॐतत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् आपो ज्योति रसोऽमृत ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्।

त्रिदेव अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश के द्वारा वन्द्यमाना तथा समस्त लोकों को पवित्र कर देने वाली वेद- जननी गायत्री को चरणों में नमस्कार करके मैं गायत्री की पद्धति को लिपिबद्ध कर रहा हूँ। साधना करने वाले मनुष्य को चाहिए कि प्रातःकाल में ब्रह्म मुहूर्त्त में शय्या का त्याग करके शास्त्र में वर्णित रीति के ही अनुसार शौच आदि क्रिया

कलाप को पूर्ण करके नदी आदि किसी जलाशयमें स्नान करे और फिर तीन बार प्राणायाम करके सूर्य देव के अर्घ्य प्रदान तक संध्या की उपासना करे । प्राणायाम करने के समय में ॐ भू:—ॐ भुव:—ॐ स्व:—'—इनसे आरम्भ करके 'ब्रह्म भूर्भुव: स्व: तक मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए । इसके अनन्तर विनियोग करे ।

प्रणवस्य ब्रह्माऋषि:, गायत्रीच्छन्द:, परमात्मादेवताशरीर शुद्ध्यर्थं जपे विनियोग: ।

ब्रह्मणे नम: शिरसि । गायत्रींच्छन्दसे नम: मुखे । परमात्मा देवतायै नम: हृदये । करसम्पुटं कृत्वा समस्तदुरितक्षयार्थं न्यासं करिष्ये ।

साधक दक्षिण कर में जल लेकर 'प्रणवस्य ऋषि:' से आरम्भ करके 'जपेविनियोग:' तक मन्त्र को पढ़कर उस जल को भूमि पर छोड़ देवे । इसके अनन्तर 'ब्रह्मणे नम: शिरसि'—इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए शिर का स्पर्श करना चाहिए । 'गायत्रीच्छन्दसे नम: मुखे'—इस मन्त्र से मुख का स्पर्श करे । इसके उपरान्त दोनों हाथों को जोड़कर "समस्त दुरित क्षयार्थं न्यासं करिष्ये' इसको बोलकर संकल्प करना चाहिए ।

व्याहृतीनां जमदग्नि भरद्वाजोऽत्रि-गौतम-काश्यपं-विश्वामित्रं वसिष्ठादि- ऋषिभ्यो नम: शिरसि । सप्तर्चिरनिल-वितृ-प्रजापति-वरुणेन्द्र-विश्वेदेवताभ्यो नम: मुखे । गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्बृहती-पंक्ति-त्रिष्टुप्-जगतीच्छन्दोभ्यो नम: हृदि एवं कर सम्पुटं कृत्वा समस्तदुरितक्षयार्थे गायत्रीन्यास: ।

गायत्र्या विश्वामित्रऋषये नम: शिरसि गायत्रीच्छन्द से नम: मुखे । परमात्मा देवतायै नम: हृदये ।

इसके अनन्तर 'व्याहृतीनां जमदग्नि' यहां से आरम्भ करके 'ऋषिभ्यो नमः शिरसि' पर्यन्त पढ़कर शिर का स्पर्श करे। 'सप्ताचिरनिल' से आरम्भ करके 'देवताभ्यो नमः मुखे' तक मन्त्र का उच्चारण करके मुख का स्पर्श करे। गायत्र्युष्णिगनुष्टुप' से आरम्भ करके 'छन्दोभ्यो नम हृदि' तक पढ़कर हृदय का स्पर्श करना चाहिए। इस सबके करने के पीछे अपने करों को जोड़कर समस्त के लिए पापनाश गायत्री न्यास—'गायत्री विश्वामित्र ऋषये नमः शिरसि' इस मन्त्र का उच्चारण करके शिर का स्पर्श करे। 'परमात्मा देवतायै नमः हृदये' इस मन्त्र का उच्चारण करके हृदय का स्पर्श करना चाहिए।

व्याहृतिन्यास :

ॐ भूः नमः हृदये। ॐ भुवः नमः मुखे। ॐस्वः नमःदक्षांसे। ॐ महः नमः वामांसे। ॐ जनः नमः दक्षिणोरौ। ॐ तपः नमः वामोरौ। ॐ सत्यः नम. जठरे। इति व्याहृतिन्यासः।

'ओ३म् भूः नमः हृदये" इससे हृदय का स्पर्श करना चाहिए। ॐ भुवः नमः मुखे' इससे मुख का, 'ओ३म् स्वः नमः दक्षांसे" इससे दाहिने कन्धे का, 'ओ३म् महः नमः वामां से' इससे बायें कन्धे का, 'ॐ जनः नमः दक्षिणोरौ' इससे दाहिने कटि भाग के नीचे का 'ओ३म् तपः नमः वामोरौ इससे वाम भाग की ओर कटि के निचले भाग का, 'ओ३म् सत्यः नमः जठरे" इस मन्त्र से उदर का स्पर्श करना चाहिए।

अक्षरन्यास :

ॐ तत् नमः गुल्मयोः। ॐ सं नमः पादपार्श्वयोः। ॐ वि नमः जान्वोः। ॐ तु नमः पादमुखयोः। ॐ वं नमः जंघयोः। ॐ रें नमः नाभौ। ॐ णि नमः हृदये। ॐ यं नमः कण्ठे। ॐ भं नमः हस्तयोः। ॐ र्गो नमः मणिबन्धयोः। ॐ दें नमः कर्पूयोः। ॐ वं नमः बाहुमूलयः। ॐ स्यं नमः आस्ये। ॐ धीं नमः नासापुटयोः। ॐ मां नमः कपोलयोः। ॐ हिं नमः नेत्रयोः

ॐ धि नमः कर्णयोः ॐ यों नमः भ्रूमध्ये । ॐयों नमः' मस्तके। ॐ नं नमः पश्चिमवक्त्रे । ॐ प्र नमः उत्तरवक्त्रो । ॐचों नमः दक्षिणवक्त्रो । ॐ दं नमः पूर्ववक्त्रे । ॐ यातं नमः ऊर्ध्ववक्त्रे । इत्याक्षरान्यासः ।

'ॐ तत् नमः' इससे पैरों के दो टखनों से नीचे के भागों का स्पर्श करें । ॐ सं नमः पाद पार्श्वयोः इससे चरणों के दोनों भागों का स्पर्श करे । 'ॐ विं नमः जान्वोः' इससे दोनों घुटनों का स्पर्श करे । 'ॐ तु नमः पाद मुखयोः । इससे पैरो के अग्र भागों का स्पर्श करे । ॐवं नमः जंघयो' इससे दोनों जाँघों का स्पर्श करे । 'ॐ रं नमः नाभौ' इससे नाभि का स्पर्श करना चाहिए । 'ॐ णिं नमः हृदये' इससे हृदय का स्पर्श करे । 'ॐ यं नमः कण्ठे इससे कण्ठ का स्पर्श करे । 'ॐ भं नमः हस्तयोः' इससे दोनों हाथों का स्पर्श करे । ॐ र्गों नमः मणिबन्धयोः इससे दोनों कलाइयों का स्पर्श करे । 'ॐ दें नमः कर्पूयोः' इससे दोनों हाथों की कुहनियों का स्पर्श करे। ॐ वं नमः बाहु मूलयोः' इससे दोनों बाहु मूलों का स्पर्श करे । 'ॐ स्यं नमः आस्ये' इससे मुख का स्पर्श करे । 'ॐ धीं नमः नासापुटयोः'' इस मन्त्र से दोनों नासिका के छिद्रों का स्पर्श करे । 'ॐ मं नमः कपोलयोः इससे दोनों कपोलों का स्पर्श करे । ॐ हिं नमः नेत्रयोः' इस मन्त्र से दोनों नेत्रों का स्पर्श करना चाहिए । 'ॐ धि नमः कर्णयोः' इस से दोनों कानों का स्पर्श करे। 'ऋ यों नमः भ्रूमध्ये' इस मन्त्र से दोनों भौंहों के मध्य में स्पर्श करे । 'ॐ यों नमः मस्तके' इस मन्त्र से मस्तक का स्पर्श करे । ॐ नं नमः पश्चिम वक्त्रे' इस मन्त्र से मुख के पश्चिम भाग का स्पर्श करो 'ॐ प्र नमः उत्तर वक्त्रे' इससे उत्तर भाग के मुख का स्पर्श करे । 'ॐ चों नमः दक्षिण वक्त्रे' इस मन्त्र से मुख के दक्षिण भाग का स्पर्श करे ।'ॐ दं नमः पूर्व वक्त्रे' इस मन्त्र से मुख के पूर्व भाग का स्पर्श करना चाहिए ।' 'ॐ यातं ऊर्ध्व वक्त्रे' इससे मुख के ऊपर वाले भाग का स्पर्श करना चाहिए ।

पदन्यास :

ॐ तत् नमः शिरसि । ॐ सवितुर्नमः भ्रुवोर्मध्ये। ॐ वरेण्यं नमः नेत्रयो, । ॐ भर्गो नमः मुखे । ॐ देवस्य नमः जठरे । ॐ धीमहि नमः हृदये । ॐ धियो नमः नाभौ । ॐ यो नमः गुह्ये । ॐ नः नमः जान्वोः ॐ प्रचोदयात् नमः पादयोः । ॐ आपा ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोमिति शिरसि । इति पदन्यासः ।

ॐ तत् नमः शिरसि इससे शिर का स्पर्श करे । ॐ तत्सवितुर्नमः' इससे भौंहों के मध्य का स्पर्श करें । 'ॐ वरेण्यं नमः' इससे दोनों नेत्रों का. 'ॐ भर्गो नमः' इससे मुख का, 'ॐ देवस्य नमः' उससे उदर का, 'ॐ धीमहि नमः इससे हृदय का, 'ॐ धियो नमः' इससे नाभि का ॐ यो नमः' इससे गुह्य का, ॐ नः नमः' इससे दोनों जानुओं का, ॐ प्रचोदयात् नमः' इससे दोनों चरणों का, ॐ आपोज्योतिरसोऽमृत ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्' इससे पुनः शिर का स्पर्श करना चाहिए ।

पादन्यास :

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं नमः नाभ्यादि-पादे पातम् । ॐ भर्गो देवस्य धीमहि नमः हृदयादि नाभ्यन्तम् । ॐ धियो यो नः प्रचोदयात् नमः मूर्धादि हृदयान्तम् । ॐ परोरजसे सावदोम् इति मूर्ध्नि विन्यस्य ।

'ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं नमः इससे नाभि से लेकर पैर तक के शरीर के भाग का स्पर्श करे । ॐ भर्गो देवस्य धीमहि नमः इससे हृदय से नाभि तक तथा 'ॐ धियो यो नः प्रचोदयात् नमः' इससे शिरसे आरम्भ करके हृदय तक स्पर्श करे । 'ॐ परो रजसे सावदोम् इससे पुनः शिर का स्पर्श करना चाहिए ।

षडांगन्यास :

ॐ ब्रह्मणे हृदयायः । ॐ विष्णवे शिरसे स्वाहा । ॐ रुद्राय शिखायै वषट् । ॐ ईश्वराय कवचाय हुम् । ॐ सदा-

शिवाय नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ सर्वात्मने अस्त्राय फट् । इति मन्त्रणीश्च्वऽधस्तालत्रयं कृत्वा त्रोटिकमुद्रया दिग्बन्धनं विधाय मूलेन व्यापकं कुर्यात् । इति षडाङ्गम् ।

'ॐ ब्रह्मणे हृदयाय नमः' इसको पढ़कर हथेली से हृदय का स्पर्श करे । 'ॐ विष्णवे शिरसे स्वाहा' इससे चारों अंगुलियों के द्वारा अंगुलियों के अग्र भाग से मस्तक स्पर्श करे । 'ॐ रुद्राय शिखायै वषट्' इसको पढ़कर शिखा में अङ्गुष्ठ से स्पर्श करे । ॐ ईश्वराय कवचाय हुम्" इससे दाहिनी कनिष्ठा के मूल से बाँयी भुजा का और बाँये हाथ की कनिष्ठा के मूल से दाहिनी भुजा का स्पर्श करे । ॐ सदा शिवाय नेत्रत्रयाय वौषट्' इससे मध्यमा एवं तर्जनी अँगुली से तीनों नेत्रों का स्पर्श करे । 'ॐ सर्वात्मने अस्त्राय फट्' इससे बायें हाथ की हथेली पर दाहिने हाथ की मध्यमा तथा तर्जनी से तीन बार ताली बजावे । इसी रीतिसे तीन-तीन बार हृदय आदिका स्पर्श करता हुआ चारों चुटकियों से चारों ओर दिग्बन्धन करे तथा व्यापक मुद्रा प्रदर्शित करे । दोनों हाथों को उत्ताल करने की विधि को ही व्यापक मुद्रा कहा जाता है।

लयांगन्यासः :

ॐ अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः, कं खं गं घं ङं, चं छं जं झं ञं, टं ठं डं ढं णं, तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं, यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं । ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् । क्षं लं हं सं षं शं वं लं रं यं मं भं बं फं पं नं धं दं थं तं णं ढं डं ठं टं ञं जं छं चं ङं घं गं खं कं अः अं औं ओं ऐं एं लॄं लृं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं तयादचोप्र नः यो योधि हिमधी स्यवदे गोंभर्ण्यरेवंतुवित्सत स्वः भुंवः भूः ॐ इति हृदयादि-मुखान्तम् । एवमेव हृदयादि केशान्तम् । तथैव व्यापकम् इति लयाङ्गन्यासः ।

ॐ अं आं इं ईं' से आरम्भ करके ॐ स्वः ॐ भुवः भूः ॐ' पर्यन्त

उच्चारण करके प्रथम बार हृदय से मुख तक और फिर दूसरी बार उपर्युक्त मन्त्र को पढ़कर हृदय से केशों तक शरीर के भाग का स्पर्श करना चाहिए।

पीठन्यास :

ॐ मं मण्डूकाय नमः मूलाधारे। ॐ कं कालाग्निरुद्राय नमः स्वाधिष्ठाने। ॐ मं मूलप्रकृत्यै नमः नाभौ। ॐ आं आधारशक्तये नमः हृदये। कं कूर्माय नमः। वं वरदाय नमः। धं धारिण्यै नमः। कं सुधासिन्धवे नमः। रं रत्नद्वीपाय नमः मं मणिमण्डपाय नमः कं। कल्पवृक्षाय नमः। स्वं स्वर्णवेदिकायै नमः रं रत्नसिंहासनाय नमः दक्षांसे। धं धर्माय नमः वामांसे। ज्ञां ज्ञानाय नमः वामोरौ। वं वैराग्याय नमः दक्षोरौ। ऐं ऐश्वर्याय नमः मुखे। अं अधर्माय नमः वाम पार्श्वे। अं अनानाय नमः दक्षपार्श्वे। अं अवैराग्याय नमः नाभौ। अं अनैश्वराय नमः हृदये। अं अनन्ताय नमः उपर्युपरि। इति विन्यसेत्।

अं 'अम्बुजाय नमः सं सवन्नालय नमः सर्वतत्त्वात्मकाय' पद्माय नमः। प्रं प्रकृतिमयपत्रेभ्यो नमः। वि विकारमयकेशरेभ्यो नमः। पं पञ्चाशद्वर्णकर्णिकायै नमः। वं द्वादशकलात्मने सूर्यमण्डलाय नमः। वं षोडशकलात्मने चन्द्रमण्डलाय नमः। सं सत्वात्मने नमः। रं रजसे नमः। तं तमसे नमः। आं आत्मने नमः। अं अन्तरात्मने नमः। पं परमात्मने नमः। ह्रीं दीप्तायै नमः। ह्रीं सूक्ष्मायै नमः ह्रीं विद्युतायै नमः पीठमध्ये सर्वतोमुख्यै नमः। तदुपरि नित्यपूजाचक्रं विधाय। ॐ ब्रह्म विष्णुरुद्राऽम्बिकात्मकाय सौरपीठात्मने नमः। इति पीठन्यासः।

मूलेन प्राणायामत्रयं व्यापकं च कृत्वा ध्यायेत्।

मुक्ता-विद्रुम-हेम-नील-धवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणै-

युक्तामिन्दु-निवद्ध रत्नमुकुटां तत्वार्थ-वर्णात्मिकाम् ।
गायत्रीं वरदा-ऽभया-ऽकुंश-कशां शुभ्रं कपालं गुणं
शंखं चक्रमथार-बिन्दुयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे ॥

इति ध्यात्वा वहि पूजोक्तरीत्या: देवीं सौवर्णि च सम्पूज्य गन्ध पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य-ताम्बूलाद्युपचारान् प्रकल्प्य किंचिज्जपित्वा ।

इसके अनन्तर 'ॐ मंडूकाय नमः' यहाँ से आरम्भ करके ॐ ब्रह्म विष्णु रुद्रा' विकारात्मकाय सौरपीठात्मने नमः' यहाँ पर्यन्त प्रत्येक मन्त्र के द्वारा गायत्री के आसन पर अक्षतों का प्रक्षेप करना चाहिए। इसके अनन्तर पूजा चक्र की रचना करके जो कि उसके ऊपर बनाना चाहिए 'ॐ ब्रह्म-विष्णु रुद्राम्बिकात्मकाय' से आरम्भ करके पीठात्मने नमः' पर्यन्त पढ़कर पूजा चक्र पर अक्षतों का प्रक्षेप करना चाहिए । इसको करके 'मुक्ता विद्रुम' इत्यादि श्लोक का पाठ करके गायत्री का ध्यान करना चाहिए। श्लोकका अर्थ-- नारियों के समुचित और परम शोभन मुक्ता विद्रुम, स्वर्ण, नील एवं परम स्वच्छ कान्ति से युक्त मुखों से समन्वित---चन्द्र एवं विविध रत्नों से भूषित मुकुट को धारण करने वाली---वरदान, अभयदान, अंकुश कशा-शुभ्र कपाल-यज्ञोपवीत-शंख-चक्र और दो कमलों को अपने करों में धारण करने वाली गायत्री महादेवी का हम ध्यान करते हैं। इस रीति से ध्यान करके बाहिर पूजा चक्र में स्थापित सुवर्ण निर्मित गायत्री की प्रतिमा के आगे गन्ध, पुष्प, धूप, दीप नैवेद्य, ताम्बूल आदि अर्चन की सामग्री को एकत्रित करके गायत्री मन्त्र का जप करता हुआ उक्त पूजनोपचारों के द्वारा गायत्री अर्चन करे। इस बाहिरी पूजाके पहिले गायत्री का मानस पूजन करना चाहिये।

मानस पूजा---

स्वागतं देवदेवेशि ऽ सन्निधौ महेश्वरि !

गृहाण मानसी पूजां यथार्थपरिभाविताम् ॥

दशधा मूलं जपित्वा जपं देव्या वामकरे समर्प्य मनसा पुष्पाञ्जलिं दत्वा क्षणं तदात्मकं विभाव्य वरदा-ऽभय-ङ्कुश-कशा-कपालगुण-शंख-चक्राभ-योन्यादिमुद्राः प्रदर्शयेत् । इति मानसीपूजा ।

अथ वहिःपूजार्थमनुज्ञाप्य बहिःपूजां कुर्यात् । स्ववामे अस्त्रक्षालितत्रिपादिकां निधाय तदुपरि अस्त्रक्षालितं कलशं निधाय शुद्धतोयं मलेनापूर्य्य मूलेनाऽष्टकृत्वोऽभिमन्त्र्य जातवेदसे इत्यृचा त्र्यम्बकमिति ऋचा गायत्र्या च सकृदभिमत्र्य गन्ध-पुष्पाभ्यां पूजयेत् । इति कलशसंस्थापनम् ।

अर्घ्यस्थापनविधिः

साधक को अपने मन में ही यह कहना चाहिए—हे देव देवेशि ! मैं आपका स्वागत करता हूँ । आप कृपा करके मेरे सन्निधि में विराजमान होना मेरी यथार्थ रूप से की गयी मानसी पूजा को ग्रहण कीजिए । गायत्री मन्त्र का दस बार जप करके उस जप को मानसिक रूप से ही गायत्री देवी के वाम कर में समर्पित करके मानसिक पुष्पांजलि अर्पित करनी चाहिए । अपने आपको गायत्री के स्वरूप समझ कर वरद और अभय मुद्रा, अंकुश कशा, कपाल, गुण, शङ्ख, चक्र और योनि प्रभृति मुद्राओं को प्रदर्शित करना चाहिए । इसके उपरान्त मानसी पूजा के द्वारा बाहिर की पूजा की आज्ञा प्राप्त करके शङ्ख के द्वारा त्रिपदिका अर्थात् तिपैय्या बनाकर ऊपर कलश रक्खे और गायत्री मन से शुद्ध जप से पूर्ण करके आठ बार मूल मन्त्र गायत्री से उसका अभिमन्त्रण करके फिर 'जात वेद से 'त्र्यम्बक' इसके और गायत्री मन्त्र से एक बार उसको अभिमन्त्रित करना चाहिए । इसके अनन्तर गन्धाक्षत आदि से उस कलश का अर्चन करे ।

अर्घ्यस्थापन विधि :

तत्राऽस्त्रक्षालितं ताम्रपात्रं निधाय मूलेनाऽपूर्य, मूलेना

अष्टवारं सम्मन्त्र्य गन्ध-पुष्पाभ्यां पूजयेत् । इति सामान्यार्घ्य स्थापनविधिः ।

पीठात्मनोर्मध्ये चन्दनेन कनिष्ठिकया त्रिकोणं षट्कोणं क्रृत्वाऽग्नये हृदयाय नमः । ईशानाय शिरसे स्वाहा । निर्ऋतं शिखायै वषट् । वायवे कवचाय हुम् । अग्नयेऽस्त्राय फट् नेत्रत्रयाय वौषट् । पूर्वेऽस्त्राय फट् । सामान्यार्घ्यजलेन प्रोक्ष चन्दनेन पूजयेत् । त्रिकोणे आधारं स्थापयामि । आधार शक्ति स्थापयामि । पृथिवीद्वीपं स्थापयामि ।

तत्र पूजा । अग्नि मण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः । धूम्रायै नमः ॐ ऊष्मायै नमः । ज्वलिन्यै नम जं ज्वालिन्यै न विं विस्फुलिङ्गिन्यै नमः सुश्रियै नमः । सुं सुरूपायै नमः । कपिलायै नमः । हं हव्यवाहनायै नमः । कं कव्यवाहनायै नमः इति आधारपूजा ।

फिर उसके ऊपर अस्त्र क्षालित ताम्र के पात्र को रखकर गाय मन्त्र को बोलकर उसको शुद्ध जल से भर देवे । तथा आठ बार मन्त्र से अभिमन्त्रण करना चाहिए । इसके पश्चात् गन्धाक्षत पुष्प आ पूजन के उपचारों के द्वारा उस अर्घ्यपात्र का यजन करना चाहिए फिर गायत्री के पीठ पर चन्दन से कनिष्ठ के द्वारा त्रिकोण या षट्को बना कर आग्नेय कोण में 'अग्नये हृदयाय नमः' इसे पढ़कर हृदय स्पर्श करे । ईशानाय शिरसे 'स्वाहा' इससे ईशान कोण में और निऋ तये शिखायै वषट्' इससे नैऋत्य कोण में शिखा का स्पर्श करे 'वायवे कवचाय हुम्' इससे वायव्य पुनः 'अग्नये अस्त्राय 'फट्' त 'नेत्रत्राय वौषट्' इस मन्त्र से नेत्रों का स्पर्श करना चाहिए । फिर में 'अस्त्राय फट्' इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए । इसके पश्च अर्घ्य के जल से पोंछकर भगवती के पीठ चन्दन के द्वारा अर्चन करे त्रिकोणे आधार स्थापयामि से आरम्भ करके 'कं हव्यवाहनायै 'इसके अन्त तक उच्चारण करते हुए चन्दन और अक्षत आदि छोड़ चाहिए ।

आधारोपरि । अर्घ्यपात्रं संस्थाप्य पात्रपरिपूजा तां तापिन्यै नमः । तं तपिन्यै नमः । धूं धूम्रायै नम. । मं मरीच्यै नमः अर्क मण्डलात् द्वादशकलात्मने नमः । जं ज्वालिन्यैं नमः । रुं रुच्यै नमः । सुं सुषुम्नायै नमः । भों भोगदायै नमः । विं विश्वायै नमः । वों वोधिन्यैं नमः । धां धारिण्यै नमः । क्षं क्षमायै नमः इत्यर्घ्यपात्र पूजा ।

विलोममातृकामुच्चरन् शुद्धजलमापूर्य ॐ क्षं नमः । प्रणवः सर्वत्र । लं नमः । हं नमः । सं नमः । पं नमः । शं नमः । वं नमः । लं नमः । रं नमः । यं नमः । मं नमः । भं नमः । बं नमः लं नमः । रं नमः । यं नमः । मं नमः । भं नमः । वं नमः । फं नमः । पं नमः । नं नमः । धं नमः । दं नमः । थं नमः । तं नमः। णं नमः । ढं नमः । डं नमः । ठं नमः । टं नमः । ञां नमः । झं नमः । जं नमः । छं नमः । च नमः। ङं नमः । घं नमः। गं नमः। त्तृ नमः खं नमः। कं नमः। अः नमः। अं नमः। औंनमः। ओं नमः ऐं नमः । एं नमः । लृं नमः । ईं नमः । इं नमः । ऋं नमः । ऋं नमः । ऊं नमः । उं नमः । ईं नमः । इं नमः । आं नमः। अं नमः ।

तत्र पूजा । सं सोममण्डलात् षोडशकलात्मने नमः । अं अमृतायै नमः । मं मानदायै नमः । पूं पूषायै नमः । सं समृद्धयै नमः । तुं तुष्ट्यै नमः । पुं पुष्टयै नमः । रं रत्यै नमः । ज्यों ज्योत्स्नायै नमः । श्री प्रियै नमः । कीं कीर्त्यै नमः । अं अङ्गदायै नमः । पूं पूर्णायै नमः ।।१६।।

अंकुशमुद्रया तोर्थान्यावाह्य---

गङ्गे ! च यमुने ! चैव गोदावरि ! सरस्वति ! ।
नर्मदे ! सिन्धु ! कावेरि ! जलेऽस्मिन् सन्निधौ भव ।।

योनिमुद्रां प्रदर्श्य धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य शङ्खमुद्रां प्रदर्श्य गन्धादिभिःसम्पूज्य । मूलेनाऽष्टवारमभिमंत्र्य मत्स्यमुद्राऽऽच्छाद्य सामान्या जलेन सिञ्चेत् ।

आत्मतत्त्वाय नमः। विद्यातत्त्वाय नमः। शिवतत्त्वाय नमः। परोरज से सावदोमिति 'सप्तकृत्वोऽभिमन्त्र्य तज्जलदेवतात्मैक्यं विभाव्य किञ्चित् अत्रान्तरे गृहीत्वा पूजोपकरणसामग्रीमात्मानं च त्रिः प्रोक्षयेत्। इति विशेषार्घ्यस्थापनविधिः।

अर्घ्यस्योत्तरे पात्रचतुष्टयंपाद्या-ऽऽचनीय-मधुपर्कार्थंसंस्थाप्य सकृदभिमन्त्र्य तोयेनापूर्य मूलेन त्रिवारमभिमन्त्र्य न्यासक्रमेण धर्मादीन् प्रोक्षणीरूपेण सम्पूज्य तस्मिन्पीठोपरि देवतां विभाव्य सर्वाङ्गेषु पंचपुष्पाञ्जलिं दत्वा मूलाधारात् कुण्डलिनीमुत्थाप्य द्वारे स्थित्वा तत्र परमात्मना संयोज्य तदहृष्टाऽमृतधारया देवी प्रीणयित्वा देवी प्रसन्नां विभाव्य स्वस्मिन्देव्यात्मक्य विभाव्याऽऽसनादि दीपान्तानुपचारान् प्रकल्प्य, वाह्यनैवेद्य न देयमिति सम्प्रदायः शिवो भूत्वा शिवं यजेदिति वचनात्।

इसके अनन्तर आधार के ऊपर अर्घ्य पात्र को स्थापित करना चाहिए। अं अर्कमण्डलाय द्वादशात्मने नमः। से आरम्भ करके 'क्ष क्षमायै नमः पर्यन्त मन्त्र का उच्चारण करके अर्घ्य पात्र का समर्थन करना चाहिए। इसके पश्चात् विलोभ मातृका का उच्चारण करते हुए शुद्ध जल से पूर्ण करे। मातृ का में सभी जगह प्रणव लगावे। तथा ॐ क्षं नमः। इसी प्रकार से करना चाहिए। फिर विलोम गायत्री पढ़कर लपङ्क में 'तयादचछी पुनः आरम्भ करके 'स्वः वः भू' भू ॐ तक बोलकर अर्घ्य पात्र को शुद्ध जल से भर देवे। इसके अनन्तर 'ॐ क्षं नमः से आरम्भ करके पूं पूर्णायै नमः।' पर्यन्त मन्त्रों का उच्चारण करे। इसके उपरान्त अंकुश मुद्रा से समस्त तीर्थों का आवाहन अर्घ्य पात्र में करना चाहिए। आवाहन का मन्त्र यह है हे गङ्गे—हे यमुने हे गोदावरि—हे सरस्वति—हे नर्मदे हे सिन्धु—हे कावेरि! आप सब इस जल में पदार्पण कर निवास करिए। ऊपर कथित मन्त्र को पढ़ कर योनि मुद्रा प्रदर्शित करे। फिर धेनु मुद्रा के द्वारा उस जल को अमृत मानकर शङ्ख मुद्रा प्रदर्शित करे। इसके उपरान्त गन्ध आदि उपचारों के द्वारा अर्चन

करे। आठ वार गायत्री मन्त्र का उच्चारण करके उस जल का अभिमन्त्रण करना चाहिए। फिर मत्स्य मुद्रा से जल का आच्छादन करे। इसके पश्चात् सामान्य अर्घ्य जल से उसका सिंचन करना चाहिए। सिंचन के अवसर में 'आत्मतत्वाय नमः' से लेकर 'सावदोम्' पर्यन्त पढ़कर सात वार अभिमन्त्रित करे। उस जल को देव पूजा के योग्य मान थोड़ा सा जल दूसरे पात्र में लेकर तीन बार ऊपर छिड़कना चाहिए। अर्घ्य पात्र के उत्तर भाग में पाद्य आचमनीय तथा मधुपर्क के लिए चार पात्र रखे। गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित करके उसको जल से भर देवे। कुशा के मूलसे तीन बार अभिमन्त्रित करके उसको न्यास-क्रम से धर्म आदि की प्रोक्षण स्वरूप पूजा करके उस आसन पर देवता को समासीन मानकर पाँच वार सर्वाङ्ग से पुष्पांजलि अर्पित करके मूलाधार अर्थात् नाभि स्थान से कुण्डलिनी को उत्थापित कर द्वारदेश पर स्थिर होकर अपने आपको परमात्मा में लगा देवे। उसी दृष्टि से अमृत धारा द्वारा गायत्री देवी को प्रसन्न कर अपने आपको देवी से अभिन्न समझकर आसन से आरम्भ करके दीप पर्यन्त अर्चन करना चाहिए। ऐसा सम्प्रदाय है कि वाहिर नैवेद्य नहीं देवे। इसलिए नैवेद्य की वहाँ आवश्यकता नहीं है।

पीठ पूजा—

मं मण्डूकाय नमः। कं कालाग्निरुद्राय नमः मूं मूलप्रकृत्यै नमः आं आधारशक्त्यै नमः। कूं कूर्माये नमः। अं अनन्ताय नमः। लं वराहाये नमः। धं धरित्र्यै नमः। सुं सुधासिन्धवे नमः। स्वं स्वर्णवेदिकायै नमः। तदुपरि रत्नसिंहासनाय नमः। आग्नेयादि कोणेषु-धं धर्माय नमः। ज्ञं ज्ञानाय नमः। वैं

वैराग्याय नमः । ऐं ऐश्वर्याय नमः । पूर्वादिदिक्षु---अं अधर्माय नमः । अं अज्ञानाय नमः । अं अवैराग्याय नमः । अं अनैश्वर्याय नमः । मध्ये—अं अनन्ताय नमः । अं अम्बुजाय नमः। आं आनन्दाय नमः । संविन्नालाय नमः । सं सर्वतत्वात्मकाय नमः । प्रं प्रकृतिमयपत्रेभ्यो नमः । विंविकारमयकेशरेभ्यो नमः पं पंचाशद्वर्णकर्णिकायै नमः । रं रजसे नमः । तं तमसे नमः । आं आत्मने नमः । अं अन्तरात्मने नमः । कं कलात्मने नमः एतान्युपर्युपरि ।

पीठस्य पूर्वभागे रां दीप्तायै नमः । रीं सूक्ष्मयै नमः । रं भद्रायै नमः । रैं विभूत्यै नमः । रं अमोघाय नमः । रां विद्युतायै नमः । पीठमध्ये । परदेवतायै नमः । सर्वतोमुख्यै नमः। तदुपरि विन्दु-त्रिकोणावृत्त-दलाष्टकं रेखात्मकं चतुरसं चतुर्द्वारोपशोभितं यन्त्रं संस्थाप्य ब्रह्म-विष्णु-रुद्र विश्वात्मकं सौरपीठाय नमः इति पीठं पूजयेत् ।

अथ पूर्वोक्तऋष्यादिन्यासं कृत्वा प्राणानायाम्य मूलेन व्यापकं गायत्र्युच्चारणपूर्वकं हस्ताभ्यां पुष्पांजलिं गृहीत्वा नासारन्ध्रेण पुष्पसंचयकल्पितयन्त्रमाये कल्पितमूर्ति निक्षिप्य तत्तत्स्थानेतानि आवरणानि ध्यात्वा आवाहनादिमुद्रा प्रदर्श्याऽऽवाहनं सन्निधापनं सन्निरोधनं सम्मुखीकरणम् अवगुण्ठनं सकलीकरण चेति । मूलान्ते श्रीगायत्री देवि! इहावादिता भव, पुष्पेण देव्या हृदि करं विधाय 'ॐह्रींक्रीं' इति मन्त्रेण द्वादशवारं जपेत् ।

पीठ पर अक्षतों का प्रक्षेप करते हुए 'मं मण्डूकाय नमः से आरम्भ करके 'स्वं स्वर्ण वेदिकायै नमः । पर्यन्त मन्त्रों का पाठ करे । फिर पीठ पर रत्न सिंहासनाय नमः । पढ़कर अक्षत छोड़े । इसके अनन्तर अग्नि कोण में 'धं धर्माय नम' इस मन्त्र का उच्चारण करके अक्षतों का

प्रक्षेप करे । नैऋ त्य कोण में ज्ञानज्ञानाय नमः तथा वायव्य कोण में में वैं वैराग्याय नमः । और ईशान कोण में 'ऐं' ऐश्वर्याय नमः । यह पढ़कर अक्षत छोड़ना चाहिए । इसके पश्चात् पीठ के पूर्व से 'ॐ अं अधर्माय नमः' दक्षिण में 'अं' अज्ञानाय नमः' पश्चिम में वैराग्य नमः उत्तर में, 'अं अनैश्वर्याय नमः' यह बोलकर अक्षतों का प्रक्षेप करे । फिर मध्य में ॐ अनन्ताय नमः' यह पढ़ते हुए छोडें । फिर पीठ के ऊपर ॐ अम्बु 'जाय नमः' से आचमन करके 'कं कलात्मने नमः पर्यन्त बोलकर अक्षतों का प्रक्षेप करना चाहिए । इति पीठ पूजा समाप्त ।

इसके अनन्तर पीठ के पूर्व भाग की ओर 'शं दीप्तायै नमः' इस मन्त्र से प्रारम्भ करके 'रां विद्युतायै नमः' पर्यन्त बोलकर अक्षतों का प्रक्षेप करना चाहिए । पीठ में मध्य भागमें 'पर देवतायै नमः । 'सर्वतो मुख्यै नमः' पर्यन्त बोलकर अक्षतों को प्रक्षिप्त करे । पीछे पीठके ऊपर अष्टदल से समावृत विन्दु त्रिकोण को रेखा के रूप में चार दरवाजों से समन्वित चौकोरे गायत्रीका एक यन्त्र बनाकर संस्थापित करना चाहिये । फिर ब्रह्म ।विष्णु रुद्र त्रिम्नात्मक-सौरपीठाय नमः । इस मन्त्र को बोल-कर अक्षतों का प्रक्षेप करे । और इसके पीछे ब्रह्मा आदि के पीठ का यजन करना चाहिए । इसके उपरान्त पूर्वोक्त विश्वामित्र प्रभृति का ऋष्यादि न्यास करे तथा फिर प्राणायाम करके गायत्री मन्त्र को पढ़ते हुए मूल मन्त्र के द्वारा व्यापक मुद्रा करनी चाहिए । बाद में दोनों करों में पुष्पांजलि ग्रहण करके पुष्पों के समुदायों के द्वारा नासिका के रन्ध्रसे निर्मित यन्त्र में कल्पना की हुई गायत्री की प्रतिमा के ऊपर प्रक्षिप्त कर देवे । तथा उन-उन स्थलों पर नियत आवरणोंका ध्यान करना चाहिए । आवाहन की मुद्रा को प्रदर्शित करके आवाहन—सन्निधि में स्थापन—भली भाँति विरोधन, सम्मुखीकरण, अवगुण्ठन और सकली करण आदि को करे । इसके उपरान्त मूलमन्त्र के अन्त में--'श्री गायत्री देवि । इहा-वादित भव । इस मन्त्र का उच्चारण करके पुष्प से देवी के हृदय पर

हाथ रखकर 'ॐ ह्रीं क्रीं' इस मन्त्र को बारह वार उच्चारण करन चाहिए ।

ततो भूतशुद्धिं प्राणप्रतिष्ठां विधाय पूजयेत् । नमः इति मन्त्रेण देव्याः पादाम्बुजे पाद्यं दद्यात् । 'स्वाहा' इति मन्त्रेण मूर्ध्न्यर्घ्यं, वं इति मन्त्रेण मुखे आचमनम्, ततः स्नान शालायां सुगन्धिसलिलः स्थापयित्वा मूलेन शतसंख्येन वा राज पचारैः स्थापयित्वाऽङ्गप्रोक्षणं कृत्वा मूलेन पीठं संस्थाप पूर्वोक्तां ध्यात्वा पंचोपचारैः सम्पूज्य देवतां प्रसन्नां विभाव आवरणपूजां कुर्यात् ॥

इसके पश्चात् भूत शुद्धि और प्राण प्रतिष्ठा सम्पन्न करके देवी क अभ्यर्चन करना चाहिए । 'नमः'—इस मन्त्र के द्वारा देवी के चरणों पाद्य समर्पित करना चाहिए और 'स्वाहा'—इस मन्त्र से देवी के मस्त में अर्घ्य देवे । 'वं' इस मन्त्र के द्वारा देवी का स्नान परम सुगन्धि जल से कराना चाहिए ! मूल मन्त्र के द्वारा राजोचित सामग्रियों से बार अभिषेक कराके अङ्ग का अच्छदन करे और गायत्री मन्त्र उच्चारण करके आसन पर समासीन करावे । पूर्व वर्णित प्रकार ध्यान करके पूजन के पाँच उपचारों द्वारा यजन करना चाहिए । अप मन में ऐसा ध्यान रखना चाहिए कि गायत्री देवी मुझ पर प्रस है । ऐसे ध्यान को करते हुए ही फिर आवरणों का अर्चन करन चाहिए ।

आवरण पूजा—

प्रथमम्--तत्र मध्ये त्रिकोणे व्याहृत्यै नमः । अथ कों गायत्र्यै नमः । नैऋत्यकोणे । सावित्र्यै नमः वायव्यकोणे स स्वत्यैः नमः । त्रिकोणान्तरालेषु । ब्रह्मणे नमः । विष्णवे नमः रुद्राय नमः । मूलेन पुष्पांजलिं गृहीत्वा ।

अभीष्टसिद्धि मे देहि शरणागतवत्सले !
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम् ॥
अनेन पुष्पांजलिं दत्वा द्वितीयावरण पूजयेत् ।
इति प्रथमावरणम् ।

आवरणार्चन के लिए त्रिकोण की रचना करके उसके मध्य में 'व्याहृत्यै नमः' और कोण पर 'गायत्र्यै नमः' नैऋत्य कोणमें 'सावित्र्यै नमः' तथा वायव्य कोण में 'सरस्वत्यै नमः' का उच्चारण करके अक्षत प्रक्षिप्त करे। इसके पश्चात् त्रिकोण के मध्य में ब्रह्मणे नमः—विष्णवे नमः—रुद्राय नमः—इन मन्त्रों को पढ़ना चाहिए और गायत्री मन्त्र का उच्चारण करके पुष्पांजलि ग्रहण कर 'अभीष्ट सिद्धि में देहि' इत्यादि को पढ़ना चाहिए। हे शरण में समागत के ऊपर अनुकम्पा करने वाली देवी गायत्री आप मेरे अभीष्ट की सिद्धि प्रदान कीजिए। मैं आपकी सेवा में प्रथमावरण की पूजा भक्ति भाव से समर्पित कर रहा हूँ' यही मन्त्र का अर्थ हैं। इस मन्त्र के द्वारा पुष्पांजलि अर्पित कर फिर दूसरे आवरण की अर्चा आरम्भ करनी चाहिए।

द्वितीयम्---अष्टदलेषु पूर्वादिदिक्षु---ॐ आदित्याय नमः। भानवे नमः। भास्कराय नमः रवये नमः। आग्नेयादि-केशरेषु उषायै नमः। प्रभायै नमः। प्रजायै नमः। सन्ध्यायै नमः। मूलमुच्चरन् अभीष्टसिद्धि मे देहि—इति पुष्पांजलिं दद्यात्। इति द्वितीयावरणम्।

तृतीयम्—हृदि ब्रह्मण नमः। हृदयाय नमः। ईशाने, रुद्राय शिखायै वषट्। नैऋतये, ईश्वराय कवचाय हुम्। वायव्ये सदाशिवाय नेत्रत्रयायं वौषट्। आग्नेये, सर्वात्मने अस्त्राय फट्। तत्तद् देवताभ्यो नमः मूलेन पुष्पांजलिं गृहीत्वा।
अभीष्टसिद्धि मे देहि शरणागतवत्सले !।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं तृतीयावरणार्चनम् ॥

अनेन पुष्पांजलिं दत्वा चतुर्थावरणं पूजयेत् । इति तृतीयावरणम् ।

आठ दलों के ऊपर प्राची आदि दिशा के क्रमानुसार 'आदित्याय नमः से आरम्भ करके 'रवये नम.' पर्यन्त पढ़कर चार दिशाओं के चारों कमल दलों पर अक्षतों का प्रक्षेप करे। इसके पश्चात् आग्नेय कोण में 'उषायै नमः' से आरम्भ करके 'सन्ध्यायै नमः' पर्यन्त चारों कोणों के कमलों पर अक्षत प्रक्षिप्त करे। पुनः वही 'अभीष्ट सिद्धि' इत्यादि की पढ़कर पुष्पांजलि समर्पित करनी चाहिए। इसके अनन्तर तीसरे आवरण का अर्चन करे।' ब्रह्मणे नमः--हृदयाय नमः--'यह पढ़कर ईशान कोण में हृदय का--रुद्राय शिखायै वषट् । बोलकर शिखा का--ईश्वराय कवचाय हुम्' इससे नैऋत्य कोण में दोनों बाहुओं के मूल का--'सदाशिवाय नेत्रत्रयाय वौषट्' इस मन्त्र से वायव्य कोण में दोनों नेत्रों का--'सर्वात्मने अस्त्राय फट्, इस मन्त्र से आग्नेय नमः' इस मन्त्र को पढ़ते हुए शरीर के चारों तरफ चुटकी वादन करे। फिर 'अभीष्ट सिद्धि में' इत्यादि पढ़कर पुष्पांजलि अर्पित करनी चाहिए। इसके अनन्तर चौथे आवरण का अर्चन करे।

चतुर्थम्–तद्बहिः पूर्वाद्यष्टदलेषु। अमृतायै नमः। नित्यायै नमः। विश्वम्भरायै नमः। ईशान्यै नमः। प्रभाये नमः।जयायै नमः। विजयायै नमः। शान्त्यै नमः। मूलेन पुष्पांजलिं गृहीत्वा।

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले ! ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं चतुर्थावरणार्चनम् ।।
इति पुष्पांजलिं दद्यात् ।

पंचमम्–तद्बहिः पूर्वाद्यष्टदिक्षुः। ॐ कान्त्यै नमः ॐदुर्गायै नमः। ॐसरस्वत्यै नमः। ॐविद्यारूपायै नमः।विशालायै नमः ॐ ईशादेव्यै नमः। ॐ वायव्यै नमः। ॐविमलायै नमः। ॐ मूलमुच्चरन् ।

अभीष्टसिद्धिम्–'इति पुष्पांजलिं दद्यात् । इति पंचमावरणम् ।

षष्ठमम्–पूर्वाद्यष्ठदिक्षु । संहारिण्यै नमः । सूक्ष्मायै नमः । विश्वयोन्यै नमः । जयावहायै नमः । पद्मालयायै नमः । परायै नमः । शोभायै नमः । रूपायै नमः । मूलेन पुष्पांजलिं गृहीत्वा, अभीष्टसिद्धि–' इति पुष्पांजलिं दद्यात् । इति षष्ठावरणम् ।

पहले समर्पित आठ दलों वाले के बाहिर भाग में अष्ट दल पर 'अमृतायै नमः'से लेकर 'शान्त्यै नमः' पर्यन्त बोलकर पूर्व आदि दिशाओं के क्रम से अष्टदल पर अक्षतों का प्रक्षेप करना चाहिए । पुष्पांजलि के द्वारा अभीष्ट सिद्धि मे 'देहि' इत्यादि पढ़कर पुष्पांजलि देवे । अब पाँचवें आवरण का अर्चन बताया जाता है--चौथे आवरण के बाहिर प्राची आदि दिशाओं के क्रम से सभी दिशाओं में क्रम से 'कान्त्यै नमः' इस मन्त्र से लेकर 'विमलायै नमः' इस पर्यन्त गायत्री मन्त्र का भी उच्चारण करके यजन करे । अन्तमें अभीष्ट सिद्धि' इत्यादि बोलकर पुष्पांजलि अर्पित करें । अब छठवें आवरण का अर्चन करें । पाँचवे आवरण के बाहिर प्राची आदि सभी दिशाओं में क्रम से 'संहारिण्यै नमः' इस मन्त्र से लेकर 'रूपायै नमः' इस मन्त्र पर्यन्त बोलकर अक्षतों के द्वारा आवाहन करे । पीछे अर्चन करके गायत्री का उच्चारण करते हुए 'अभीष्ट सिद्धि' इत्यादि को बोलकर पुष्पांजलि देनी चाहिए ।

सप्तमम् पूर्वाद्यष्टदिक्षु । ॐ आं ब्राह्म्यै नमः । ॐ ईं माहेश्वर्यै नमः । ॐ ऊं कौमार्यै नमः । ॐ ॠं वैष्णव्यै नमः ॐ लृं वाराह्यै नमः । ॐ औं चामुण्डायै नमः । ॐ अः चण्डिकायै नमः । मूलमुच्चार्य अभीष्टसिद्धि–इति पुष्पांजलिं दद्यात् । इति सप्तमावरणम् ।

अष्टमम्—तद्बहिः पूर्वाद्यष्टदिक्षु । ॐ सों सोमाय नमः । ॐ बुं बुधाय नमः । ॐ शुं शुक्राय नमः । ॐ भौं भौमाय नमः । ॐ शं शनैश्चराय नमः । ॐ रां राहवे नमः । ॐ कें केतवे नमः मूलेन अभीष्टसिद्धि ।' इति पुष्पांजलिं दद्यात् । इत्याष्टमावरणम् ।

अब सातवें आवरण को बताया जाता है--पहले की ही भाँति सभी दिशाओं में पूर्व से आरम्भ करके क्रमानुसार 'ॐ ॐ वाह्यै नमः' इस मन्त्र से लेकर 'ॐ अः चण्डिकायै नमः' इस मन्त्र तक उच्चारण करके अक्षतों से आवाहन कर गायत्री मन्त्र को पढ़े और अन्त में 'अभीष्ट सिद्धि' इत्यादि बोलकर पुष्पांजलि देनी चाहिए । इसके बाद आठवें आवरण को बताया जाता है । सातवें आवरण के बाहिर पूर्व आदि सभी दिशाओं में क्रम से 'ॐ सों सोमाय नमः' से आरम्भ करके 'ॐ कें केतवे नमः' इस तक बोलकर अक्षतों से आवाहन करके अर्चन करे। साथ ही गायत्री का उच्चारण करते हुए अभीष्ट सिद्धि' इत्यादि को बोलते हुए पुष्पांजलि अर्पित करें ।

नवमम्—पूर्वाद्यष्टदिक्षु । ॐ लं इन्द्राय नमः । ॐ रं अग्नये नमः । ॐ यं यमाय नमः । ॐ क्षं नैऋर्त्यै नमः । ॐ वं वरुणाय नमः । ॐ वं वायवे नमः । ॐ सं सोमाय नमः । ॐ ईं ईशानाय नमः । ॐ ब्रां ब्राह्मणे नमः । ॐ अं अनन्ताय नमः । मूलेन 'अभीष्टसिद्धि–' इति पुष्पांजलि दद्यात् । इति नवमावरणम् ।

दशमम्--ॐ वं वज्राय नमः । ॐ शं शक्तये नमः । ॐ दं दंडाय नमः । ॐ खं खड्गाय नमः । ॐ षं पाशाय नमः । ॐ गं गदायै नमः । ॐ त्रिं त्रिशूलाय नमः । ॐ चं चक्राय नमः । ॐ अं अम्बुजाय नमः मूलेन 'अभीष्टसिद्धिं–' इति पुष्पांजलि दद्यात् । इति दशमावरणम् ।

अब नवम आवरण का अर्चन कहा जाता है । प्राची आदि सभी दिशाओं एवं ऊपर-नीचे इस रीति से दिशा के क्रम से ॐ लं इन्द्राय

नमः' से लेकर ॐ अं अनन्ताय नमः पर्यन्त बोलकर अक्षतादि से आवाहन करना, चाहिए फिर गायत्री मन्त्र पढ़ते हुए 'अभीष्ट सिद्धि' इत्यादि के द्वारा पुष्पांजलि देवे। अब दशमावरण यजन बताया जाता है--प्राची आदि सभी दिशाओं में और ऊपर-नीचे ॐ वज्राय नमः' इस मन्त्र से आरम्भ करके 'ॐ अम्बुजाय नमः, पर्यन्त बोलकर तत्तत् देवताओं का आवाहन करना चाहिए। और अर्चन करे। फिर मूल मन्त्र को बोलते हुए 'अभीष्ट सिद्धि' के द्वारा पुष्पांजलि देवे।

पुनः पञ्चोपचारैः सम्पूज्य नीराजनैः पुष्पाञ्जलिं दत्वा,
'यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपो यज्ञ-क्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णता यातु सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥
इति पूजां समर्प्य जपफलं देव्याः करे समर्प्य, पुष्पांजलिं दत्वा क्षमाप्य स्वहृदि उद्वास्य पुनरृष्यादिन्यास कृत्वा निर्माल्यं विसृजेत्।

इसके अनन्तर समस्त देवों का पंचोप चारों से यजन करे। नीराजन और पुष्पांजलि अर्पित करके 'यस्यस्मृत्या च नामोक्त्या इत्यादि मन्त्र को पढ़ते हुए की हुई अर्चा को अर्पित करे और नित्य के नियम के अनुसार जप करके भगवती के हस्त में समर्पित कर देवे। अन्त में पुष्पांजलि देकर क्षमा की प्रार्थना करके अपने हृदय में भगवती की स्थापना करके पूर्व वर्णित क्रम से ऋष्यादि न्यास करना चाहिए। जो देवी पर चढ़ाया हुआ निर्माल्य है उसको हटा देवे। इस तक गायत्री को पुरश्चरण के वास्ते नित्य ही पूजन करनी चाहिए।

नैमित्तिक पूजन—

गुरुजन्मदिवसे स्वजन्मदिवसे जन्मनक्षत्रे विद्याप्राप्ति दिवसे पूर्णायां व्यतीपाते वा विशेषं पूजयेत्। इति नैमित्तिकम्।

अपने श्रीगुरुदेव के अथवा अपने जन्म दिवस में या अपने जन्म नक्षत्र में, विद्या की प्राप्ति के दिन में पूर्णिमा एवं व्यतीपात में गायत्री

देवी का विशेष रूपसे अभ्यर्चन करना चाहिए । अब पुरश्चरणकी विधि बतायी जाती है--

पुरश्चरण विधान

कर्ता स्वशक्त्या गुरुं सम्पूज्य तदनुज्ञया देहशुद्ध्यर्थं चान्द्रायणं प्राजापत्यं वा समाचरेत् । पुरश्चरणादिसे सुगन्धसलिलै स्नात्वा पूजाप्रदेशे चतुस्रं चतुर्द्वारं मण्डलं विधाय हृष्टधोवाङ् नियमितो मिताहारो जितेन्द्रिय प्रात रारभ्यचर्यं मध्याह्न जपेत् एवं चतुर्विंशतिलक्षं जपेत् तदुक्तम्–

उक्तलक्षविधानेन कृत्वा विप्रा जितेन्द्रियाः ।
क्षीरोदनं तिल दूर्वा-क्षारद्रुम समिद्द्रवान् ।।
अष्टद्रव्येण च पृथक् सहस्रत्रितयं हुनेत् । मन्त्रफलसिद्धये जपदशांशहोमः । तद्दशांशेनं तर्पणम्। तद्दशांशेनं मार्जनम् तद्दशांशेनं ब्राह्मणभोजनम् ।

जो भी कोई पुरश्चरण करना चाहे उसको स्वशक्ति--अनुसार श्री गुरुदेव का यजन करके उनकी ही आज्ञा प्राप्त कर अपने शरीर की शुद्धि के लिए चान्द्रायण अथवा प्राजापत्य व्रत करना चाहिए । जिस दिन भी पुरश्चरण आरम्भ किया जावे उस दिन परम सुगन्धित जल से स्नान करना चाहिए । पूजा का जो भी स्थान हो वहाँ पर समतल भूमि में चार द्वारों वाले एक मण्डल की रचना करे । स्वयं परम प्रसन्न रहे और वाणी का भली भाँति नियन्त्रण करे । स्वत: भोजन करे और इन्द्रियों पर संयम करके प्रातःकाल से ही आरम्भ करके मध्याह्न पर्यन्त जप करना चाहिए । इसी रीति से प्रतिदिन नियत संख्या पूर्वक चोबीस लाख गायत्री का जप पूर्ण करे । यही कहा गया है कि उक्त क्रम से जितेन्द्रिय ब्राह्मण दुग्ध--पायस-दूर्वा, दुग्ध वृक्ष की काष्ठ और अष्टद्रव्य आदिके द्वारा तीन सहस्र गायत्री मन्त्र से 'होम कराना चाहिए

जपे हुये मन्त्र की सिद्धि के लिए जप का दशम भाग हवन, होम का दशांश मार्जन और मार्जन का दशांश विप्रों को भोजन कराना चाहिए।

अथ काम्यपूजन

विद्यार्थी वाग्भावाद्यां, लक्ष्मीकाम: श्रीबीजं, वश्यार्थे कामबीजम् सर्वं कामार्थे मायाबीजम्,आयु कामार्थे मृत्युञ्जयचतुराक्षरीसहितं जपेत् ।

विद्या की इच्छा रखने वाले पुरुष को विद्या की प्राप्ति के लिए गायत्री मन्त्र में 'ॐ ह्लीं ली' लगाकर जप करना चाहिए। लक्ष्मी के पाने के लिए 'ॐ श्रीं इस बीज को लगावे। वशीकरण के वास्ते 'क्लीं' इस कामबीज को लगावे और समस्त मनोरथों की सिद्धि के वास्ते मायाबीज को लगावे एवं आयु की कामना के लिए मृत्युंजय चतुराक्षरी 'ॐ क्लीं मां जीवय पालय' लगाकर गायत्री का जाप करें। गायत्री मन्त्र से तिलों के द्वारा चौबीस सहस्र आहुतियाँ को देवे तो सभी पापों से छुटकारा पा जाया करता हैं। उसकी आयु भी बढ़ जाया करती है और दीर्घायु हो जाता है। केवल आयु की ही कामना हो तो हवि-चुन या केवल घी से या तिलों से तीन सहस्र गायत्री के द्वारा होम करना चाहिए। मजीठ, मधु घृत, पलाश, गूलर के पुष्पों से होम करने का विशेष फल हुआ करता है। अधिक क्या कहा जावे साधना करने वाले को गायत्री सिद्ध हो जाया करती है। विप्रों के लिए तो यह साक्षात् कामधेनु ही है और इससे समस्त कामनायें पूर्ण हो जाया करती हैं।

--★--

गायत्री पटलम्

ब्रह्मशापविमोचनम् :

विनियोगः—ॐ अस्य श्रीब्रह्मशाप-विमोचन मन्त्रस्य निग्रहाऽनुग्रहकर्ता प्रजापतिर्ऋषिः, कामदुग्धा गायत्रीछन्दः, ॐ ब्रह्मशाप विमोचन- गायत्रीशक्तिर्देवता, ब्रह्मशापविमोचनार्थे जपे विनियोगः।

गायत्री मन्त्र के लिए ब्रह्म-विष्णु और विश्वामित्र जी ने शाप दे दिया था अतएव उस शाप के विमोचन के लिए अर्थात् शाप-निवृत्ति के वास्ते शाप विमोचन अवश्य करना चाहिए—

विनियोग—अपने दक्षिण कर में जल ग्रहण करके 'ॐ अस्य ब्रह्मशाप विमोचन मन्त्रस्य यहाँ से शुरू करके 'जपे विनियोगः पर्यन्त बोलकर भूमि पर उस जल को छोड़ देना चाहिए। यही विनियोग है।

मन्त्र—सवितुः ब्रह्मोमित्युपासमात् तत्तद्ब्रह्मविदो विदुस्ताः प्रयान्ति धीराः। सुमनसा वाचा सुमाऽग्रतः। ॐ देवी गायत्री। त्वं ब्रह्मशापात् विमुक्ता भव॥

विनियोग करने के उपरान्त सवितुः ब्रह्मोमित्युपासमात्' यहाँ से लेकर, जप 'विनियोगः' इस पर्यन्त मन्त्र का उच्चारण करके जल को भूमि पर छोड़ देवे। फिर 'सवितु' इत्यादि से आरम्भ करके 'विमुक्ता भव' यहाँ तक के मन्त्र को पढ़ना चाहिए। यह तो एक के शाप से विमोचन हुआ। फिर विश्वामित्र जी के शाप के विमोचन के लिए नीचे लिखे हुये मन्त्र का विनियोग के साथ उच्चारण करे।

विश्वामित्र शापविमोचनम् :

विनियोगः—ॐ विश्वामित्र शापविमोचन-मन्त्रस्य नूतनसृष्टिकर्ता विश्वामित्र-ऋषिः, वाग्दोहा गायत्रीछन्दः, भुक्तिमुक्तिप्रदा विश्वामित्रानुगृहीता गायत्रीशक्तिः, सविता देवता, विश्वामित्राशापविमोचनार्थे जपे विनियोगः।

मन्त्रः---तत्वानि चाङ्गेष्वग्निचितो धियांस त्रिगर्भा यदुद्भवां देवाश्चाचिरे विश्वसृष्टि तां कल्याणीमिष्टकरा प्रपद्ये यन्मुखान्निःसुता वेदगर्भः । ॐ गायत्रि ! त्वं विश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव ।

दाहिने कर में जल लेकर ॐ विश्वामित्र शाप विमोचन 'मन्त्रस्या' से आरम्भ करके 'जपे विनियोगः' पर्यन्त पढ़कर भूमि पर जल छोड़ देना चाहिए । मन्त्र यह हैं--'तत्वानि' से लेकर 'विमुक्ता भव' पर्यन्त मन्त्र का उच्चारण करें ।

वशिष्ठशापविमोचनम्

विनियोगः---ॐ वसिष्ठशापविमोचनमन्त्रस्य वसिष्ठऋषिः, विश्वोद्भवो गायत्रीच्छन्दः, वसिष्ठानुग्रहीता,गायत्रीशक्तिर्देवता, वसिष्ठशापविमोचनार्थे जपे विनियोगः ।

मन्त्रः---तत्वानि साङ्गेष्वग्निचितो धियांस ध्यायन्ति विष्णोरायुधानि बिभ्रत् । जनानता सोपरमं च शश्वत् । गायत्री मासाचक्रुरनुत्तमं च धाम । ॐ गायत्रि त्वं वसिष्ठ शापाद् विमुक्ता भव ।

प्रार्थना:---सोऽहमर्कमयं ज्योतिरर्कः ज्योतिरहं शिवः ।
आत्मज्योतिरहं शुक्लं शुक्लं ज्योतिरसोऽहमोम् ।
अहो विष्णुमहेशेशे ! दिव्ये सिद्धिसरस्वति ! ।
अजरे अमरे चैव दिव्ययोने ! नमोऽस्तु ते ॥

शुद्धगायत्रीध्यानम्

यद्देवाऽसुरपूजितं परतरं सामटयंतारात्मकं
पुन्नागा-ऽम्बुज-पुष्प-नाग-वकुलैः केशैः शुकैरचितम् ।
नित्यं ध्यानसमस्तदीप्तिकरणं कालाग्निरुद्दीपनं
तत्संहारकरं नमामि सततं पातालसंस्थ मुखम् ॥
इति गायत्रीशापविमोचनम् ।

इसके पश्चात् वसिष्ठ ऋषि के शाप का विमोचन' करना चाहिए—'ॐ वसिष्ठ शाप विमोचन, से लेकर 'जपे विनियोगः' यहाँ तक पढ़कर भूमि पर जल छोड़ देवे। मन्त्र तत्वानि' से आचमन करके 'विमुक्ता भव' पर्यन्त पढ़ना चाहिए इसके उपरान्त 'सोऽहमर्कंतय'ज्योतिरर्कः' यहाँ से लेकर दिव्ययोनि! नमोस्तुते' पर्यन्त प्रार्थना के मन्त्र का उच्चारण करके गायत्री को नमस्कार करें। इसके उपरान्त 'यद्देवासुर पूजित' इससे आरम्भ कर 'पाताल संस्थं मुखम्' पर्यन्त बोल कर तेजो रूपा गायत्री का ध्यान करना चाहिए। इति गायत्री शाप विमोचनम्।

अथ न्यास :

वर्णन्यासः—ॐ तत्पादाङ्गु लिपर्वभ्यां नमः। ॐसपादाङ्गु लिभ्यो नमः। ॐ विडङ्घाभ्यां नम। ॐ तुर्जानुभ्यां नमः। ॐ व खरुभ्यां नमः। ॐ रे शिश्नाय नमः। ॐ णि वृषणाभ्यां नमः। ॐ यं कटयै नमः। ॐभनाभ्यै नमः। ॐर्गो उदराय नमः ॐ दे स्तनाभ्यां नमः। ॐ व उरसे नमः। ॐ स्य कण्ठाय नमः। ॐ धी दन्तेभ्यो नमः। ॐ म तालुने नमः। ॐ हि नासिकायै नमः। ॐ धि नेत्राभ्यां नमः। ॐ यो भ्रूभ्यां नमः। ॐ यो ललाटाय नमः। ॐ नः पूर्व मुखाय नमः। ॐ प्र दक्षिणमुखाय नमः। ॐ चो पश्चिममुखाय नमः। ॐ द उत्तरमुखाय नमः। ॐयात् मूर्ध्ने नमः।

'ॐ तत्पादांगु लिपर्वभ्यां नमः'—इस मन्त्र का उच्चारण करके चरण की प्रत्येक अंगुलियों की ग्रन्थियों का स्पर्श करना चाहिए। फिर 'सपादांगु लिभ्योनमः' इस मन्त्र से पैर की समस्त अंगुलियों का स्पर्श करे। ॐ बिडङ्घाभ्यां नमः इसको बोलकर दोनों जाँघो का स्पर्श करे। ॐ तुर्जानुभ्यां नमः इस मन्त्र से दोनों जानुओं का—'ॐ व ऊरुभ्यां नमः' इस मन्त्र से कटि के निचले भाग का—'ॐ रे शिश्नाय नमः। इससे लिंग का स्पर्श करना चाहिए। ॐ णि वृषणाभ्यां नमः'

इस मन्त्र से अण्डकोष का स्पर्श करे। ॐ य कट्यै नमः' इस मन्त्र से कटिभाग का ॐ भनाभ्यै नमः' इससे नाभि का—ॐ गो उदराय नमः' इस से उदर का--ॐ दे स्तनाभ्यां नमः' इस मन्त्र से दोनों स्तनों का—'ॐ दं उर से नमः इससे वक्ष भाग का स्पर्श करे। 'ॐ स्य कण्ठाय नमः' इससे कण्ठ भाग का—ॐ धी दन्तेभ्यो नमः इससे दाँतों का स्पर्श करना चाहिए। ॐ मतालुने नम.' इस मन्त्र से तालुका ॐ हि नासिकायै नमः' इससे नासिका का स्पर्श करे ॐ धि नेत्राभ्यां नमः इस मन्त्र का उच्चारण करके दोनों नेत्रों का स्पर्श करना चाहिए। ॐ यो भ्रूभ्यां नमः' इससे दोनों भौंहों का 'ॐ यो ललाटाय नमः' इससे ललाट का 'ॐ नः पूर्वमुखाय नमः इससे मुँह के पूर्व भाग का—ॐ प्र दक्षिणाय नमः' इससे मुँह के दाहिने भाग का स्पर्श करना चाहिए। 'ॐ चो पश्चिममुखाय नम.' इससे मुख के पश्चिम भाग का—ॐ दउत्तरमुखाय नमः' इससे मुँह के उत्तर भाग का और 'ॐ यात् मूर्ध्ने नमः इन मन्त्र से शरीर का स्पर्श करना चाहिए।

करन्यासः—-ॐ तत्सवितुरङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ वरेण्यं तर्जनीभ्यां नमः। ॐ भर्गोदेवस्य मध्यमाभ्यां नमः। ॐ धीमहि अनामिकाभ्यां नमः। ॐ धियो यो नः कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ प्रचोदयात् करतलपृष्ठाभ्यां नमः।

'ओ३म् तत्सवितु रंगुष्ठाभ्यां नमः' इस मन्त्र से अंगूठों का स्पर्श करे। 'ओं वरेण्यं तर्जनीभ्यां नमः इससे अपनी अंगुलियों का—ॐ भर्गो देवाय नमः 'इस मन्त्र से मध्यमाओं का—ओं धीमहि अनामिकाभ्यां नमः' इससे अनामिकाओं का 'ओं धियो यो नः कनिष्ठकाभ्यां नमः इससे कनिष्ठकाओं का ओं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः' इस मन्त्र से दोनों हथेलियों से हथेलियों का एवं दोनों पीठों का स्पर्श करें।

देहन्यास—ॐ भूः पादयोः। ॐ भुवः जान्वोः। ॐ स्वःनाभौ ॐ महः हृदये। ॐ जनः कण्ठे। ॐ तपः ललाटे। ॐ सत्यः

मूर्ध्नि । ॐ तत्पादयोः ॐ सवितुर्जान्वोः । ॐ वरेण्यं स्कन्धयो ॐ भर्गो हृदये । ॐ देवस्य कण्ठे । ॐ धीमहि वक्त्रे । ॐ धियो यो नः नेत्रे । ॐ प्रचोदयात् अस्त्राय फट् ।

'ओं भूः पादयोः' इससे दोनों चरणों का स्पर्श करे । ओं भुवः जान्वोः' इससे दोनों जानुओं का—ॐ स्वः नाभि' से नाभिका—'ओं महः से हृदय का—'ओं जनः' से कण्ठ का—'तपः' से भाल 'ओं सत्य' इस मन्त्र से मस्तक का स्पर्श करे । ओं तत् पादयोः' इस मन्त्र से दोनों चरणों का—ओं सवितुर्जान्वोः' इससे जानुओं का ओं वरेण्यं से कन्धे का—'ओं भर्गो' से हृदय का 'ओं देवस्य' इससे कण्ठ का—'ओं धीमहि इससे मुख का ओं धियो यो नेत्रों' से दोनों चक्षुओं का—'ओं नः' इससे मुख का स्पर्श करे । पीछे 'ओं प्रचोदयात्' इसको बोलकर तालिका वादन करना चाहिए ।

करन्यासः—ॐ आप अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ ज्योतिस्तर्जनीभ्यां नमः । ॐ रसो मध्यमाभ्यां नमः ॐ ऽमृतम् अनामिकाभ्यां नमः । ॐ ब्रह्मकनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ भूर्भुवः स्वरोम् करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । ॐ अग्नये हृदयाय नमः । ॐ वायवे शिरसे स्वाहा । ॐ सूर्याय शिखायै वषट् । ॐ ब्रह्मणे कवचाय हुम् । ॐ विष्णवे नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ रुद्राय अस्त्राय फट् ।

इसके अनन्तर फिर करन्यास करना चाहिए 'ओं आपो अगुष्ठाभ्यां नमः' इस मन्त्र से अँगूठे का स्पर्श करे । 'ओं ज्योतितर्जनीभ्यां नमः इस तर्जनी अंगुलिका—ओं रसो मध्यमाभ्यां नमः इससे मध्य के अँगुलिका—'ओं ऽमृतम् अनामिकाभ्यां नमः । इससे अनामिका अँगुलिका ओं ब्रह्मा कनिष्ठिकाभ्यां नमः' इससे कनिष्ठिका अँगुलि का स्पर्श करे । ओं भुर्भूवः स्वरोम्' इससे दोनों करो की हथेलियों और उनके पृष्ठ भाग का स्पर्श करे । 'ओं अग्नये हृदयाय नमः' इससे हृदय का स्पर्श करे 'ओं वायवे शिर से स्वाहा से शिर का स्पर्श करे—ओं सूर्याय शिखायै

वषट्' से शिखा का स्पर्श करे—'ओं ब्रह्मणे कवचाय हुम्' इस मन्त्र से दोनों भुजाओं का स्पर्श करना चाहिए। 'ओं विष्णवे नेत्रत्रयाय वौषट्' इस मन्त्र से दोनों नेत्रों का स्पर्श करे। पीछे 'ओं रुद्राय अस्त्राय फट्' से ताली बजा दें।

ब्रह्म गायत्री मन्त्र

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यः ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ आपो ज्योती रसोऽमृत ब्रह्मभूर्भुवः स्वरोम्।

ब्रह्म गायत्री मन्त्र का स्वरूप निम्नांकित है—ओं भूः ओं भुवः ओं स्वः ओं महः ओं जनः ओं तपः ओं सत्यः ओं तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ओं आपो ज्योती रसोऽमृतं भूर्भुवः स्वरोम्।

गायत्री का स्वरूप

सदाचारविधिर्देवं भवता वर्णितः प्रभो।
यस्याऽप्यतुलमाहात्मयं सर्वपापविनाशनम् ॥१
श्रुतं भवन्मुखांभोजच्युतं देवीकथामृतम्।
व्रतानि यानि प्रोक्तानि चांद्रायणमुखानि च ॥२
दुःखसाध्यानि जानीमः कर्तृसाध्यानि तानि च।
तदस्मात्सांप्रतं यत्तु सुखसाध्यं शरीरिणाम् ॥३
देवीप्रसादजनकं शुभानुष्ठानसिद्धिम्।
तत्कर्म वद मे स्वामिन्कृपापूर्वं सुरेश्वर ॥४
सदाचारविधौ यश्च गायत्रीविधिरीरितः।
तस्मिन्गुरुस्यत्तमं किं स्यात्किं वा पुण्याधिकप्रदम् ॥५

ये गायत्रीगता वर्णास्तत्वसंख्यास्त्वयेरिता: ।
तेषां के ऋषय: प्रोक्त: कानि छंदांसि वै मुने ॥६
तेषां का देवता: प्रोक्ता: सर्वंकथयं मे प्रभो ।
महत्कौतूहलं मे च मानसे परिवर्तते ॥७

देवी भागवत में देवी के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया है–

नारदजी ने भगवान् नारायण से निवेदन किया–हे प्रभो ! आ सदाचार-विधि का वर्णन किया । उसका सर्व पाप नाशक माहात्म्य सुनाया ।१। आपके मुख-कमल से भगवती कथामृत भी सुना, प आपने जिस चान्द्रायण प्रमृति व्रतों के विषय में कहा है ।२। वे कष्ट साध्य हैं । इसलिए अब आप देहधारियों के हित के लिए सुग से होने वाला कोई उपाय कहिए ।३। जो देवी को प्रसन्न करने वा और सिद्धि प्रदान करने का अनुष्ठान हो हे स्वामिन् सुरेश्वर ! उसे कृपा करके मुझे बताइये ।४। आपने सदाचार विषयक गायत्री जो विधान कहा है, उनमें सर्वश्रेष्ठ और अधिक पुण्य देने वाला कौन सा है ? ।५। गायत्री के जो चौबीस वर्ण आपने कहे हैं, ऋषिछन्द और देवता कौन-कौन हैं ? वह सब मुझे बताइए क्योंकि मन में इनके प्रति अत्यन्त कौतूहल हो रहा है ।६-७।

कुर्यादन्यन्न वा कुर्यादनुष्टानादिक तथा ।
गायत्री मात्र निष्टस्तु कृतकृत्यो भवेद्द्विज: ॥८
संध्यासुचार्घ्यदानं च गायत्रीजयमेव च ।
सहस्त्रत्रयं कुर्वन्सुरै: पूज्योभवेन्मुने ॥९
न्यासान्करोतु वा मा वा गायत्रीमेव चान्यसेत् ।
ध्यात्वा निर्व्याजियां वृत्या सच्चिदानन्दरूपिणीम् ॥१०
अथात: श्रूयतां ब्रह्मन्वर्णऋष्यादिकास्तथा ।
छंदांसि देवतास्तद-क्रमात्तत्वानि चैव हि ॥११

वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठः शुक्रः कण्वः पराशरः।
विश्वामित्रो महातेजाः कपिलः शौनको महान् ॥१२
याज्ञवल्क्यो भरद्वाजो जमदग्निस्तपोनिधिः।
गौतमो मुद्गलश्चैव वेदव्यासश्च लोमशः ॥१३
अगस्त्यः कौशिको वत्सः पुलस्त्यो मांडुकोस्तथा ।
दुर्वासास्तपतां श्रेष्ठो नारदः कश्यपस्तथा ॥१४

नारद जी की पृच्छाओं को सुनकर नारायण बोले—हे नारद ! किसी अन्य अनुष्ठान को करें या न करें, किन्तु एकमात्र गायत्री का ही अनुष्ठान कर लें, तो ही द्विज उससे कृतकृत्य हो सकता है ।८। त्रिकाल संध्या के समय सूर्य को अर्घ्य प्रदान करे और गायत्री का जप करे। नित्य प्रति तीन हजार गायत्री मन्त्र का जप करने से मनुष्य देवताओं के द्वारा पूज्य हो जाता है ।९। अङ्ग न्यास करे अथवा न करे, परन्तु गायत्री मन्त्र का जप अवश्य करना चाहिए। साथ ही जप करते समय कपट रहित मन से सच्चिदानन्द-स्वरूप गायत्री देवी का ध्यान भी करे ।१०। हे ब्रह्मन्! अब आप गायत्री के वर्ण, ऋषि, छन्द, और देवता आदि का वर्णन भी सुनो ।११। वामदेव, अत्रि वशिष्ठ, शुक्र, कण्व, पाराशर, विश्वामित्र, कपिल शौनक, याज्ञवल्क्य, भरद्वाज, जमदग्नि, गौतम, मुद्गल, वेदव्यास, लोमश, अगस्त्य, कौशिक, वत्स, पुलस्त्य, माण्डूक, दुर्वासा, नारद और कश्यप ।१२-१४।

इत्येते ऋषयः प्रोक्ता वर्णानां क्रमशो मुने ।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पंक्तिरेव च ॥१५
त्रिष्टुभं जगती चैव तथाऽतिजगती मता ।
शक्वर्यतिशक्वरी च धृतिश्चातिधृतिस्तथा ॥१६
विराट् प्रतारपंक्तिश्च प्रकृतिराकृतिः।
विकृतिः संकृतिश्चैवाक्षरपंक्तिस्तथैव च ॥१७
भूर्भुवः स्वरिति छन्दस्तथा ज्योतिष्मती स्मृतम् ।
इत्येतानि च छंदांसि कीर्तितानि महामुने ॥१८

देवतानि शृणु प्राज्ञः तेषामेवानुपूर्वशः ।
आग्नेयं प्रथमं प्रोक्तं प्राजापत्य द्वितीयकाम् ॥१९
तृतीयं च तथा सौम्यमीशानं च चतुर्थकम् ।
सावित्रं पंचमं प्रोक्तं षष्ठमादित्यदैवतम् ॥२०
बार्हस्पत्यं सप्तमं तु मैत्रावरुणामष्टमम् ।
नवमं भगदैवत्यं दशमं चार्यमेश्वरम् ॥२१
गणेशमेकादशाशं त्वाष्ट्रं द्वादशां स्मृतम् ।
पौष्णं त्रयोदशं प्रोक्तमैंद्राग्निं च चतुर्दशम् ॥२२
वायव्यं पंचदशकं वामदेव्यं च षोडशम् ।
मैत्रावरुणि दैवत्य प्रोक्तं सप्तादशाक्षरम् ॥२३
अष्टादशं वैश्वदेवमूनविंशतिमातुकम् ।
वैष्णवं विंशतितम वसुदैवतमोरितम् ॥२४

हे मुने ! वर्णों के क्रमशः यह ऋषि हैं । अब छन्द सुनो । उष्णिक् अनुष्टुप् वृहती, हैं पंक्ति त्रिष्टुप्, जगती, अति जगती, शक्वरी, धृति, विराट् प्रस्तारपंक्ति, कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति, संस्कृति, अक्षरपंक्ति, भूः भुवः स्वः और ज्योतिष्मति—हे महामुने ! यह चौबीस छन्द कहे जाते हैं ।१४-१८। हे प्राज्ञ ! अब देवताओं का वर्चस्व सुनो—प्रथम वर्ण के देवता अग्नि हैं, दूसरे के प्रजापति, तीसरे के चन्द्रमा, चौथे के ईशान पाँचवें के सावित्री, छठे के आदित्य, सातवें के वृहस्पति, आठवें के मित्रावरुण, नवें के भग, दशवे के ईश्वर ग्यारहवें के गणेश, बारहवें के त्वष्टा तेरहवें के पुषा और चौदहवें के इन्द्रासन हैं ।१९-२२। पन्द्रहवें के वायु सोलहवें, के वामदेव, सत्रहवें के मित्रावरुण, अठारहवें के वैश्वदेव उन्नीसवें के मातक बीसवें के विष्णु और इक्कीसवें के वसुगण हैं ।२३-२४।

एकविंशतिसंख्याकं द्वाविंशं रुद्रदैवतम् ।
त्रयाविंशं च कौवेरमाश्विनं तत्वसख्यकम् ॥२५
चतुर्विंशतिवर्णानां देवतानां च संग्रहः ।

कथितः परमश्रेष्ठो महापापैकशोधनः ।।२६
वर्णानां शक्तयः काश्च ताः शृणुष्व महामुने ।
वामदेवी प्रिया सत्या विश्वा भद्रविलासिनी ।।२७
प्रभावती जया शान्ता कांता दुर्गा सरस्वती ।
विद्रुमा च विशालेशा व्यापिनी विमला तथा ।।२८
तमोऽपहारिणी सूक्ष्मा विश्वयोनिर्जया वशा ।
पद्मालया परा शोभा भद्रा च त्रिपदा स्मृता ।।२६
चतुर्विंशतिवर्णानां शक्तयः समुदाहृताः ।
अत्र परं वर्णवर्णान्व्याहरामि यथातयम् ।।३०
चंपका अतसीपुष्पसन्निभं विद्रुमं तथा ।
स्फटिकाकारकं चैव पद्मपुष्पसमप्रभम् ।।३१
तरुणादित्यसंकाशं शंखकुन्देन्दुसन्निभम् ।
प्रवाल पद्मपत्राभं पद्मरागसमप्रभम् ।।३२
इन्द्रनीलमणिप्रख्यं मौक्तिकं कुंकुमप्रभम् ।
अंजनाभं च रक्तं च वैदूर्यं मणिसन्निभम् ।।३३
हारिद्रं कुंददुग्धाभं रविकीर्तिसमप्रभम् ।
शक्रपुच्छनिभं तद्वच्छतपत्र निभं तथा ।।३४
केतकीपुष्पसंकाश मल्लिकाकुसुमप्रभम् ।
करवीरश्च इत्येते क्रमेण परिकीर्तिता ।।३५

तेईसवें अक्षर के कुवेर और चौवीसवें अक्षर के देवता अश्विनी कुमार हैं। महापातकों का नाश करने वाले गायत्री मन्त्र के ये चौबीस परम श्रेष्ठ देवता बताए जाते हैं। ।२५-२६। हे महामुने! अब किस वर्ण की कौन सी शक्ति है, उसे सुनो। कामदेवी, प्रिया सत्या, विश्वा, भद्र विलासिनी ।२७। प्रभावती, जया शान्ता, कान्ता दुर्गा, सरस्वती, विद्रुमा विशालेशा, व्यापिनी और विमला ।२८। तमो पहारिणी, सूक्ष्मा विश्वयोनि, जया, वशा, पद्मालया, परा, शोभा भद्रा और त्रिपदा स्मृति ग्रन्थों के गायत्री के वर्णों की ये चौबीस शक्तियाँ बताई गई हैं। अब मैं

तुम्हें वर्णों का यथार्थ स्वरूप कहता हूं।२९-३०। चम्पा अलसी पु स्फटिक, कमल,-पुष्प, तरुण सूर्य, कुन्द, शङ्ख, प्रवाल, पद्मपत्र, पद्म राग, इन्द्रनीलमणि, मुक्ता कुंकुम, लाल वैडूर्यमणि, हरिद्रा, कुन्द, दु सूर्यकान्ति, शुक्र-पुष्प, शत पुष्प; केतकी, पुष्प, मल्लिका-पुष्प क पुष्प--क्रमशः इन्हें गायत्री के वर्णों का रङ्ग आभा समझना चाहि ।३१-३५।

वर्णाः प्रोक्ताश्च वर्णानां महापापविशोधनाः ।
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाश एव च ।।३६
गंधा रसश्च रूपं च शब्दः स्पर्शस्तथैव च ।
उपस्थं पायुपादं च पाणी वागपि ततः परम् ।।३७
घ्राणं जिह्वा च चक्षुश्च त्वक्श्रोत्र च ततः परम् ।
प्राणोऽपानस्तथा व्यानः समानश्च ततः परम् ।।३८
तत्वान्येतानि वर्णानां क्रमशः कीर्तितानि तु ।
अतः पर प्रवक्ष्यामि वर्णमुद्राः क्रमेण तु ।।३९
सुमुखं सम्पुटं चैव विततः विस्तृतं तथा ।
द्विमुखं त्रिमुखं चैव चतुः पंचमुख तथा ।।४०
षण्मुखाधोमुखं चैव व्यापकांजलिकं तथा ।
शकटं यमपाशं च ग्रंथितं सम्मुखोन्मुखम् ।।४१
विलंबं मुष्टिकं चैव मत्स्यं कूर्मं वराहकम् ।
सिंहाक्रांतं महाक्रांत मुद्गरं पल्लवं तथा ।।४२
त्रिशूलयोनि सुरभिश्चामाला च लिङ्गकम् ।
अंबुजं च महामुद्रास्तुर्यरूपाः प्रकीर्तिताः ।।४३
इत्येता कीर्तिता मुद्रा वर्णानां ते महामुने ।
महापापक्षयकराः कीर्तिदाः कांतिदा मुने ।।४४

गायत्रीवर्णों के ये रङ्ग महापाप का शोध करते हैं। पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश, गन्ध, रस रूप, शब्द, स्पर्श, उपस्थ वायु,

पाणि, वाणी, प्राण, जिह्वा, चक्षु त्वक् श्रोत्र प्राण, अपान, व्यान और समान—ये क्रमशः वर्णों के चौवीस तत्व कहे गये हैं। अब क्रमशः वर्णों की मुद्रा कहता हूँ।३६-३९। समुख, सम्पुट, वितत, त्रिस्तृत, द्विमुख, त्रिमुख, चतुर्मुख, पंचमुख, षण्मुख, अघोमुख, व्यापकांजलि, शकट, यमपाश, ग्रथित, सन्मुखोन्मुख, विलम्ब, मुष्टिक, मत्स्य, कूर्म, वराह, सिंहाक्रान्त, महाकाल, मुद्गर पल्लव-ये गायत्री की चौवीस मुद्रायें कही गईहैं।४०-४२। त्रिशूल, योनि, सुरभि, अक्षमाला, लिङ्ग,और कमल, तुर्यरूपा गायत्री की मुद्रायें बताई गई हैं।४३। हे महामुने ! वर्णों की जो मुद्रायें कही गई हैं वे सदैव कीर्ति और कान्ति को देने वाली है । महापापों का नाश करने वाली हैं।४४।

गायत्री-पंजर-स्तोत्रम्

भगवन्तं देवदेवं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ।
विधातारं विश्वसृजं पद्मयोनि प्रजापतिम् ।।१
शुद्ध-स्फटिक संकाशं महेन्द्रशिखरोपमम् ।
बद्ध-पिंग जटाजूट तडित्-कनक-कुण्डलम् ।।२
शरद्चन्द्राभवदनं स्फुरदिन्दीवरेक्षणम् ।
हिरण्मयं विश्वरूपमुपवीताजिनावृतम् ।।३
मौक्तिकाभाक्ष-वलय-स्तन्त्री-लय-समन्वितः ।
कर्पूरोद्धूलिततनुः स्रष्टुर्नयन-वर्द्धनम् ।।४
विनयेनोपसंगम्य शिरसा प्रणिपत्य च ।
नारदः परिपप्रच्छ देवर्षिगण मध्यमः ।।५

नारद उवाच—

भगवन् ! देवेदेवेश ! सर्वज्ञ ! करुणानिधे ! ।
श्रोतुमिच्छामि प्रश्नेन भोग मोक्षैक साधनम् ।।६

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य फलद द्वन्द्ववर्जितम् ।
ब्रह्महत्यादि पापघ्नं पापद्यरिभयापहम् ।।७
यदेकं निष्फलं सूक्ष्मं निरञ्जनमनामयम् ।
यत्ते प्रियतमं लोके तन्मे ब्रूहि पितर्मम ।।८

जो ब्रह्माजी इस सम्पूर्ण सृष्टि को रचना करने वाले हैं, जिनका उद्भव पद्म से हुआ है और जो समस्त प्रजाओं के स्वामी हैं ।१।जिनके शरीर का वर्ण परम स्वच्छ स्फटिक के सदृश स्वच्छ है, जिनकी सुषमा महेन्द्र की शिखर के समान है, जिनका जटाजूट पीतवर्ण का बँधा हुआ है जिनके कनकमय कुण्डल विद्युत् के सदृश चमक रहे हैं जिनका मुख-मण्डल शरद्काल के समुदित चन्दा के समान सुप्रसन्न हैं, जिनके नेत्र कमल के समान शोभायुक्त हैं, जो हरिण्यगर्भ हैं, जिनके सुन्दर शरीर पर उपवीत और अजिन सुशोभित हैं । जिनके कर कमलों में मुक्ताओं के कङ्कण शोभित हैं जिनकी वाणी लय से संयुक्त है । जिनके शरीर पर कपूर का उपलेपन है और जिनका दर्शन नेत्रों को आनन्दप्रद है ।४। ऐसे ब्रह्माजी के समीप में देवर्षि नारदजी ने विनय पूर्वक प्रणाम किया और उनसे पूछा था नारदजी ने कहा—हे देवेश्वर ! हे भगवान् ! आप तो सर्वज्ञ हैं और करुणा की खान हैं मैं आपसे यही पूछने की इच्छा लेकर उपस्थित हुआ हूँ कि भोग और मोक्ष की प्राप्ति के क्या साधन हैं ? ।५। मनुष्य इस संसार में सभी प्रकार के ऐश्वर्यों से सुसम्पन्न कैसे कर सकता हैं और ब्रह्महत्या आदि महापातकों से छुटकारा मनुष्य को कैसे प्राप्त होता है एवं पापों रूपी शत्रुओं के विनाश करने का क्या उपाय है ? ।७। इस संसार में माया से रहित-निराकार तथा निर्दोष क्या है और आपका सबसे अधिक प्रियतम क्या हैं ? हे महाराज आप क्रपा करके मुझे यही बताने की उदारता कीजिए ।८।

ब्रह्मोवाच

श्रृणु नारद ! प्रवक्ष्यामि ब्रह्ममूलं सनातनम् ।
सृष्ट्यादौ सन्मुखे क्षिप्तं देवदेवेन विष्णुना ।।९

प्रपञ्चबीजमित्याहुरुत्पत्ति- स्थिति-हेतुकम् ।
पुरा मया तु कथितं कश्यपाय सुधीमते ॥१०
सावित्रीपञ्जरं नाम रहस्यं निगमत्रये ।
ऋष्यादिकं च दिक्वर्णं साङ्गावरणकं क्रमात् ॥११
वाहना-ऽऽयुध मन्त्रास्त्रं मूर्ति-ध्यान-समन्वितम् ।
स्तोत्रं शृणु प्रवक्ष्यामि तव स्नेहाच्च नारद ! ॥१२
ब्रह्मनिष्ठाय देयं स्याददेयं यस्य कस्यचित् ।
आचम्य नियतः पश्चादात्म ध्यान पुरःसरम् ॥१३

ब्रह्माजी ने उत्तर में नारदजी से कहा—हे नारद !. इस सृष्टि का मूल परब्रह्म जो कि सनातन है और आदिकाल में दोनों के भी अधिदेव श्री भगवान् विष्णु ने जिसको मेरे मुख में प्रक्षिप्त किया था, जो इस प्रपंचभूत सम्पूर्ण जगत का बीज है और इसकी स्थिति का कारण है तथा पूर्व समय में मैंने जिसका कश्यप को उपदेश दिया था वह वेदों में सावित्री पंजर के नाम से प्रसिद्ध है। वह ऋषि सांगावरण, दिक्वर्ण, वाहन, आयुध, स्तोत्र, मन्त्र, मूर्त्ति तथा ध्यान से संयुक्त है। अब आप उसी स्तोत्रका श्रवण कीजिए क्योंकि आप मेरे आत्मज हैं। यही कारण है कि मैं स्नेह के वशीभूत होकर आपको इसे बतला रहा हूँ ।९–११। ।१२। इस स्तोत्र को गोपनीय रखना चाहिए और जो ब्रह्म निष्ठ पुरुष हो उसी को बताना चाहिए। हर किसी को नहीं कहना चाहिए। इस स्तोत्र का पाठ स्नान करके ही करे। पहिले विधि के साथ आचमन करना चाहिए फिर ब्रह्म के स्वरूप वाली गायत्री का ध्यान करे ।१३।

ओमित्यादौ विचिन्त्याथ व्योम हेमाब्ज संस्थितम् ।
धर्मकन्द गतज्ञानमैश्वर्याष्ट दलान्वितम् ॥१४
वैराग्य कर्णिकासीनां प्रणव ग्रह मध्यगाम् ।
ब्रह्मवेदिसमायुक्तां चैतन्यपुरमध्यगाम् ॥१५
तत्त्व हंस समाकीर्णा शब्दपीठे सुसंस्थिताम् ।
नाद बिन्दु कलातीतां गोपुरे रूपशोभिताम् ॥१६

विद्या-ऽविद्यामृतत्वादि प्राकारैरभिसंवृताम् ।
निगमार्गलसञ्छन्नां निर्गुणद्वारवाटिकाम् ॥१७
चतुर्वर्गफलोपेतां महाकल्पवनैर्वृताम् ।
सान्द्रानन्द सुधासिन्धु निगमद्वार वाटिकाम् ॥१८
ध्यान धारण योगादि तृण गुल्म लतावृताम् ।
सदसच्चित्स्वरूपाख्य मृग पक्षि समाकुलाम् ॥१९
विद्याऽविद्या विचारत्वाल्लोकाचलावृताम् ।
अविकार समाश्लिष्ट निजध्यान गुणावृताम् ।
पञ्चीकरण पञ्चोत्थ भूत तत्व निवेदिताम् ॥२०
वेदोपनिषदर्थाख्य देवर्षिगण सेविताम् ।
इतिहासग्रहगणैः सदारैरभिवन्दिताम् ॥२१

गायत्री के ध्यान का स्वरूप यह है—यह गायत्री प्रणव (ओंकार) की व्याख्या है, जो गगन के समाज सुवर्णमय पद्म पर विराजमान है, जो कमल का धर्म स्वरूप कन्द है जो ज्ञान को समुत्पन्न करने वाला है, जो गायत्री-ऐश्वर्य आदि आठ कलाओं से समन्वित है ।१४। जो वैराग्य स्वरूप कमल की कर्णिका के ऊपर विराजमान है और प्रणव है । उसका आस न है, जो ब्रह्मरूपी वेदोंसे मुक्त है एवं चैतन्यरूपों में निवास किया करती है ।१५। यह तत्व रूपी हंस से समाकीर्ण है और शब्द के पीठ पर विराजमान है । जो नाद-बिन्दु और कला से परिवर्तिनी हैं, जो एक रूपी चैतन्यहर का प्रमुख द्वार है, जिसका विद्या अविद्या अमृत तत्वादि स्वरूप प्रकार भित्ति है, जो उस चैतन्यपुर को परिवेष्टित किए हुए हैं जो वेद स्वरूपी अर्गलासे संच्छन्न है और निर्गुण रुपमय वाटिका के स्वरूप से संयुक्त है ।१६-१७। उस अद्भुत वाटिका के स्वरूप का विशाद वर्णन किया जाता है यह वाटिका धर्म-अर्थ काम और मोक्ष चतुवर्ग से समन्वित हैं, यह वाटिका धन आनन्दरूपी सुधा का सागर है, यह मानवों की मनोवांछा सिद्धि के वास्ते महाकल्प वृक्षों के वन से समावृत है, यह इस वाटिका का निर्गुण ब्रह्म ही द्वार है, यह वाटिका

ध्यान–धारणा स्वरूप योग के साधनों के तृण–गुल्मों से समाकीर्ण है, इस वाटिका में चित-सत्-असत् रूपी मृगगण तथा पक्षिगण विचरण किया करते हैं ।१८-१९। यह वाटिका ध्यान रूपी गुणों से आवृत है जो कि विकारों से रहित है एवं पंजीकरण पंचोत्थ (वेदान्त के विषय, तथा पांच ज्ञानेन्द्रियों से शासित चित् तथा भूततत्वों से जिसका ज्ञान होता है ।२०। वेद एवं उपनिषद् स्वरूप महर्षियों का समुदाय जिस निर्गुण रूपी वाटिका–सावित्री में निवास किया करते हैं स्त्रियों के संयुत इतिहास जिसकी वन्दना करते हैं ।२१।

गाथाप्सरोभिर्यक्षैश्च गण किन्नर सेविताम् ।
नाग सिंह पुराणाख्यैः पुरुषै कल्पचारणैः ॥२२
कृतगान विनोदादि कथालापन तत्पराम् ।
त दत्वावाङ् मनोगम्य तेजोरूपधरा पराम् ॥२३
जगतः प्रसवित्रीं तां सवितुः सृष्टिकारिणीम् ।
वरेण्यमित्यन्नमयीं पुरुषार्थफलप्रदाम् ॥२४

विभिन्न प्रकार की गाथायें ही अप्सराओं के समान है जिसमें यक्ष, किन्नरगण निवास किया करते हैं और पुराणों के स्वरूप वाला 'नृसिंह जिसमें गर्जन कर रहा है तथा कल्परूपी चारण जिसका स्तवन किया करते हैं एवं चारणरुपी कल्प पुरुष विविध प्रकार की गाथाओं से तथा विनोदों से जिसका ज्ञान कर रहे हैं और जो परब्रह्म के स्वरूप वाली है और मन-वाणी से पूर्णतया परे है तथा जिसका परम दिव्य तेजोमय स्वरूप विग्रह है । उस इस स्थावर जङ्गम जगत्को उद्भव प्रदान करने वाली और सविता देवता का भी सृजन करने विश्व के भरण-पोषण करने के लिए अन्न का स्वरूप धारण करने वाली और धमार्थ काम मोक्ष चारों पदार्थों का फल प्रदान करने वाली है ।२२-२४।

अविद्यावर्णनर्ज्यां च तेजोवद्गर्भसंज्ञिकाम् ।
देवस्य सच्चिदानन्द परब्रह्मरसात्मिकाम् ॥२५

धीमह्य हंस वै तद्वद् ब्रह्माद्वैत स्वरूपिणीम् ।
धियो यो नस्तु सविता प्रचोदयादुपासिताम् ॥२६
परोऽसौ सविता साक्षादेनी निर्हरणाय च ।
परो रजस इत्यादि पर ब्रह्मसनातनम् ॥२७
आपो ज्योतिरिति द्वाभ्यां पञ्चभौतिकसंज्ञकम् ।
रसोऽमृतं ब्रह्मपदैस्तां नित्यां तपिनीं पराम् ॥२८
भूर्भुवः स्वःवरित्येतैर्निगमत्व प्रकाशिकाम् ।
महर्जनस्तपः सत्य लोकोपरि सुसंस्थिताम् ॥२९

जिनके अन्दर अविद्या का लेशमात्र भी नहीं है और जिसका कोई भी रूप नहीं है जो पूर्णतया तेज के रूप से विराजमान है, जो सच्चिदानन्द के स्वरूप वाली है तथा देवता परब्रह्म स्वरूप है ।२५। ब्रह्म मैं उस भगवती अद्वैत स्वरूप वाली सावित्री का ध्यान करता हूँ जिसके द्वारा यह सविता देवता परमोपसित होकर के हमारी बुद्धि को सत्कार्य में प्रेरणा प्रदान करे ।२६। पापों का निराकर करने के लिए जो साक्षात् सविता के रूप वाली है एवं रजोगुण से परे जो सनातन ब्रह्म स्वरूप से संयुक्त है और 'आपो' 'ज्योति' इन दो स्वरूपों से इस जगत् के मूल पाँच भौतिक शरीर में विराजमान हैं और अमृत रसरूपी कीय किरणों से नित्य से नित्य ही सूर्य के रूप वाली है, जो 'भूर्भुवः' तीनों पदों से सदैव समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने वाली है तथा महजन-तप और सत्यलोक से भी ऊपर विराजमान रहती है । २८।२९।

ताहृगस्या विराड्रूप किराट वरराजिताम् ।
व्योमकेशाल्लकाकाश रहस्यं प्रवदाम्यहम् ॥३०
मेरु भ्रुकुटिकाक्रान्य विधि विष्णु शिवार्चिताम् ।
गुरु भार्गव कर्णान्तां भानु सोमाग्नि लोचनाम् ॥३१
इडा पिंगला सूक्ष्माभ्यां वायु नासापुटान्विताम् ।

सन्ध्या-द्विरोष्ठ-कटितां लसद्-वाग्-भय-जिह्विकाम् ।३२
सन्ध्यांसौ द्यु मणें कण्ठ लसद् वाहु समन्विताम् ।
पर्जन्य हृदयासक्त वसु-सुस्तन मण्डलाम् ।३३
आकाशोदर वित्रस्त-नाभ्यवान्तर-देशकाम् ।
प्रजापत्ख्य-जंघानां कटीन्द्राणीनि-संज्ञिकाम् ।३४

मस्तक पर सुन्दर किरीट से परमशोभायमान होकर जो इस जगतीतत्व में विराट् रूप से विराज रही हैं। आकाशरूपी केशों से समन्वित उस व्योमकेशा भगवती का रहस्य मैं वर्णन कर रहा हूँ ।३०। जिसकी परम सुन्दर भ्रु कुटियाँ मेघ ही हैं और ब्रह्म विष्णु एवं महेश्वर शिव जिसकी सदा ही अर्चना किया करते हैं देवगुरु वृहस्पति और शुक्राचार्य जिस विराट्रूपा भगवती के काल हैं तथा चन्द्र और सूर्य दो नेत्र है। वायु के ग्रहण करने के लिये सूक्ष्म बड़ा और पिंगला ही जिस देवी के दो नास छिद्र हैं। दो संध्यायें जिस भगवती विराट् स्वरूपा के जो ओष्ठ और परम शोभायुक्त वाणी ही जिसकी जिह्वा है। दो संध्यायें ही जिसके दो स्कन्ध (कंधे) है तथा दिवाकर जिसका कण्ठ है और पर्जन्य हृदय है एवं वसु जिसके स्तन हैं ।३१-२३-३३। जिस भगवती का आकाश ही नाभि से अवान्तर देश तक व्याप्त उदर हैं। प्रजापति ही जिस भगवती की जंघा और समस्त इन्द्रियाँ जिसके कटि प्रदेश है ।३४।

ऊरू-मलय-मेरुभ्यां कोभमाना-ऽसुरद्विषम् ।
जानुनी जह्नु-कुशिक-वैश्वदेव सदाभुजाम् ।३५
अयनद्वय-जंघाद्य-खुराद्य-पितृ संज्ञिकाम् ।
पदाघ्रि-नख-रोमाद्य-भूतल-द्रु मलाञ्छिताम् ।३६
ग्रह-राशियक्ष-देवर्षि-मूर्ति च परसंज्ञिकाम् ।
तिथि-मासर्तु-वर्षाख्य-सुकेतु-निमिषात्मिकाम् ।३७
आहोरात्रार्द्ध-मासाख्यां सूर्याचन्द्रमसात्मिकाम् ।

माया-कल्पित-वैचित्र्य संन्ध्याच्छादन-संवृताम् ।३८
ज्वलत्-कालानल-प्रख्यां तडित्कोटि-समप्रभाम् ।
कोटिसूर्य-प्रतीकाशां चन्द्रकोटि-सुशीतलाम् ।३९

मलयाचल और मेरुगिरि ही दोनों उरु तथा समस्त वसु जिसके शत्रु हैं। जह्नु तथा कुशिक जिसके जानु हैं तथा वैश्वदेव जिसकी भुजायें हैं ।३५। दोनों उत्तरायण और दक्षिणायन ये दोनों ही जिसकी जंघायें है। देवगण और पितर ही जिसके दोनों चरण इस पृथिवी तल के समस्त पादपगण ही जिसके नख और रोम हैं यह कालरूपा भगवती का वर्णन किया जाता है । परब्रह्म स्वर्ण भगवती की देवर्षिराशि और नक्षत्र सब मूर्तियाँ है तथा वर्षमास ऋतु और निमिष ध्वज हैं जिसका दिन-रात और पक्षन्यास है और एवं चन्द्र जिसकी आभा है। यह संध्या जो माया से कल्पित विचि से संयुत है यही सन्ध्या जिस भगवती का आच्छादन करने का है ।३७।३८। यह जाज्वल्यमान कालाग्नि के समान भयंकर है करोड़ों विद्युत के सदृश देदीप्यमान जिसके शरीर की कान्ति है कोटि सूर्यों के समान जो परम तेजस्वी है और करोड़ों चन्द्रों के स जो परम शीतल है ।६।

सुधामण्डल-मध्यस्थां सान्द्रानन्द्राऽमृतात्मिकाम् ।
प्रागतीतां मनोरभ्यां वरदां वेदमातरम् ।४०
चराऽचरमयीं नित्यां ब्रह्माक्षर-समन्विताम् ।
ध्यात्वा स्वात्मनि भेदेन ब्रह्मपञ्जरमारभेत् ।४१

जो देवी सुधामण्डल के मध्य भाग में निवास किया करती है जो घन आनन्द के सागर में सदृश हैं, जो इस सृष्टि के पूर्व समय से विद्यमान है, जो सबके मन में आनन्द का उद्रेक करने वाली है मानवों को वरदान देने वाली है तथा वेदों की साक्षात् माता है। स्थावर और जंगम जगत् ही जिसका स्वरूप है, जो नित्य एवं

है—ऐसे भगवती के विराट् तथा कालात्मक रूप का ध्यान करके इसके पीछे ब्रह्म पंजर स्तोत्र का पाठ करना चाहिए ।४०।४१।

पञ्जरस्य ऋषिश्चाऽहं छन्दो विकृतिरुच्यते ।
देवता च परो हंसः परब्रह्माऽधिदेवताम् ।४२
प्रणवो बीजशक्तिः स्यादों कीलकमुदाहृतम् ।
तत्तत्वं धीमहि क्षेत्रं धियोऽस्त्रं यः परं पदम् ।४३
मन्त्रमापो ज्योतिरिति योनिर्हं सः सवन्धकम् ।
विनियोगस्तु सिद्ध्यर्थं पुरुषार्थचतुष्टये ।४४
ततस्तैरङ्गषट्कं स्यात्तैरेव व्यापकत्रयम् ।
पूर्वोक्तदेवतां ध्यायेत् साकारगुणसंयुताम् ।४५

इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने नारद जी से कहा था हे नारद ! अब आप श्रवण कीजिए—विष्णु पंजर स्तोत्र का ऋषि मैं ही हूँ, विकृति इसका छन्द है, परब्रह्म इस स्तोत्र का अधिदेवता है और हंस इसका देवता है ।४२। प्रणव बीज शक्ति हैं और 'ॐ' इसका कीलक है । 'तत्' इसका तत्व है और 'धीमहि' इसका क्षेत्र है । 'धियो' इसका अस्त्र है । योनः यह पद है । 'आपो ज्योति' इसका मन्त्र है । 'हंस' इसकी योनि है । चारों पुरुषार्थों की सिद्धि गायत्री पंजर के पाठ का विनियोग है ।४३।४४। इसके उपरान्त अंगन्यास और करन्यास करना चाहिए । इसके पश्चात् व्यापक आदि तीन मुद्राओं को प्रदर्शित करे फिर आकाश और गुणों से संयुक्त देवी का स्मरण करता हुआ भगवती गायत्री का ध्यान करना चाहिए ।४५।

पञ्चवक्त्रां दशभुजां त्रिपञ्चनयनैर्युताम् ।
मुक्ता-विद्रुम-सौवर्णां सित-शुभ्र-समाननाम् ।४६
वाणीं परां रमां मायां चमरैर्दर्पणैर्युताम् ।
षडाङ्गदेवतामन्त्रैः रूपाद्यवयवात्मिकाम् ।४७
मृगेन्द्र-वृक्षपक्षीन्द्र-मृगहंसासने स्थिताम् ।
अर्द्धेन्दुवद्ध-मुकुट-किरीट-मणिकुण्डलाम् ।४८

रत्नताटक-माङ्गल्य- परग्रैवेयकनूपुराम् ।४९
अङ्गुलीयक-केयूर- कंकणाद्यैरलङ्कृताम् ।
दिव्यस्रग्र्-वस्त्र-संछन्न रविमण्डल-मध्यगाम् ।
वरा-ऽभया-ऽब्ज-युगलां शंख-चक्र-गदांऽकुशान् ।५०
शुभ्रं कपालं दधती बहन्तीमक्षमालिकाम् ।
गायत्रीं वरदां देवी सावित्री वेदमातरम् ।५१
आदित्यपथगामिन्यां स्मरेद् व्रह्मस्वरूपिणीम् ।
विचित्र-मन्त्रजननीं स्मरेद् विद्यां सरस्वतीम् ।५२

गायत्री देवी के ध्यान का निरूपण किया जाता है—जिस भगवं गायत्री के पांच मुख, दश भुजायें और पन्द्रह नेत्र हैं । वे पांचों मु क्रम से मोती, मूँगा, स्वर्ण, स्वच्छ एवं शुभ्र हैं । जो रमा सरस्वं माया चमर और दर्पण से समन्वित है—जिसके रूपादि अवश्य पह देवता तथा मन्त्रों के द्वारा ज्ञात होते हैं ।४६-४७। जो दुर्गा के स्व से सिंह पर, माहेश्वरी के रूप से बैल पर, वैष्णवों के रूप से गरुड़ एवं ब्राह्मणी के स्वरूप से हंस के वाहन पर विराजमान रहा करती है जिनका मुकुट और किरीट अर्धचन्द्र से समन्वित है और कुण्डल मणि से युक्त है ।४८। जो रत्नों से जड़े हुए कर्ण भूषण, सौभाग्य समन्वि ग्रैवेयक (कण्ठहार), नूपुर, अंगुठी, केयूर (वाजूवन्द) और कंकण आं अनेक आभूषणों से समलंकृत हैं ।४९। यह देवी विविध वस्त्रों भूषणों से एवं मालाओं से विभूपित होकर सूर्य मण्डल में निवास कि करती है । इनके कर कमलों में वरदान, अभयदान, पद्मों का जो शंख, चक्र, गदा, अंकुश, शुभ्र कपाल, जयमाला शोभायमान हैं। वर देने वाली एवं बुद्धि की प्रेरणा करने वाली भगवती वेद माता गाय का स्मरण करना चाहिए ।५०-५१। आदित्य देव के मार्ग से गमन क वाली तथा अनेक अद्भुत मन्त्रों को जन्म देने वाली परब्रह्म स्वरू भगवती सरस्वती का स्मरण करना चाहिए ।५२।

त्रिपदा ऋचा मयी पूर्वामुखी ब्रह्मास्त्रसंक्षिका।
चतुर्विशतितत्त्वाख्या पातु प्राचीं दिशि मम ।५३
चतुष्पाद-यजुर्ब्रह्मदण्डाख्या पातु दक्षिणाम्।
षट्त्रिशत्तत्वसंयुक्ता सा पातु मे दक्षिणां दिशम् ।५४
प्रत्यङ्मुखी पञ्चपदी पञ्चाशत्तत्त्वरूपिणी।
पातु प्रतींचमनिशं सामब्रह्मशिरोऽकिता ।५५
सौम्या ब्रह्मस्वरूपाख्या आथर्वाङ्गिरसात्मिकाम्।
उदीचीं षट्पदा पातु चतुष्पष्टि कलात्मिक ।५६
पञ्चाशत्तत्वरचिता भवपादा शताक्षरी।
कामाख्या पातु मे चोर्ध्वा दिशं वेदाङ्गसस्थिता ।५७

पूर्व की ओर मुख रखने वाली, त्रिपाद ऋचा से समन्वित, ऋग्वेद स्वरूपा, चौबीस तत्वों से परिपूर्ण ब्रह्मास्त्र संज्ञिका भगवती पूर्व दिशा में हम सबकी रक्षा करे ।१२। चारों पादों वाली दक्षिण की ओर मुख रखने वाली यजुर्वेद स्वरूप छत्तीस तत्वोंसे संयुक्त ब्रह्मदण्डा संज्ञा वाली भगवती दक्षिण दिशा में हमारी रक्षा करें ।५। पश्चिम की ओर मुख किये हुए पादों वाल., पचास तत्वों से युक्त, साम स्वरूप वाली ब्रह्म शिर संज्ञिका भगवती पश्चिम दिशा में हम सबकी रक्षा करें ।५५। छः पादों वाली चौंसठ कलाओं से युक्त, अत्यन्त सुन्दर अथर्वागिरस स्वरूपा उत्तर की ओर मुख वाली ब्रह्म स्वरूप संज्ञिका भगवती उत्तर दिशा में हम सबकी रक्षा करें।५६। पचास तत्वों से समन्वित, ग्यारह चरणों वाली शताक्षरी जिनका निवास वेदागों में रहता हैं वह कामख्या भगवती ऊपर की ओर हमारी रक्षा करें ।५७।

विद्युन्निभा ब्रह्मसंज्ञा मृगारुष्ठा चतुर्भजा।
चापेषु-चर्मीऽस्थिरा पातु मे पावकी दिशम् ।५८
ब्राह्मी कुमारी गायत्री रक्ताङ्गी हंसवाहिनी।
विभ्रत्कमण्डल्वक्षःस्रक्स्रुवान् मे पातु नैर्ऋसयाम्।

चतुर्भुजा वेदमाता शुक्लांगी वृषवाहिनी ।
वराभय-कपालाक्ष-स्रग्विणी पातु वारुणीम् ।६०
श्यामा सरस्वती वृद्धावैष्णवी गरुडासना ।
शंखाराब्जाभयकरा पातु शैवीं दिशं मम ।६१
चतुर्भुजा वेदमाता गौरांगी सिंहवहिनी ।
वरा-ऽभया-ऽब्ज-युगलैर्भुजैः पात्वधरां दिशम् ।६२
तत्तत्पार्श्वस्थिता स्व स्ववाहनायुध भूषणां ।
स्व-स्वदिक्षु स्थिताः पान्तु ग्रहशक्त्तंयदेवताः ।६३
मन्त्राधिदेवतारूपा मुद्राधिष्ठानदेवताः ।
व्यापकत्वेन पात्वस्मानापहृत्तलमस्तकम् ।६४

मृग के ऊपर सवारी करने वाली विद्युत् के सदृश देदीप्यमान चार भुजाओं से युक्त, ढाल-तलवार, धनुष-बाण को धारण करने वाली ब्रह्म संज्ञिका भगवती आग्नेय कोण में हम सबकी रक्षा करे ।५८। हंस के ऊपर विराजमान, रक्त बर्ण से युक्त, कुमारी की अवस्था से युक्त ब्रह्म-शक्ति स्वरुपा भगवती गायत्री देवी नैॠत्य कोण में हमारी रक्षा करें ।५९। बैल के ऊपर सवारी करने वाली, शुक्ल वर्ण से समन्वित वर, अभय, कपाल और अक्षमाला को अपने करों में धारण करने वाली चार भुजाओं से युक्त वेद माता भगवती पश्चिम दिशा में हमारी रक्षा करें ।६०। शक्तियों में परम श्रेष्ठ श्यामा सरस्वती गरुड़ के आसन पर विराजमान पद्म, शंख असि, और अभयदान को धारण करती हुई वैष्णवी शक्ति ईशान कोण में हमारी रक्षा करें ।६१। सिंह के वाहन वाली, गौरवर्ण से युक्त, चार भुजाओं वाली वेद माता जिसके करों में कमलों का जोड़ा वर और अभय विद्यमान है ऐसी भगवती नीचे के ओर हमारी रक्षा करे ।६२। अपनी-अपनी दिशाओं में स्वामिनी के स्वरूप से विराजमान वहां की शक्तियां अपने-अपने प्रत्यधि देवता के सहित तथा स्वकीय वाहन, भूषणों और आयुधों से सुसज्जित होकर उन-उन दिशाओं में हमारी रक्षा करें ।६३। मन्त्रों के प्रत्यधि देवता के

स्वरूप वाले एवं मुद्रा के अधिष्ठान देवता अपने व्यापक रुप से चरण तलुवे से लेकर मस्तक तक हमारी रक्षा करें ।६४।

तत्पदं मे शिरः पातु भालं मे सवितुः पदम् ।
वरेण्यं मे दृशौ पातु श्रुतीं भर्गः सदा मम ।६५
घ्राणं देवस्य मे पातु पातु धीमहि मे मुखम् ।
जिह्वां मम धियः पान्तु कण्ठं मे पातु यः पदम् ।६६
नः पदं पातु मे स्कन्धौ भुजौ पातु प्रचोदयात् ।
करौ मे चरः पातु पादौ मे रजसेऽवतु ।६७
असौ मे हृदय पातु मम मध्यमाऽवतु ।
ॐ मे नाभि सदा पातु कटि मे पातु मे सदा ।
ओमापः सक्थिनी पातु गुह्यं ज्योतिः सदा मम ।६८
उरू मम रसः पातु जानुनी अमृतं मम ।
जंघे ब्रह्मपदं पातु गुल्फौ भूः पातु मे सदा ।६९
पादौ मम भुवः पातु सुःव पात्वखिल वपुः ।
रोमाणि मे महः पातु रोमक पातु मे जनः ।७०

'तत्' यह पद शिर की रक्षा करे । 'सवितुः, यह पद ललाट की रक्षा करे । 'वरेण्य—यह पद मेरे नेत्रों की रक्षा करे और 'भर्गं'—यह पद हमारे दोनों कानों की रक्षा करे ।६५। 'देवस्य'— यह पद मेरी नासिका की रक्षा करे । 'धीमहि'–यह पद मेरे मुख की रक्षा करे और 'धियः' यह पद मेरी जिह्वा की रक्षा करे तथा 'यः–यह पद हमारे कण्ठ देश की रक्षा करे ।६६। 'नः–यह पद दोनों कन्धों की रक्षा करे और 'प्रचोदयात्'–यह पद हमारी भुजाओं की रक्षा करे । 'परः'–यह पद हमारे हाथों की रक्षा करे और 'रजसे'–हम सबके चरणों की रक्षा करे ।६७। 'असौ'–यह पद हमारे हृदय को परित्राण करे, 'अद'–यह हमारे हृदय के मध्य भाग की रक्षा करे, 'ॐ'–हम सबकी नाभि की रक्षा करे तथा 'मे'–यह पद कटि भाग की रक्षा करे । 'ॐनमः'–यह पद साथियों की रक्षा करे और 'ज्योति' यह

पद हमारे गुप्त स्थलों का परित्राण करे ।६८। रस:—यह पद हमा ऊरुओं की एवं 'अमृत' यह पद जानुओं की रक्षा करे। 'ब्रह्म'—यह प जंघाओं की, भूः—यह पद हमारे गुल्फों की रक्षा करे ।६। 'भवः' य पद मेरे चरणों की रक्षा करे और 'स्वः' यह पद समस्त शरीर की रक्ष करे ।७०।

प्राणाश्च धातुतत्वानि तदींशः पातु मे तपः ।
सत्यं पातु मयायूंषि हंसी वृद्धि च पत्तु मे ।७१
शुचिसत् पातु मे शुक्रं वसुः पातु श्रिय मम ।
मति पात्वन्तरिक्षसद्धोता दानं च पातु मे ।७२
वेदिषत् पातु मे विद्यामभिथिः पात मे गृहम् ।
धर्मं दुरोणसत्पात नृषत्पातु सुतान् मम ।७३
वरसत्पात् मे भार्यामृतसत्पात मे सुतान् ।
व्योमसतु मे बन्धून् भ्रातृनब्जाश्च पातु मे ।७
पशून् मे पातु गोजाश्च ऋतजाः पात मे भवम् ।
सर्व मे अद्रिजाः पातु यान मे सात्वतं सदा ।७५
अनुक्तमथ यत् स्थानं शरीरेऽन्तर्बहिश्च यत् ।
तत्सर्वं पातु मे नित्य हंसः सो हमहर्निशम् ।७६

तपः'—यह पद प्राण, धातु, मुख तथा जीव की रक्षा करे 'सत्य'—पद हमारी आयू की, 'हंस'—यह पद हमारी बुद्धि की रक्ष करे ।७१। शचिषत्—यह पद हमारे शुक्र (वीर्य) की रक्षा करे 'वसु'—यह पद हमारी श्री की तथा ,अन्तरिक्ष' पद हमारी मति की रक्षा करे। एवं 'होता' यह हमारे दर्शनों की .करे ।७२। 'वेदिषत्' यह पद हमारी विद्या को एवं 'अतिथि'—यह पद हमारे गृह की रक्ष करे। दुरोणसत्—यह पद धर्म की, 'नृषत्'—यह पद हमारी सम्पत्ति की रक्षा करे ।७२। 'वरसत्—यह पद मेरी भार्या की रक्षा करे तथा 'ऋत सत्'—यह पद हमारे बालकों की रक्षा करे। 'व्योमसत्—यह पद हमारे बन्धु-बान्धवों की तथा 'अब्जा—यह पद हमारे सभी भाई बन्धुओं की

सुरक्षा करे ।७४। 'गोजा' यह पद हमारे सब पशुओं की रक्षा करे । और त्ऋतजा'—यह पद हमारे जन्म की रक्षा करे 'अद्रिजा'—यह हमारे सभी कुछ की रक्षा करे और 'ऋत' यह पद हमारी सवारी की सुरक्षा करे ।७५। अपने शरीर की सुरक्षा के वास्ते जिन स्थलों का नाम लिया गया है और जो भाग शरीर के अन्दर एवं बाहर जिनका नाम इस कथित कवच में नहीं कहा गया है उस सम्पूर्ण स्थलोंकी 'हंस' और 'सोऽहम्' ये दो पद रक्षा करें ।७६।

इदं तु कथितं सम्यङ्मया ते ब्रह्मपंजरम् ।
सन्ध्ययोः प्रत्यहं भक्त्या जपकाले विशेषतः ।७७
धारयेद् द्विजवर्यो यः श्रावयेद् वा समाहितः ।
स विष्णुः स शिवः सोऽहं स विराट् स्वराट् ।७८
शताक्षरात्मकं देव्यां नामाऽष्टविंशति शतम् ।
शृणु वक्ष्यामि तत्सवंमतिगुह्यं सनातनम् ।७९

ब्रह्माजी ने देवर्षि नारदजी से कहा—हे नारद ! यह ब्रह्म पंजर नाम वाला स्तोत्र हमने आपको बतलाया है । इस स्तोत्र की जो भी कोई विप्र दोनों सन्ध्याओं के जप के समय में भक्ति-भाव के साथ बड़ी सावधानी से पाठ किया करते हैं अथवा इसका किसी को भी श्रवण कराया करता है वह साक्षात् विष्णु-शिव और साक्षात् परब्रह्म, अक्षर और स्वयं विराट् स्वरूप बन जाया करता है ।७७-७८। देवीका शताक्षर मन्त्र और एक सो अठ्ठाईस नाम जो बहुत ही अधिक गोपनीय हैं और सनातन हैं हे नारद ! मैं आपको बतलाता हूँ उसे आप परम साव-धान होकर श्रवण कीजिए ।७९।

भूतिदा भुवना वाणी वसुधा सुमना मही ।
हरणी जननी नन्द सविसर्गा तपस्विनी ।८०
पवस्विनी सती त्यागा चैन्दवी सत्यवीरसा ।
विश्वा तुर्या परा रेच्या निघृणी यमिनी भवा ।८१
गोवेद्या च जरिष्ठा स्यन्दिनी धीर्मतिर्हिमा ।
भीषणा योगिनी पक्षी नदी प्रज्ञा च चोदिनी ।८२

घनिनी यामिनी पद्मा रोहिणी रमणी ऋषिः ।
सेनामुखी सामयी च बकुला दोषवर्जिता ।८३
सर्वकामदुघासोमोद्भवा-ऽहंकार-वर्जिता ।
द्विपदा च चतुष्पादा त्रिपादा चैव षट् पदा ।८४

भगवती के वे नाम निम्न प्रकार से हैं—भूतिदा, भुवना, वाणी, वसुधा, सुमना, यही हरिणी, जननी, नन्दा' सविसर्गा तपस्विनी, पयस्विनी, सती, त्याग, ऐन्दबी, सत्यवी रसा, विश्वा, तुर्या, परा, रेच्या, निर्घणी, यमिनी, भवा, गो वेद्या, जरिष्टा, स्कन्दिनी, धी, मति हिमा, भीषणा, योगिनी, पक्षी, नदी, प्रज्ञा, चोदिनी, घनिनी, यामिनी, पद्मा, रोहिणी, यामिनी, ऋपि सेनामुखी, सामयी, बकुला। दोषर्जिता, सर्व कामदुघा सोमोद्भवा, अहंकारवर्जिता, द्विपदा चतुष्पदा, त्रिपदा, षट्-पदा, अष्टापदी नवपदी सहस्राक्षरात्मिका ।७०।७१।७२।७३।७४।७५। ७६।७७।७८।७९।८०।८१। ८२ ८३।८४।

अष्टपदी नवपदी सा सहस्राक्षरात्मिका ।
इदं यः परकं गुह्यं सावित्रीमन्त्रपञ्जरम् ।८५
नामाष्टविशतिशतं शृणुयाछ्रावयेत् पठेत् ।
मर्त्यानाममृतत्वाय भीतानामभयाय च ।८६
मोक्षाय च मुमुक्षूणाँ श्रीकामानां श्रिये सदा ।
विजयाय युयुत्सूनां व्याधितानामरोगकृत् ।८७
बश्याय वश्यकामानां विद्यायै वेदकामिनाम् ।
द्रविणाय दरिद्राणां पापिनां पापशान्तये ।८८
वादिनां वादिविजये कवीनां कविताप्रदम् ।
अनान्य क्षुधितानां च स्वर्गाय नाकमिच्छताम् ।८९
पशुभ्य पशुकामानां पुत्रेभ्यः पुत्रकांक्षिणाम् ।
क्लेशिनां शोकशान्त्यर्थं नृणां शत्रुभयाय च ।९०
राजवश्याय द्रष्टव्यं पंजरं नृपसेविनाम्
भक्त्यर्थं विष्णुभक्तानां विष्णौ सर्वान्तरात्मनि ।९१

इन एक सौ अट्ठाईस नामों से संयुक्त सावित्री मन्त्र पंजर को जो मर रहे हों उनको अमर बनाने के लिये और जो भयभीत हों उनको निडर करनेके लिए इसका श्रवण करना तथा श्रवण कराना और पढ़ाना चाहिए ।८५।८६। यह मंत्र बहुत से मनोरथों को पूर्ण करने वाला है । जो मुक्ति की इच्छा वाले पुरुषहैं । उनको यह मोक्ष प्रदान किया करता है अतएव मोक्ष की इच्छा रखने वालों को और लक्ष्मी की प्राप्ति की लालसा रखने वालों को तथा युद्ध में विजय पाने की इच्छा रखने वालों को और व्याधियों से छुटकारा पाने वालों को इस मन्त्र को अवश्य ही पढ़ना तथा सुनना-सुनवाना चाहिए ।८७। किसी को अपने वशीभूत करने के वास्ते, विद्या की प्राप्ति चाहने वालों के लिए, दरिद्रता से ग्रसित व्यक्तियों को धन की प्राप्ति के लिये और पापियों को अपने किये हुए पापों की शान्ति के वास्ते इसको अवश्य ही पढ़ना चाहिए और श्रवण करना तथा श्रवण कराना चाहिए ।८८। शास्त्रार्थ की इच्छा रखने वालों को शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त करने के लिये कविगणों को कविता की रचना करने के वास्ते, बुभूक्षियों को भोजन पाने के वास्ते, स्वर्गमें वास-पाने की इच्छा वालों को स्वर्ग की प्राप्ति के लिये, इस मन्त्र को सुनना सुनाना तथा पढ़ना चाहिए ।८९। पशुओं की वृद्धि की इच्छा रखने वालों को पुत्र-प्राप्ति की चाहना रखने वालों को दुःखितों को दुःखों को दूर भगाने के लिए और अपने शत्रुओं के हृदय में भय उत्पन्न करने के लिये इसको अवश्य ही पढ़ना और सुनना सुनाना चाहिए ।९०। जो राजा के सेवक हैं उनको राजा को वश में करने के लिये विष्णु के भक्तों को सबके अन्तर्यामी भगवान् विष्णुदेव की अविचल भक्ति की प्राप्ति के लिये इस विष्णु पंजर एवं सावित्री पंजर को अवश्य ही सुनना-सुनाना और पढ़ना चाहिए । इससे सब कुछ निश्चय ही प्राप्त हो जाया करता है ।९१।

नायकं विधिभृष्टानां शान्तये भवति ध्रुवम् ।
निःस्पृहाणां नृणां मुक्तिः शाश्वती भवति ध्रुवम् ।९२

जप्यं त्रिवर्गसंयुक्त गृहस्थेन विशेषतः ।
मुनीनां ज्ञानसिद्धयार्थं यतीनां मोक्षसिद्धये ।९३
ऊद्यन्ते चन्द्रकिरणमुपष्थाय कृताञ्जलिः ।
कानने वा स्वभवने तिष्ठञ्छुद्धो जपेदिदम् ।९४
सर्वान् कामानवाप्नोति तथैव शिवसन्निधौ ।
मम प्रीतिकरं दिव्यं विष्णु भक्ति-विवर्द्धनम् ।९५
ज्वरार्तानां कुशाग्रेण मार्जयेत् कुष्ठरोगिणाम् ।
अङ्गमङ्ग यथालिङ्गं कवचेन तु साधकः ।९६
मण्डसेन विशुद्धयेत सर्वरोगेन संशयः ।
मृतप्रजा च या नारी जन्मवन्ध्या तथैव च ।९७
कन्यादि-वन्ध्या या नारी तासामङ्गं प्रमार्जयेत् ।
पुत्रा न रोगिणस्तास्तु लभन्ते दीर्घजीविनः ।९८
तास्ताः संवत्सरादर्वाग् गर्भं तु दधिरे पुनः ।
पति-विद्वेषिणी या स्त्रा अङ्गं तस्याः प्रमार्जयेत् ।९९
त्वमेव भजते सा स्त्री पति कामवशं सदा ।
अश्वत्थे राजवश्यार्थं विश्वमूले स्वरुपभाक् ।१००
पालाशमूले विद्यार्थी तेजसाभिमुखी रवी ।
कन्यार्थी चण्डिकागेहे जपेच्छत्रु भयाय च ।१०१

यह गृहस्थी मनुष्यों को परम शान्ति के करने वाला और काम क्रोधादि से निःस्पृह मुनिजनों को निश्चय रूप से मुक्ति को प्रदान करने वाला है ।९२। विशेष रूप से गृहस्थाश्रम में रहने वालों को तीनों वर्गों की प्राप्ति के वास्ते इसका जप अवश्य ही करना चाहिए । इस स्तोत्र के पाठ करने से यति-संन्यासियों को मोक्ष और मुनिगणों को ज्ञान की प्राप्ति हुआ करती है ।९३। चन्द्रमा की किरणों के समुदित होने पर सावित्री देवी का उपस्थान करते हुए दोनों करो को जोड़कर अपने घर में वन में अथवा शिवालयमें परम पवित्र होकर इस सावित्री

पंजर का पाठ करना चाहिए। इसके करने से मानवोंके समस्त मनोरथों की सिद्धि अवश्य हो जाया करती है। इसमें कुछ भी संशय नहीं हैं इस स्तोत्र से ब्रह्मा अर्थात् मैं और विष्णु दोनों ही परम प्रसन्न हुआ करते हैं।९४-९५। साधना करने वाला व्यक्ति इस कवच से कुशा के द्वारा किसी कोढ़ी और ज्वर-पीड़ित मनुष्य के अंगों पर मार्जन करे तो निश्चित रूप से रोगी को रोग से छुटकारा प्राप्त हो जाया करता है। जो स्त्री मृतवन्ध्या हो पर जिसके सन्तान उत्पन्न ही नहीं होती हो या जो सिर्फ कन्या ही को उत्पन्न करने वाली हो उनको जिनके पुत्र दीर्घ जीवी नहीं होते हैं उनकी इस मन्त्र से मार्जन करने पर दीर्घकाल पर्यन्त जीवित रहने वाले पुत्र हुआ करते हैं।९६।९७।९८। काकवन्ध्या आदि सभी तरह की स्त्रियां इस कवच से मार्जन किये जाने पर एक ही बर्ष के अन्दर गर्भ धारण कर दीर्घ जीवी पुत्र को जन्म दिया करती है। जिस पत्नी का पति अपनी पत्नि से प्रेमलाप न कर विद्वेष किया करता हो उस स्त्री के अङ्गों पर इसके द्वारा मार्जन करने पर उसका कामातुर होकर अपनी पत्नी से प्रेम करने लगता है। राजा को अपने वश में करने के लिये पीपल के नीचे-रूप लाभ या पाने के वास्ते, विल्व के वृक्ष के नीचे-विद्या की प्राप्ति के लिये पलाश वृक्षके नीचे तेजो विशेष के लाभ के लिये सूर्यदेव के सामने—कन्या की प्राप्ति तथा शत्रु के हृदय में भय उत्पन्न करने के लिये काली के मन्दिर में इसका पाठ करना चाहिए।९९।१००।१०१।

श्रीकामो विष्णुगेहे च उद्याने श्रीवंशी भवेत्।
आरोग्यार्थे स्वगेहे च मोक्षार्थी शैलमस्तके।१०२
सर्वकामो विष्णुगेहे मोक्षार्थी यत्र कुत्रचित्।
जपारम्भे तु हृदयं जपान्ते कवच पठेत्।१०३
किमत्र वहुनोक्तेन शृणु नारद ! तत्वतः।
यं यं चिन्तयते नित्यं तं तं प्राप्नोति निश्चितम्।१०४

लक्ष्मी की प्राप्ति करने के लिये भगवान् के मन्दिर में शोभा
प्राप्ति के लिये किसी उद्यान में आरोग्य के लिये अपने घर में मोक्ष पा
के लिये पर्वत की शिखर पर इसका पाठ करना चाहिए ।१०२। सर्व
प्रकार की कामनाओं की प्राप्ति के लिये विष्णु भगवान् के मन्दिर
इसका पाठ करे जो मोक्ष की ही कामना रखता है उसको जहां-जह
पर भी इस स्तोत्र का पाठ कर सकता है। साधन को जप के आरम्भ
काल में गायत्री-हृदय और जप के अन्त में गायत्री कवच का पा
अवश्य ही करे ऐसा विधान है।१०३। हे नारद ! इस विषय में अधि
कहने से क्या प्रयोजन है, सत्य बात तो यह है कि मनुष्य जो-जो
कामना किया करता है वे सभी इस गायत्री पंजर के पाठ से प्राप्त
जाया करती हैं। इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है ।१०४।

—*—

गायत्री हृदयम्

ॐ अस्य श्रीगायत्रीहृदयस्य नारयण-ऋषिः, गायत्रीच्छन्द
परमेश्वरी गायत्री देवताः गायत्रीहृदयजपे विनियोगः।

द्यौर्मूर्ध्नि दंवतम्। दन्तपङ्क्तावश्विनौ। उभे सन्ध्ये चोष्ठ
मुखमग्निः। जिह्वा सरस्वती। ग्रीवायां तु वृहस्पतिः। स्तन
वंवसवोऽष्टौ। बाह्वोर्मरुतः। हृदये पर्जन्यः। आकाशमुदर
नाभावन्तरिक्षम्। कट्योदिन्द्राग्नी। जघने विज्ञानधनः प्र
पति। कैलाशमलये उरः। विश्वेदेवा जान्वोः। जंघायां कौशि
गुह्यमयने। ऊरू पितरः। पादौ पृथ्वी। वनस्पतयोऽङ्गुलि
ऋषयो रोमाणि। नखानि मुहूर्त्तानि। अस्थिषु ग्रहाः। अ
मांसम् ऋतवः। संवत्सरा वै निमिषम्। अहोरात्रावादित्
चन्द्रमाः। प्रवरां दिव्यां गायत्रीं सहस्रनेत्रां शरणमहं प्रपद्य

ॐ इस गायत्री हृदय का नारायण ऋषि है। इसका छन्द गायत्री है। परमेश्वरी गायत्री देवता है गायत्री हृदय के जप में विनियोग है।

मस्तक में द्यौ देवता हैं, दन्तों की पंक्ति में दोनों अश्विनी कुमार हैं, दोनों संध्यायें ओष्ठ हैं, मुख अग्नि हैं, सरस्वती देवी जिह्वा हैं, ग्रीवा में वृहस्पति विराजमान है, बाहुओं में मरुद्गण है, हृदय में पर्जन्य हैं, आकाश ही उदर है, नाभि में अन्तरिक्ष है, कटियों में इन्द्रदेव और अग्नि है। जघन में विज्ञानघन प्रजापति है। कैलास मलय में उर है। जानुओं में विश्वेदेवा है। जंघाओं में कौशिक है। अपने में गुह्य है। ऊरू पितर है। पाद पृथ्वी है। अंगुलियाँ वनस्पतियाँ हैं। रोम ऋषिगण है। मुहूर्त नख हैं। अस्थियों में ग्रह हैं। रुधिर और मास ऋतुयें है। निमिष सम्वत्सर हैं। आदित्य और चन्द्र अहोरात्र हैं। ऐसी प्रवर और दिव्य गायत्री देवी की जिसके एक सहस्र नेत्र हैं मैं शरणागति में प्रपन्न होता हूँ।

ॐ तत्सवितु र्वरेण्याय नमः। ॐ तत्पूर्वा जयाय नमः तत्प्रातरादित्याय नमः। तत्प्रातरादित्यप्रतिष्ठायै नमः।

प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पाप नाशयति। सायमधीयानो दिवसकृत पापं नाशयति। सायं-प्रातरधीयानोऽपापो भवति। सर्वतीर्थेषु स्नातो भवति। सर्वेर्देवैर्ज्ञातो भवति। अवाच्यवचनात पूतो भवति। अभक्ष्य-भक्षणात् पूतो भवति। अभोज्य-भोजनात् पूतो भवति। अचोष्य-चोषणात् पूतो भवति। असाध्य-साधनात् पूतो भवति। दुष्प्रतिग्रह-शतसहस्रात् भवति। सर्वप्रतिग्रहात् पूतो भवति। पंक्तिदूषणात् पूतो भवति। अनृतवचनात् पूतो भवति। अथाऽब्रह्मचारी ब्रह्मचारी भवति। अनेन हृदयेनाऽधीतेन ऋतुसहस्रेणेष्टं भवति। षष्टिसतसहस्रगायत्र्या जाप्यानि फलानि भवन्ति। अष्टौ ब्राह्मणान् सम्यगग्राहयेत्। तस्य सिद्धिर्भवति।

य इदं नित्यमधीयानो ब्राह्मणः प्रातः शुचिः सर्वपापैः

प्रमुच्यते, इति ब्रह्मलोके महीयते। इत्याह भगवान् श्रीनारायणः।

ॐ तत्सवितुर्वरेण्य के लिए नमस्कार है ॐ तत्सपूर्वा जप के लिए नमस्कार है। तत्प्रात: आदित्य के लिए नमस्कार है। तत्प्रात: आदित्य प्रतिष्ठा के लिए नमस्कार है।

प्रात:काल इसका पाठ करने वाला व्यक्ति रात्रि में किए हुए पाप का नाश कर दिया करता है। सायंकाल इसका अध्ययन करने वाला दिन में किये हुए पाप का विनाश कर देता है। सायंकाल और प्रात:काल में अध्ययन करने वाला निष्पाप हो जाता है। वह सभी तीर्थों में स्नान करने वाला हो जाया करता है समस्त वेदों का ज्ञान हो जाता है। जो नहीं करना चाहिए ऐसे वचनों के कहने से पवित्र हो जाता है अर्थात् अवाच्य वचनों के दोष से छूट जाया करता है। अभक्ष्य वस्तुओं के भक्षण करने से पवित्र हो जाया करता है जो चूसने के अयोग्य वस्तुओं के पोषण करने के दोष से भी पवित्र हो जाता है। असाध्य की साधना करने से पवित्र हो जाता है। जिसका प्रतिग्रह लेना दूषित होताहै उसके ग्रहण करने से जो सैकड़ों और हजारों ही भले होवें, मनुष्य शुद्ध हो जाता है। सभी प्रकार के प्रतिग्रही से पवित्र हो जाता है। जो पंक्ति में न बैठने के दोष से भी पवित्र हो जाता है। मिथ्या वचन के कथन के दोष से भी शुद्ध हो जाता है। जो अब्रह्मचारी अर्थात् ब्रह्मचर्य व्रत से रहित है वह ब्रह्मचारी हो जाता है। इस गायत्री हृदय के अध्ययन करने से एक सहस्र ऋतुओं के इष्ट के समान फल होता है। छियासठ सहस्र गायत्री मन्त्र के जप के फल प्राप्त होते हैं। इस गायत्री हृदय को भली भाँति आठ ब्राह्मणों को ग्रहण कराने से सिद्धि हुआ करती है। जो ब्राह्मण नित्य ही इसका अध्ययन किया करता हैं और प्रात:काल शुचि होता है तथा सब पापों से प्रमुक्त हो जाया करता हैं। वह ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होता है—यह भगवान् साक्षात् नारायण ने कहा है।

गायत्री तत्वम्

ॐ श्रीगायत्रीतत्वमालामन्त्रस्य विश्वामित्र ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, परमात्मा देवता, हलो बीजानि, स्वराः शक्तयः अव्यक्तं कीलकम्, मम समस्तपापक्षयार्थे गायत्रीतत्वपाठे विनियोगः ।

चतुर्विंशतितत्वानां यदेकं तत्वमुत्तमम् ।
अनुपाधि परं ब्रह्म तत्परं ज्योतिरोमिति ।।१
यो वेदादौ स्वराः प्रोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः ।
तस्य प्रकृतिलीनस्य तत्परं ज्योतिरोमिति ।।२
तत्सदादिपदैर्वाच्यं परमं पदमव्ययम् ।
अभेदत्वं पदार्थस्य तत्परं ज्योतिरोमिति ।।३
यस्य मायांशभागेन जगदुत्पद्यतेऽखिलं ।
तस्य सर्वोत्तमं रूपमरूपस्यापिधीमहि ।।४
यं न पश्यन्ति परमं पश्यन्तोऽपि दिवौकसः ।
तं भूतानिलदेवं तु सुपर्णमुपधावताम् ।।५
यदंशः प्रेरितो जन्तुः कर्मपाशनियन्त्रितः ।
आजन्मकृतपापानामहन्तुं दिवौकसः ।।६
इदं महानुनिप्रोक्तं गायत्रीतत्वमुत्तमम् ।
यः पठेत् परया भक्त्या स याति परमां गतिम् ।।७
सर्ववेदपुराणेषु साङ्गोपाङ्गेषु यत्फलम् ।
सकृदस्य जपादेव तत्फलं प्राप्नुयान्नरः ।।८

इस श्री गायत्री तत्व माला मन्त्र का विश्वामित्र ऋषि हैं,अनुष्टुप् छन्द है, परमात्मा देवता हैं, हल अर्थात् व्यंजन बीज है, स्वर शक्तियाँ हैं, अव्यक्त कीलक है, मेरे समस्त पापों क्षय के लिए गायत्री तत्व पाठ में विनियोग है। जो चौवीस तत्वों में एक उत्तम तत्व है, यह अनुपाधि अर्थात् उपाधियों से रहित परब्रह्म है और उससे पर

ज्योति ॐ हैं ।१। जो वेदों के अर्थ में स्वर कहा गया हैं और वे वेदान्त में प्रतिष्ठित है प्रकृति में लीन उसका तत्पर ज्योति ॐ है ।२। वह तत् और सत् और पदों के द्वारा वाच्य होता है। वह पर और अव्यय पद है। पदार्थ का अभेदक होना तत्पर होना ज्योति ॐ पद है ।३। जिसकी माला के अंश भाग से यह सम्पूर्ण जगत् समुत्पन्न होता हैं उस रूप से निहित का सर्वोत्तम रूप है। उसका हम ध्यान करते हैं ।४। देवगण भी जिस परम को देखने की चेष्टा करते हुए भी नहीं देखा करते हैं, उस भूतों के अनिल देव सुपर्ण का उपाधान करे।५। जिसका अंश रूप प्रेरित जन्तु कर्मों के पाश से नियन्त्रित अर्थात् जकड़ा हुआ है देवगण जन्म से आरम्भ करके किये हुए पापों का हनन करने के लिए गायत्री तत्व महामुनि के द्वारा वर्णित किया गया है। जो मनुष्य इसका परमाधिक भक्ति से पाठ किया करता है, उसको परम गति प्राप्त हुआ करती है ।६-७। अंगों-उपागों के सहित समस्त वेदों और पुराणों के पाठ करने से जो पुण्य फल प्राप्त होता है, वही फल मनुष्य इसका एकबार ही जप करने से प्राप्त कर लिया करता है।

अभक्ष्य भक्षणात् पूतो भवति। अगम्यगमनान् पूतो भवति। सर्वपापेभ्यः पूतो भवति। प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। मध्यन्दिन मुपयुञ्जानोऽपत्प्रतिग्रहादिना मुक्तो भवति। अनुप्लव पुरुष पुरुषमभिवन्दन्ति। यं यं काममभिध्यायति तं तमेवाप्नोति पुत्र पौत्रान् कीर्तिसौभाग्यांश्चोपलभते। सर्वभूतात्ममित्रो देहान्ते तद्वि शिष्ठो गायत्रीपरम पदमवाप्नोति।

इसके जप से जो अभक्ष्य का भक्षण करता हैं, उसके पाप से पवित्र हो जाता है अर्थात् उसके पाप से छुटकारा हो जाता है। जो गमन न करने के योग्य स्त्री है, उसके गमन करने से भी पाप से शुद्ध हो जाता हैं और सभी प्रकार के पापों से छुटकारा पाकर शुद्ध हो जाया करता है। प्रातःकाल में इसका अध्ययन करने वाला निशा में किये

हुए पापों का नाश कर दिया करता है। सायंकाल में इसका पाठ करके दिन में किये हुए पापों का विनाश कर देता है। दिन के मध्यकाल में इसका पाठ करके अप्रतिग्रह आदि के दोष से मुक्त हो जाता है। पुरुष अनुपप्लव पुरुष को अभिवन्दना किया करते हैं। इसके पाठ करने वाला जिस-जिस कामना की इच्छा करता है उसी-उसी की प्राप्ति कर लिया करता है और पुत्र-पौत्रों, कीर्ति और सौभाग्यों का ज्ञान प्राप्त किया करता हैं सब भूतों की आत्मा का मित्र देह के अन्त में उससे विशिष्ट होकर गायत्री के परम पद को प्राप्त किया करता है।

गायत्री अष्टकम्

सुकल्याणीं वाणीं सुरमुनिवरः पूजितपदाम्।
शिवामाद्यां वन्द्यां त्रिभुवनमयी वेदजननीम्॥
परां शक्ति स्रष्टुं विविध विध रूपां गुणमयीम्।
भजेऽम्वां गायत्रीं परममृतमानन्द जननीम्॥१

विशुद्धां सत्वस्थामखिल दुःख दोर्षातसरणीम्।
निराकारां सारां सुविमलं तपा मूर्तिमयुलाम्।
जगज्ज्येष्ठां श्रेष्ठां गुरमसुरपूज्यां श्रुतिनुताम्।
भजेऽम्बां गायत्रीं परमभृतमानन्द जननीम्॥२

द्वयामूर्ति स्फूर्ति चिति तति प्रसादैक सुलभाम्।
वरेण्यां पुण्याँ तां निखिल भव बन्धापहरणीम्॥
भजेऽम्बाँ गायत्री परमभृतमानन्दजननीम्॥३

सदाराध्यां सांध्या सुमति मति विस्तार करणीम्।
विशोकामाली कां हृदयगत मोहान्ध हरणीम्॥
परां दिव्यां भव्यामगम भव सिन्ध्वेक तरणीम्।
भजेऽम्वां गायत्रीं परमृतमानन्दजननीम्॥४

सुन्दर कल्याण करने वाली देव, मुनिश्रेष्ठों के द्वारा समर्चित पदों वाली शिव अर्थात् मंगलमयी, आद्या, वाणी, वन्दना करने के योग्य

त्रिभुवनमयी, वेदों के जनन करने वाली माता, अनेक प्रकार के रूपों वाली और गुणों से परिपूर्ण पराशक्ति का सृजन कराने वाली, परम अमृत स्वरूपा, आनन्द की उत्पत्ति करने वाली अम्बा गायत्री का मैं सेवन करता हूँ अर्थात् भजन करता हूँ ।१। सत्व में स्थित, परम विशुद्ध सम्पूर्ण दुःखों और दोषों का निर्हरण करने वाली निराकार अर्थात्, सर्वत्र व्यापक, सारवाली, सुविमल तप की मूर्ति, अनुपम जगत में सर्वोपरि विराजमान, परम श्रेष्ठ सुर और असुरों के द्वारा पूज्य मुनियों द्वारा प्रेरित ऐसी परम अमृत और आनन्द की जननी अम्बा गायत्री का मैं सेवन करता हूँ ।२। दया की मूर्ति अर्थात् परम दयालुता से परिपूर्ण स्फुरण शीला एवं स्फूर्ति मती, प्रगतियों की निरन्तर पंक्तियों के द्वारा प्रसन्नता से होने से ही परम सुलभ होने वाली, परम श्रेष्ठ पुण्य रूपा समस्त प्रकार के सांसारिक बन्धनों देवी का जो परम अमृतानन्द के जनन वरने वाली है मैं सेवन करता हूँ अर्थात् आराधना करने वाला हूँ ।३। सर्वत्र आराधना करने के योग्य, साधना करने के लायक सुन्दर मति के विस्तार करने वाली, विगतशोक वाली, अपने तेज के प्रकाश से मोह रूपी अन्धकार के हरण वाली, दिव्या और अतिव्यापी अर्थात् उत्तमा, इस अपार संसार रूपी सागर से पार करने के लिये नौका स्वरूपा, परमा अमृतानन्द की जननी माता गायत्री का मैं भजन करता करता हूँ ।४।

अजांद्वैतां त्रेतां त्रिविध गुणरूपां सुविमलाम् ।
तमो हन्त्रीं तन्त्रीं श्रुति मधुरनादां रसमयीम् ।।
महामान्यां धन्यां सततकरुणाशील विभवाम् ।
भजेऽम्बाँ गायत्री परम मृतमानन्दजननीम् ।।५
जगद्धात्रीं पात्रीं सकल भव संहार करणीम् ।
सुवीरां धीरां तां सुविमलतमो राशि संरणिम् ।।
अनेकानेकां वै त्रयजगदधिष्ठानपदवीम् ।
भजेऽम्बां गायत्रीं परममृतमानन्दजननीम् ।।६

जन्म से रहित अर्थात् नित्य स्वरूपा, द्वैतरूपा, त्रैता, तीन प्रकार के गुणों रूपवाली, सुविमला, तम के हनन करने वाली, तन्त्री श्रुति के मधुर नाद से पूर्ण, रसमयी अर्थात् रस से परिपूर्ण, सर्वोत्कृष्ट रूप से मानने के योग्य, परम धन्या, सर्वदा करुणा के स्वभाव के वैभव वाली अर्थात् निरन्तर दयालुता से भरी हुई ऐसी परमामृत आनन्द को जन्म देने वाली अम्बा गायत्री का मैं सेवन करता हूँ ।५। सम्पूर्ण जगत का पालन करने वाली, पात्री, सम्पूर्ण संसार के संहार करने वाली, सुवीरा, परमधीरा, सुविमल तपश्चर्या के समुदाय की पद्धति, अनेक रूपा, एक स्वरूपा और तीनों लोकों के अधिष्ठान की पदवी, उस पर अमृतानन्द की जननी माता गायत्री की मैं आराधना करता हूँ ।६।

प्रबुद्धां वृद्धां तां स्वजनमति जाड्यापहरणीम् ।
हिरण्यां गुण्यां तां सुकविजन गीतां सुनिपुणाम् ।
सुविद्यां निववद्यामकथ गुण गाथां भगवतीम् ।।७
अनन्तां शान्तां यां भजित बुध वृन्दां श्रुतिमयीम् ।
सुगेयां ध्येयां यां स्मरति हृदि नित्यं सुरपतिः ।।
सदा भक्त्या शक्त्या प्रणति ततिभिः प्रीतवशग ।
भजेऽम्बां गायत्रीं परम मृतमानन्दजननीम् ।।८
शुद्ध चित्तः पठेद्यस्तु गायत्री अष्टकं शुभम् ।
अहो भाग्य भवेल्लोके तस्य माता प्रसीदति ।।९

परम प्रबुद्धा अर्थात् प्रकृष्ट ज्ञान से परिपूर्णा, वृद्धा, अपने भक्तों पर अनुग्रह करने वाली,जड़ता का अपहरण करने वाली,हिरण्यरूपा,गुणगणसे समन्विता, अच्छे कवियों के द्वारा गान की हुई, परम निपुणा, सुन्दर विद्या वाली समस्त दोषों से रहिता, अकथनीय गुणों की गाथा वाली भगवती, परम अमृत स्वरूपा आनन्द को उत्पन्न करने वाली अम्बा गायघी की मैं आराधना करता हूँ ।७। अनन्त स्वरूप वाली परम शान्ति-मयी बुधों के ससुदाय के द्वारा समाराधिता श्रुति से परिपूर्णा जो

सुगेता है और जिसका सुरपति नित्य ही अपने हृदय में स्मरण किया करता है सद्य भक्तिभाव से शक्ति पूर्वक प्रणतियों के द्वारा प्रसन्नता से वश में आने वाली है उस परम अमृत रूपा आनन्द को जन्म देने वाली माता गायत्री का मैं सेवन करता हूँ ।८। जो मनुष्य विशुद्ध अन्तःकरण से इस परम शुभ गायत्री माता के अष्टक का पाठ किया करता है, वह संसार में परम भाग्यशाली होता है और उस पर माता प्रसन्न हो जाती है ।९।

—❀—

गायत्री स्तवनम्

यन्मण्डलं दीप्तकरं विशालं, रत्नप्रभम् तीव्रमनादिरूपम् ।
दारिद्रय दुःख क्षय कारणं च, पुनातु मांतत्सवितुर्वरेण्यं ।।१
यन्मण्डलं देवगणैः सुपूजितम्, विप्रैस्तुतं मानवमुक्ति कोविदम् ।
त देव देवं प्रणमामि भर्ग, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यं ।।२
यन्मण्डलं ज्ञान घनत्व ःम्यं, त्रैलोक्यं पूज्यं त्रिगुणात्मरूपं ।
समस्त तेजो मय दिव्यं रूपं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यं ।।३
यन्मण्डलं गूढ़यति प्रवोधम् धर्मस्य बुद्धि कुरुते जनानाम् ।
तत्सर्वं पाप क्षय कारण च, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यं ।।४

जिसका मण्डल अर्थात् वर्तुलाकार तेजोवृत्त दीप्त अर्थात् कान्ति को करने वाला है परम विशाल हैं, रत्नों की देदीप्यमान प्रभा के सदृश प्रभा वाला है, अत्यन्त तीव्र तथा अनादि स्वरूप वाला है और दरिद्रता से होने वाले दुःख के क्षय का कारण है वह 'तत्सवितुर्वरेण्यं' मुझे पवित्र कर देवे । वह सविता का परम श्रेष्ठ तेज है ।१। जिस मण्डल की देव गणों द्वारा भली भाँति पूजा की गई है, जिसका विप्रो के द्वारा स्तवन किया गया है तथा जो मानवों की मुक्ति अर्थात् बारम्बार संसार में जन्म-मरण के आवागमन से छुटकारा दिलाने में परम पण्डित अर्थात् समर्थ है उन देवों के भी देव भर्ग को मैं प्रणाम करता हूँ, मेरी 'तत्सवितुर्वरेण्यं' पवित्रता करे । तात्पर्य यही है कि वह सविता का

श्रेष्ठ तेज सब पापों से विमुक्त कर पवित्र बना देवे ।२। जिसका मण्डल अथवा जो गायत्रीं का वर्तुलाकार आकार वाला तेजोवृत्त घनीभूत ज्ञान के द्वारा जानने के योग्य है, जो तीनों लोकों के द्वारा पूज्य है और त्रिगुणात्म रूप वाला है सम्पूर्ण तेज से परिपूर्ण दिव्य अर्थात् अच्युतम रूप से युक्त है वह तत्सवितुर्वरेण्यं मुझे पवित्र कर देवे ।३। जिसका मण्डल प्रकृष्ट ज्ञान को गूढ़ कर देता है, जो मानवों के हृदय में धर्म को बुद्धि समुत्पन्न करता है और वह समस्त प्रकार के घोरातिघोर पापों के क्षय (विनाश) करने वाला कारण है वह सविता का वरेण्य तेज मुझे पवित्र करे ।४।

यन्मण्डलं व्याधि विनाशदक्षम्, यद्दग् यजुः सामसु सम्प्रगीतम् ।
प्रकाशितं येन च भुर्भुवः स्वः पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यं ।।५
यन्मण्डलं वेदविदो वदन्ति, गायन्ति यच्चारण सिद्ध सघाः ।
यद्योगिनो योगजुषांच संघाः, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यं ।।६
यन्मण्डलं सर्व जनेषु पूजितम् ज्योतिश्च कुर्यादिह मर्त्यलोके ।
यत्कालं कालाद्मिनादि रूपं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यं ।।७
यन्मण्डलं विष्णु चतुर्मुखास्यम् यदक्षरं पाप हरं जनानाम् ।
यत्काल कल्पक्षयं कारणं च पुनातु माँ तत्सवितुर्वरेण्यं ।।८

जो मण्डल व्याधियों के विशेष रूप नाश कर देने के कार्य में दक्ष अर्थात् परम प्रवीण एवं समर्थ है, जिसका वेद त्रयी (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद) में भली-भाँति गान किया है अर्थात् इनको प्रकाश में लाकर रक्खा है तत्सवितुर्वरेण्यं मुझे पवित्र करे ।५। जिस मण्डल को वेदों के तत्वार्थ के विज्ञाता मनीषीगण जानते हैं, जिस मण्डल के स्तवन का चारण और सिद्धों के समुदाय गायन किया करते हैं, जिसका ज्ञान पूर्वक गान योगीगण और योग के सेवन करने वाले समूह किया करते है वह सविता का वरेण्यं तेज मुझको पवित्र करे ।६। जो मण्डल सभी जनों के द्वारा पूजित हैं, जो इस मृत्युलोक में ज्योति कर देता है, जो काल से

भी अनादि हैं, जिसका रूप भी ऐसा है जिसका आदि काल ही नहीं है वह सविता का वरेण्य तेज मुझे शुद्ध एवं पवित्र करे ।७। जो मण्डल भगवान् विष्णु और चतुर्मुख ब्रह्मा का आस्य अर्थात् मुख है जो नाश रहित, जो जन समुदाय के पापों का हरण करने वाला है जो काल और कल्पों के क्षय कर देने का कारण स्वरूप हैं वह तत्सवितुर्वरेण्यं मुझे पवित्र करे ।८।

यन्मण्डलं विश्वसूजां प्रसिद्धम उत्पत्तिरक्षा प्रलय प्रगल्भम् ।
यस्मिन् जगत् संहरतेऽखिलं च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ।।६

यन्मण्डलं सर्वं गतस्य विष्णोः आत्मा परं धाम विशुद्ध तत्वम् ।
सूक्ष्मा तरैर्योगपथानु गम्यम् पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ।।१०
यन्मण्डलं ब्रह्मविदो वदन्ति गायन्ति यच्चारण सिद्धसंघा ।
यन्मण्डलं वेदविदः स्मरन्ति पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ।।११
यन्मण्डलं वेद विदोपगीतं यद्योगिनां योग पथानुगम्यम् ।
तत्सर्वंवेद प्रणमामि दिव्यं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ।।१२

जो मण्डल विश्व के सृजन करने वालों में प्रसिद्ध हैं और विश्व की उत्पत्ति, संरक्षण और प्रलय करने में समर्थ हैं तथा जिसमें यह समस्त जगत संहार को प्राप्त होता है वह सविता देव का वरेण्य तेज मुझे पवित्र करे ।६। जो वर्तुलाकार तेजोवृत सबमें व्याप्त भगवान् विष्णु की आत्मा है, परमधाम है और विशुद्ध तत्व हैं, परम सूक्ष्म स्वरूप एवं योग के मार्ग के द्वारा अनुगम्य अर्थात् गमन करने के योग्यहै वह 'तत्सवितुर्वरेण्यं' मुझको पुनीत करे ।१०। जिस मण्डल को वेदों के ज्ञाता विद्वान् जानते हैं और चारण तथा सिद्ध गण जिसका गान किया करते हैं, जिस मण्डल का स्मरण वेदों के तत्वार्थ ज्ञाता किया करते हैं वह सविता का परम श्रेष्ठ तेज मुझे पवित्र करे ।२१। जो मण्डल वेद वेत्ताओं के द्वारा उपगीत है अर्थात् जिसका ज्ञान किया गया है और जो योगियों के योग भाग के द्वारा अनुगमन करने के योग्य है उस समस्त

वेदों के स्वरूप वाले एवं परम दिव्य तेज को मैं प्रणाम करता हूँ वह 'तत्सवितुर्वरेण्यं' मुझे पवित्र करे ।१२।

—❀—

गायत्रीनीराजनम्

जय देवि जय देवि, वन्दे गायत्रीं वन्दे गायत्रीम्
त्वञ्चाऽस्मान् संसारात् (२) ह्युद्धर सावित्रि ।
जय देवि जय देवि, वन्दे गायत्रीं वन्दे गायत्रीम् ।।१
जननि त्वं गायत्र्याः सावित्र्या रूपम् (२)
त्वं च सरस्वतिरूपं (२) धत्से बहुरूपम् ।
जय देवि जय देवि, वन्दे गायत्रीं वन्दे गायत्रीम् ।।२
त्रिपदां त्रिदशैः, सर्वैर्नित्यार्चितचरणाम् (२)
त्रिगुणातीतां वन्दे (२) भवसागरपोताम् ।
जय देवि जय देवि, वन्दे गायत्रीं वन्दे गायत्रीम् ।।३
नित्यं द्विजकुलवृन्दैः प्रातर्मध्याह्ने (२)
सायं ध्यानासक्तै (२) रघ्यैः कृतपूजाम् ।
जय देवि जय देवि, वन्दे गायत्रीं वन्दे गायत्रीम् ।।४
मुक्ता-विद्रुम हाटक नील श्वेतमुखाम् (२)
आसन सित पद्मस्था (२) पदमासनबद्धाम् ।
जय देवि जय देवि, वन्दे गायत्रीं वन्दे गायत्रीम् ।।५
पञ्चमुखी त्वां वन्दे देवी गायत्रीम् (२)
शशधर शेखरबद्धां (२) नयनत्रययुक्ताम् ।
जय देवि जय देवि, वन्दे गायत्रीम् ।।६
व्याहृत्यादिर्मातिर ह्यास्ते तव मन्त्रः (२)
पूर्वंचतुष्पदयुक्तः (२) विंशतिवर्णयुतः ।
जय देवि जय देवि, वन्दे गायत्रीं वन्दे गायत्रीम् ।।७

स्तवनं ते प्रतिमन्त्रं विहितं वेदार्थे (२)
यो यद् ध्यायति मनसा (२) तत्पूर्णं कुरुषे।
जय देवि जय देवि, वन्दे गायत्रीं वन्दे गायत्रीम् ॥८
वरदं ह्यभयं धत्से जननि ह्यकंशकम् (२)
कशां कपालं रज्जुं (२) कमलद्वयमपि शम्।
जय देवि जय देवि, वन्दे गायत्रीं वन्दे गायत्रीम् ॥९
भगवति ते सौन्दर्यं ह्युपमासतीतम् (२)
त्वच्चरणाम्बुजयुग्म (२) नमामि वहुबारम्।
जय देवि जय देवि, वन्दे गायत्रीं वन्दे गायत्रीम् ॥१०
घृतपूर्णेतैस्ते ज्योतिर्मयदीपै (२)
आरार्तिक्यं कुर्वे (२) शिरसप्त्वाचरणम्।
जय देवि जय देवि, वन्दे गायत्रीं वन्दे गायत्रीम् ॥११

हे देवि ! गायत्री ! आपकी जय हो-जय हो। मैं गायत्री की वन्दना करता हूँ। हे सावित्री ! आप हमको इस घोर संसार से उद्धार वाला बना दो। हे जननि ! आप गायत्री और सावित्री के स्वरूप वाली हैं। आप सरस्वती के रूप वाली हैं और आप वहुत से स्वरूप धारण किया करती हैं। आप तीन पदों वाली और देवगण सभी आपके चरणों की अर्चना किया करते हैं। आप तीन गुणों से परें हैं। मैं आपकी वन्दना करता हूँ। आप इस संसार रूपी सागर के लिए पोत स्वरूपा हैं। आपका प्रातः मध्याह्न और सायंकाल में नित्य ही द्विज-गण ध्यान में आसक्त होकर अर्घ्यों द्वारा पूजा किया करते हैं—आप मुक्ता, विद्रुम, सुवर्ण, नीलम और श्वेत मुख वाली, श्वेत कमल के आसन पर विराजमान, पद्मासन से संस्थित, पाँच मुखों वाली गायत्री देवी आपकी मैं बन्दना करता हूँ। चन्द्रमा को शेखर में बाँधे हुई, तीन नेत्रों से युक्त गायत्री देवी की वन्दना करता हूँ। हे माता ! व्याहृतियाँ जिसके आदि में है ऐसा आपका मन्त्र है। पूर्व में चार वर्ण जिसके है ऐसा बीस वर्णों वाला अर्थात् चौबीस अक्षरों का आपका मन्त्र है।

वेदों के अर्थं में प्रत्येक मन्त्र में आपकी स्तुति विद्यमान है। जो भी मन में उसका भी ध्यान करता हैं उसका काम पूर्ण किया करती है। हे जननि ! आप अपने करों में वरदान, अभयदान, अंकुश, कुशा, कपाल रज्जु और दो कमलों का जोड़ा धारण कर रही हैं। हे भगवति ! आपका ऐसा अनुपम सौन्दर्य है जिसकी कोई भी उपमा नहीं है। आपके चरण कमलों के जोड़े को वारस्वार नमस्कार करता हूँ। घृत से परिपूर्ण ज्योतिर्मय दीपों से मैं आपकी आरती करता हूँ। मैं अपने मस्तक पर आपके चरणों को धारण करता हूँ। हे देबि ! आपकी जय हो। हे देवि ! गायत्री की वन्दना करता हूँ। आपकी सदा जय हो।

गायत्री यन्त्र
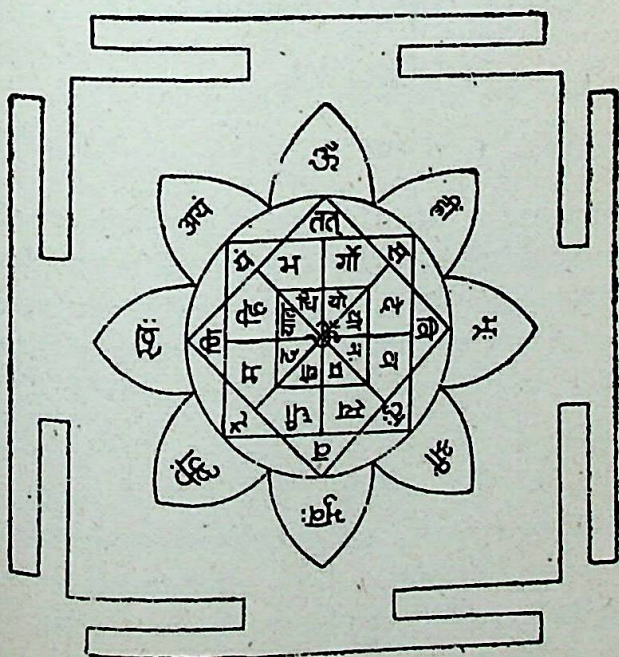
शुभ वार, नक्षत्र या तिथि में प्रातःकाल पूर्व की ओर मुख करके और घृत दीपक के समक्ष गोरोचन, चन्दन, कपूर, केशर को गंगाजल में एक साथ घिसें और पीपल या शमी की कलम से भोजपत्र, पीपलपत्र या पीपल की लकड़ी पर गायत्री का मानसिक जप करते हुए उपरोक्त यंत्र को लिखें। इसे रजत पत्र पर खुदवाया भी जा सकता है। गायत्री की दैनिक साधना अथवा अनुष्ठान के समय धूप, दीप, चन्दन, श्वेत पुष्पों से इस यन्त्र का पूजन करके नियमित गायत्री साधना की जाय तो गायत्री माता का विशेष अनुग्रह प्राप्त होता है।

—❀—

गायत्री जप के नियम और विधान

जप विधि—

साधना स्थल पर साकार उपासक गायत्री की मूर्ति या चित्र की स्थापना करें और धूप, दीप, नैवेद्य, अक्षत, पुष्प आदि उपलब्ध पूजन सामग्री से पूजन करें। निराकार उपासक अग्नि को गायत्री का प्रतीक मानकर घृत, दीपक, धूप व अगरवत्ती की स्थापना कर लें। अब गायत्री देवी का आवाहन करें और निम्न मन्त्र का उच्चारण करें—

आयांतु वरदा देवी अक्षरं ब्रह्मवादिनी।
गायत्रीछन्दसां माता ब्रह्मयोनि नमोस्तुते ॥

इसके साथ यह भावना करनी चाहिए कि गायत्री माता अपने आसन पर निवास कर रही हैं। अब जप आरम्भ कर देना चाहिए। जप की गिनती माला द्वारा सुविधाजनक रहती है। यह अंगुलियों द्वारा भी की जा सकती हैं। जप इस प्रकार से करना चाहिए कि मन्त्र

का उच्चारण होता रहे, होंठ हिलते रहें परन्तु पास बैठा व्यक्ति भी उसे सुन न सके। कम से कम १ माला अर्थात् १०८ मन्त्रों का जप तो करना ही चाहिए। समय और रुचि हो तो ३, ५, ७, ६, ११ मालाओं का जप करना चाहिए। जप करते हुए साकार उपासक गायत्री माता के चित्र का ध्यान करें और यह कल्पना करें कि वह आकाश में सूर्य की तरह तेजोमय मण्डल में स्थित है। यह मूर्ति कल्पना नेत्रों से बार-बार ओझल हो जायेगी। गायत्री माता के अङ्ग-प्रत्यङ्ग को श्रद्धापूर्वक निहार कर पुनः-पुनः ध्यान करना चाहिए। बार-बार के अभ्यास से एक समय आयेगा जब माता का चित्र स्पष्ट रूप से अन्तर नेत्रों से दिखाई देने लगेगा। निराकार उपासक 'ओंकार' का ध्यान कर सकते हैं। अग्नि को गायत्री का प्रतीक मानकर ज्योति का ध्यान भी किया जा सकता है।

जप का लाभ तभी होता है जब वह एकाग्रतापूर्वक किया जाय वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हों। यदि जप-साधना में माला घुमाने के साथ-साथ विचार अन्यत्र घूमते रहते हैं तो शक्ति का विशेष विकास नहीं हो पाता। एकाग्रता के लिए ध्यान किया जाता है, जो शक्ति का विशेष साधन है ध्यान की सफलता में जप की सफलता निश्चित है। जप के साथ-साथ अर्थ-चिन्तन को भी आवश्यक बताया गया है। इष्टदेव के गुण रूप का एक सजीव चित्र बन जाता है जो कालांतर में संसार का रूप ग्रहण कर लेता है और पूर्व संस्कारों का शमन करता है। पूर्व संस्कार में जो काम, क्रोध, मन, लोभ, द्वेष ईर्ष्यादि की भावनाएँ भरी पड़ी हैं, उनको धीरे-धीरे समाप्त करना जप-साधना की विशेषता है। विचारों में परिवर्तन होता है। मस्तिष्क-कोष प्रभावित होते हैं, इन पर चिह्न बनते हैं संस्कार जमते हैं और स्थायित्व आता है।

जप के नियम—

जप के इन नियमों का सावधानी पूर्वक पालन करना चाहिए :—

शरीर की शुद्धि करके धुले और स्वच्छ वस्त्रों को पहिन कर

साधना पर बैंठना चाहिए। पालती मारकर सीधे ढंग से बैठना चाहिए मध्याह्न को उत्तर की ओर शाम को पश्चिम की ओर मुख करके बैठना चाहिए। मल-मूत्र त्याग या किसी अनिवार्न कार्य के लिए बीच में उठना पड़े तो हाथ पैर धोकर पुनः बैठना चाहिए। शिखा खोलकर पगड़ी या कुर्त्ता पहनकर, पैर फैलाकर, नंगे होकर व्यग्र चित्त से क्रोध में और जूतादि पहनकर, जप करना निषिद्ध है। साधक का आहार विहार सात्विक होना चाहिए। तन्त्र-सार के अनुसार मन की शुद्धि, पवित्रता, संयम, शौच, वैराग्य, मन्त्रार्थ, अव्यग्रता यह जप सिद्धि की प्रधान सम्पत्तियाँ हैं। कुलार्णव तन्त्र के अनुसार अपवित्रता, रागरोष, नग्नशिरता, बाहरलाप, अनवधानता, अन्यमनस्कता साधना के बाधक माने गये हैं। साधक को पराया अन्न वहीं खाना चाहिए। वह जिसका अन्न खाता है उसी को फल मिलता है।

जप न धीरें-धीरे हो, और न अधिक तीव्र—स्वाभाविक गति से चलना चाहिए। सिद्धि के लिए मन, शिव, शक्ति और वायु का संयम आवश्यक है। यह न होने पर शास्त्रों के अनुसार कल्पपर्यन्त जप करने पर भी सिद्धि प्राप्त करना सम्भव नहीं है। साधना-स्थल को पूर्ण रूपसे सात्विक रखना चाहिए। वहाँ पर तामसिक व राजसिक वृत्ति वाले व्यक्तियों को न आने देना चाहिए। महापुरुषों और देवताओं के चित्रों और प्रेरणाप्रद वाक्यों से वह स्थान सुसज्जित होना चाहिए साधक को अपनी इन्द्रियों पर संयम रखना आवश्यक है। शीघ्र लाभ होता है। उत्तम विधि को एक साधक ने इस तरह बताया है।

नाम ही जपे शून्य मन धरै, पाँचों इन्द्रियों वश में करै।
ब्रह्म अग्नि में होमे कायां, ताकें विष्णु पखारे पाँया॥

जप के समय मन्त्र के अर्थ का चिन्तन करना चाहिए। मन्त्रार्थ में जिन गुणों का वर्णन किया हों, वह गुण हममें ओत-प्रोत हो रहे हैं, यह दृढ़ भावना करनी चाहिए। मन्त्र जप से एकाग्रता और

शक्ति उत्पन्न होती है, उससे उन गुणों को अपने अन्तःकरण में स्थापित करने में सहायता मिलती हैं और धीरे-धीरे साधक उस मन्त्र के साक्षात् रूप हो जाता है, यही सिद्धि के लक्षण हैं। योग दर्शन १।२८ में इस तथ्य का समर्थन करते हुए लिखा गया है कि मन्त्र का जप और अर्थ विचारने से समाधि-लाभ होता है। पूर्ण मनोयोग के साथ साधना करने वाले साधक इस स्थिति तक पहुँच ही जाते हैं।

जप के लिए उपयुक्त स्थान का होना आवश्यक हैं। लिंग पुराण ८५-१०६ के अनुसार घर में किये जप का फल साधारण होता है। नदी तट पर किये जप का जल अनन्त होता है। लिंग पुराण ८५-१० १०८ के अनुसार पवित्र आश्रमों, देवालयों, पर्वत शिखर पर, देव-हृदय पर, समुद्र तट पर यह लाभ करोड़ गुना हो जाता हैं। ध्रुवतारा, सूर्य के अभिमुख होकर और गौ, अग्नि, दीपक और जल के सामने जप करने का भी फल श्रेष्ठ माना गया है। सुविधा के लिए घर का स्वच्छ और सात्विक स्थान लेना अभीष्ट है।

जप में माला की भी विशेष उपयोगिता है। तन्त्रसार के अनुसार अँगुलियों पर मन्त्र जप साधारण पोताजिया की माला से दस गुना, शंख से सौ गुना, मूँगे से हजार गुना, मणि और रत्नों की माला से दस हजार गुना, स्फटिक की माला से भी दस हजार गुना, मोती की माला से लाख गुना, सोने की माला से करोड़ गुना, कुश ग्रन्थि की माला से अरब गुना और रुद्राक्ष से जप करने से अनन्त गुना लाभ होता है। गणेशजी का जप हाथी दाँत की माला से श्रेष्ठ माना गया हैं। कालिका पुराण में मूँगे की माला को सर्व प्रकार की कामनाओं की पूर्ति करने वाली, जियापोता की माला को पुत्रदाता और समस्त पापों का विनाश करने वालीं वताया गया है। वैष्णव मन्त्रों से तुलसी की माला ही श्रेष्ठ मानी गयी है। सात्विक उपासना के लिए इसी का प्रयोग करना चाहिए।

जप साधना में आसन भी विशेष महत्व रखता है। हंस माहेश्वर तन्त्र में वस्त्र, पल्लव, तृण, पाषाण, वंशकुश, कम्वल कृष्णाजिन व्याघ्रचर्म आदि के आसनों की चर्चा की गई है परन्तु सात्विक उपासना में कुश का आसन ही श्रेष्ठ माना गया है यदि बिना आसन भूमि पर बैठकर जप किया जाय तो जप साधना में उपर्जित शक्ति के पृथ्वी में प्रवेश करने की सम्भावना रहती है इसलिए साधक को अभीष्ट लाभ की प्राप्ति नहीं होती। कुश के आसन पर बैठकर साधना करने से यह लाभ है कि वह शक्ति को पृथ्वी में प्रविष्ट करने से रोकने और उसे सुरक्षित रखने की सामर्थ्य रखता है इसलिए प्रायः इसी का प्रयोग किया जाता है।

—❀—

जप के पूर्व की आवश्यक क्रियाएँ

गायत्री की ब्रह्म संध्या

गायत्री की दैनिक जप साधना सन्ध्या वन्दन के वाद की जाती है। संध्या की विभिन्न प्रकार की विधियाँ लोक व्यवहार में देखी जाती हैं यजुर्वेदीय, ऋग्वेदीय, सामवेदीय सन्ध्यायें प्रसिद्ध मानी जाती हैं। दक्षिणात्यों की संध्यायें, उत्तर वालों से भिन्नता रखती है। आजकल सनातन धर्म मतावलम्बी जनता में जो संध्या व्यवहार में लाई जाती है। वह श्रुति और स्मृति दोनों के मिले जुले मन्त्रों से बनाई गई है। आर्य समाज की संध्या का इनसे अन्तर है। अपनी रुचि और मान्यता के अनुसार किसी भी विधिकी संध्या को स्वीकार किया जा सकता हैं।

केवल गायत्री मन्त्र से भी संध्या की जाती है जिसे 'ब्रह्म सन्ध्या' की संज्ञा दी गई। यह विधि सरल व प्रभावशाली है।

शास्त्रों में त्रिकाल 'संध्या' करने का विधान मिलता हैं प्रातः व सायंकाल दो समय भी कर ली जाय तो उत्तम है। इसकी भी सुविधा न

होती प्रातःकाल एक समय तो करनी ही चाहिए। ब्रह्म मुहूर्त में उठकर शौच स्नानादि से निवृत होकर और धुले हुए पवित्र वस्त्र धारण करके साधना पर बैठना चाहिये। गायत्री का सविता से सम्बन्ध है। अतः जिधर सूर्य होगा, उधर ही मुख करके साधना करनी होगी। प्रातः पूर्व की ओर, सायं पश्चिम की ओर एवं दोपहर को उत्तर की ओर मुख करना चाहिये। आसन कुशका श्रेष्ठ माना गया है क्योंकि इससे साधना द्वारा शक्ति का पृथ्वीकरण नहीं हो पाता। स्थान एकान्त व शान्त होना चाहिए। वहाँ का वातावरण स्वच्छ व पवित्र हो। शरीर पर कमसे कम वस्त्र हों। शीत ऋतु में कम्बल या शाल ओढ़ लेनी चाहिए। गर्मियों में एक धोती पर्याप्त है। हाथ पोंछने के लिए कन्धे पर अँगोछा रख लेना चाहिए। संध्या के स्थान को नित्य प्रति धो लिया जाये तो अच्छा है। धूपवत्ती-अगरवत्ती जला देनी चाहिए ताकि वातावरण सुगन्धित हो जाए। पंच पात्र में जल भर कर रख ले, पालती मारकर मेरुदण्ड को सीधा रखकर संध्या के लिए बैठे। विधान इस प्रकार है :—

१. आचमन—

आचमन का उद्देश्य त्रिविध ह्रीं श्रीं, क्लीं शक्तियों को आकर्षित करके धारण करना है। इसका स्थूल रूप तो दाँये हाथ की हथेली में थोड़ा जल लेकर तीन वार पान करने का है परन्तु यह केवल जल के पीने का विधान मात्र नहीं है। इसका सूक्ष्म विधान ही महत्वपूर्ण है जिसमें भावना शक्ति का उपयोग किया जाता है। प्रथम आचमन के दिये दाँये हाथ में जल लेकर गायत्री मन्त्र का उच्चारण करते हुए यह भावना करें कि इससे "ह्रीं" प्रधान सतोगुणी शक्ति जल में आ गई है और मन्त्र पूर्ण होने पर उसे पीते हुए भावना करें कि सतोगुण से ओत-प्रोत इस जल को पीकर मेरे अन्दर सतोगुण की भी मात्रा में वृद्धि हो रही है। इसी प्रकार से दूसरे व. तीसरे आचमन के साथ रजोगुण व तमोगुणी शक्तियों के जल में प्रविष्ट होने की भावना करें। त्रिविध शक्तियों का आवाहन इसलिये किया जाता है कि गृहस्थी में इन सभी

प्रकार की शक्तियों की नितांत आवश्यकता रहती है। कन्धे पर रखे अँगोछे से हाथ-मुँह पोंछ लेना चाहिए।

२. शिखा बन्धन—

शिखा को जल से भिगोकर उसमें ग्रन्थि लगा लेनी चाहिये। महिलायें भीगे हाथ से उसका स्पर्श कर लें। गाँठ लगाते हुए गायत्री मन्त्र का उच्चारण करते रहना चाहिये और यह भावना करनी चाहिये कि मस्तिष्क के विद्युत् के भण्डार में हर समय विचार संकल्प और शक्ति परमाणु जो बाहर निकल कर आकाश में उड़ते रहते हैं, उन पर ताला लगा दिया है। जो शक्ति साधना में उपार्जित होगी वह सुरक्षित रहेगी, उसका आकाशीकरण न हो पायेगा।

३. प्राणायाम—

इस क्रिया से विश्वव्यापी प्राणतत्व को अपने अन्दर खींचकर धारण किया जाता है। इसके चार भाग हैं—(१) पूरक—इससे वायु भीतर खींची जाती है। (२) अन्तर कुम्भक—इसकी वायु को भीतर रोका जाता है। (३) रेचक—इसमें रोकी हुई वायु को बाहर निकाला जाता है। (४) बाह्य कुम्भक—इसमें वायु को बाहर निकाला जाता है। पूरक व रेचक का समय बराबर होता है अर्थात् जितना समय वायु खींचने में लगाया जाता है, उतना ही वायु को बाहर निकालने में लगाना चाहिये। अन्तर कुम्भक और बाह्य कुम्भक का समय भी बराबर होना चाहिये अर्थात् वायु को भीतर व बाहर रोकने का समय भी समान हो। इसका निश्चय घड़ी से भी हो सकता है और गिनती से भी।

वायु को भीतर खींचते समय "ॐ भूः र्भुवः" स्वः" का मानसिक उच्चारण करना चाहिए और भावना करनी चाहिये कि वायु के साथ विश्व व्यापी चैतन्य प्राण शक्ति मेरे भीतर प्रविष्ट हो रही है। वायु को धीरे-धीरे खींचना चाहिये और यथा शक्ति भर लेना चाहिये।

अन्तर कुम्भक में "तत्सवितुर्वण्यं" का पाठ करते रहना चाहिये और यह भावना करनी चाहिये कि तेजस्वी प्राण शक्ति को भीतर खींचने

से चारों ओर शक्ति का संञ्चार हो रहा है और मैं शक्ति का पुञ्ज बनता जा रहा हूँ।

रेचक में "भर्गो देवस्य धीमहि" का जप करते हुए यह भावना करनी चाहिये कि सतोगुणी शक्तियों के आगमन से मेरे पापों का विनाश हो रहा है और वायु के साथ बाहर निकलते जा रहे हैं।

वाह्य कुम्भक में 'धियो यो नः प्रचोदयात्' का मानसिक उच्चारण करते हुए यह भावना करनी चाहिये कि आसुरी शक्तियों के विनाश से अब मेरा शरीर पवित्र हो गया है और उनके भीतर प्रविष्ट होने का मार्ग बन्द हो गया है।

इन पवित्र भावनाओं के साथ किया गया प्राणायाम अधिक लाभदायक होता है। जितनी भावना पुष्ट व दृढ़ होगी, उतना ही लाभ अधिक होगा। आधुनिक मनोविज्ञान ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है।

यह एक प्राणायाम की विधि है। संध्या में ५ प्राणायाम करने का विधान हैं। इतना न हो सकें तो एक प्राणायाम तो अवश्य करना ही चाहिये।

४. अघमर्षण—

इसका अर्थ व उद्‌देश्य है पाप विनाश। गायत्री सतोगुणी शक्ति की प्रतीक है। उसके आवाहन से पापों, दुष्प्रवृत्तियों, दुर्भावनाओं का विसर्जन निश्चित है वैसे सूर्य रूपी प्रकाश के आगमन से अन्धकार अपने आप चला जाता है। ऐसे ही भावना अघमर्षण क्रिया में की जाती है।

यह क्रिया संध्या में शरीर, प्राण व मन के त्रिविध पापों के विनाश के लिए तीन बार की जाती है।

सर्व प्रथम दायें हाथ में जल लेकर "ॐ भूः र्भुवः स्वः" का उच्चारण करना चाहिये। इसे दाये नासिका से छः अंगुल दूरी पर रखना चाहिये और बायें हाथ के अँगूठे से बायीं नासिका को बन्द कर देना

चाहिए। अब "तत्सवितुर्वरेण्यं" का उच्चारण करते हुए साँस भीतर खींचनी चाहिये और भावना करनी चाहिये कि गायत्री की सतोगुणी शक्ति का साँस के साथ प्रवेश हो रहा है। अब बाँयीं नासिका से बाँयें अँगूठे को हटा दें उससे दायीं नासिका को सामने से बन्द कर दें दायीं हाथ की हथेली को बायीं नासिका के सामने ले जायें, "भर्गो देवस्य धीमहि" का पाठ करते हुए यह भावना करें कि गायत्री की सतोगुणी शक्ति के आगमन के फल-स्वरूप पापों, दुर्विचारों और दुर्भावनाओं का विनाश हो रहा है और आसुरी शक्तियों के मृत शरीर जल में गिर रहे हैं। भरी हुई साँस पूरी निकल जाने पर "धियो योनः प्रचोदयात्" का पाठ करते हुए उस जल को एक ओर गिरा देना चाहिये क्योंकि उसमें असुरों की लाशों के आने की भावना की गई है। यह अघमर्षण की एक क्रिया है। इसे तीन बार करना चाहिए।

५. न्यास—

न्यास का अर्थ है—धारण करना। गायत्री योग के अनुसार शरीर रूपी ब्रह्माण्ड के सात लोक होते हैं। उन लोकोंके प्रतीक हैं—१. मूर्धा (मन, मस्तिष्क), २. आँखें, ३. कान, ४. वाणी और रसना, ५. हृदय, अन्तःकरण, ६. नाभि, जननेन्द्रिय, ७. हाथ, पैर। यह सात शक्ति केन्द्र हैं। इनको भगाना व पवित्र रखना आवश्यक है तभी नियमित गायत्री जप साधना द्वारा शक्ति का विकास सम्भव है। न्यास द्वारा इन सात केन्द्रों को पवित्र व शक्तिशाली बनाया जाता है। विधि इस प्रकार है।

दायें हाथ के अँगूठे और अनामिका अंगुली को मिलाकर नीचे लिखे मंत्र भागों में जहाँ संकेत हों, उसे स्पर्श करें और यह भावना करें कि वह अङ्ग शक्तिशाली व पवित्र बन रहा है।

(१) ॐ भूर्भुवः स्वः—मूर्धनाय नमः।
(२) तत्सवितुः—नेत्राभ्यां नमः।
(३) वरेण्यं—कर्णाभ्यां नमः।
(४) भर्गो—मुखाय नमः।

(५) देवस्य—कण्ठाय नमः।
(६) धीमहि—हृदयाय नमः।
(७) धियो यो नः—नाभ्यै नमः।
(८) प्रचोदयात्—हस्तपादाभ्यां नमः।

यह गायत्री उपासना की भूत शुद्धि या ब्रह्मसंध्या है।

गायत्री शाप विमोचनम्

गायत्री एक शक्ति है। उसका साधक निश्चय रूप से शक्ति का विकास करता है। सात्विक, राजसिक व तामसिक तीन प्रकार की साधनाएँ व सिद्धियाँ होती हैं। साधक के उद्देश्य और भावना के अनुसार परिणाम उपस्थित होते हैं। इस शक्ति का उपयोग लोक कल्याण में भी हो सकता है और अनिष्ट में भी। इसलिये विधि विधान की जानकारी व पथ प्रदर्शन पात्र कुपात्र को देखकर किया जाता है ताकि कुपात्र के पास जाने से हानि की सम्भावना न हो।

पुराणों में भी ऐसी कथा आती है कि वशिष्ठ और विश्वामित्र ऋषियों ने गायत्री की साधना निष्फल होने का शाप दे रखा है। देवताओं ने शाप विमोचन की प्रार्थना की तो उसके उत्कीलन की विधि व्यवस्था बनाई गई। विधि का भी अपना महत्व है परन्तु इस उपाख्यान की अपनी विशिष्ट महत्ता है।

वशिष्ठ एक सम्मानित पद होता था। जो साधक सवा करोड़ गायत्री का पूर्ण नियमों का पालन करते हुए जाप करता था, उसे यह पद मिलता था। रघु अज, दिलीप, दशरथ, राम, लव-कुश इन छः पीढ़ियों के गुरु एक वशिष्ठ नहीं, अलग-अलग थे पर निश्चित उपासना व तपस्या करने पर उन्होंने यह पद प्राप्त किया था। वशिष्ठ के शाप मोचन का अर्थ यह है कि इस तरह के सिद्ध साधक से गायत्री की दीक्षा लेनी चाहिये जो मार्ग की सभी कठिनाइयों का उचित रीति से मन्त्र निर्देशन कर सके। सवा करोड़ गायत्री जाप तक की ऐसी सीमा है जिस तक

वह क्षमता प्राप्त हो जाती है। अतः ऐसे पथ-प्रदर्शक के संरक्षण में साधना करना वशिष्ठ का शाप मोजन है।

वसिष्ठ के अतिरिक्त विश्वामित्र का भी गायत्री को शाप है। विश्वामित्र का अभिप्राय है विश्व का, समाज और राष्ट्र का हितचिंतक, हितैषी। स्वार्थी व्यक्ति किसी प्रकार का भी अनिष्ट कर सकता है। गुरु का तपस्वी होना ही पर्याप्त नहीं है, उसमें उदारता, महानता और कर्तव्य निष्ठा के गुण भी होने चाहिए। रावण वेदपाठी विद्वान और तपस्वी तो था परन्तु चरित्र की दृष्टि से उसका स्तर बहुत नीचा था। वह वशिष्ठ तो कहा जा सकता है परन्तु विश्वामित्र नहीं। चाहे कितना भी तप क्यों न किया हो, यदि वह संकीर्ण मनोवृति का है तो उसे गायत्री का साधना गुरु होने का अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता। वशिष्ठ व विश्वामित्र का शाप मोचन तभी होगा जब तप और चरित्र दोनों में वह उच्च व श्रेष्ठ होगा। इन दोनों शापों से मुक्त होने पर गायत्री साधना निश्चित रूप से सफल होगी।

वसिष्ठ शाप विमोचनम्

ॐ अस्य श्री वसिष्ठशापबिमोचनमन्त्रस्यनिग्रहानुहकर्ता वसिष्ठ ऋषिः वसिष्ठनुगृहीता गायत्रीशक्तिर्देवता गायत्री छन्द वसिष्ठशापविमोचनार्थं जपे विनियोगः ।।मन्त्र।। ॐ सोऽहमर्कमयं ज्योतिरहंशिवः। आत्मज्योतिरहं शुक्रः सर्वज्योतिरसोऽस्म्यहम् इत्युक्त्वा योनिमुद्रां प्रदश्र्य गायत्रीमंत्रं पठित्वा ।।

(योनि मुनि मुद्रा दिखाकर तीन वार गायत्री जपना चाहिये)

ॐ देवी गायत्री त्वं वसिष्ठशापाद्विमुक्ता भव ।।

विश्वामित्र शाप विमोचनम्

ॐ अस्य श्री विश्वामित्रशापविमोचनमन्त्रस्य नूतनसृष्टिकर्ता विश्वामित्रऋषिः विश्वामित्रानुगृहीता गायत्री शक्तिर्देवता वाग्देहा गायत्री छन्दः विश्वामित्रशापविमोचनार्थं जपे विनियोगः ।। मन्त्र ।। ॐ गायत्री भजाम्यग्निमुखीं विश्वगर्भां यदुद्भवा

देवाश्चक्रिरेविश्वसृष्टिं तां कल्याणो मिष्टकरीं प्रपद्ये। यन्मुखा न्निःसृतोऽखिलवेदगर्भः शापयुक्तातु गायत्री सफला न कदाचन। शापादुत्तारिता सा तु भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥ प्रार्थना ॥ ॐ अहो देवि महादेवि सन्ध्ये विद्ये सरस्वती। अजरे अमरे चैव ब्रह्मयो-निर्नमोऽस्तु ते ब्रह्मशापाद्विमुक्ता भव ॥ वसिष्ठशाद्विमुक्ता भव ॥ विश्वामित्रशापाद्विमुक्ता भव ॥

प्रातःकाले ब्रह्म रूप गायत्री ध्यानम्

ॐ बालां विद्यान्तु गायत्री लोहितां चतुराननाम्। रक्ता म्बरद्वयोपेतामक्षसूत्रकरां तथा ॥ कमण्डलुधरां देवि हंसवाहनसं-स्थितम्। ब्रह्माणीं ब्रह्मदैवत्यां ब्रह्मलोकनिवासिनीम्। मन्त्रे-णावहयेद्देवीमायान्तीं सूर्यमण्डलात् ॥

ब्रह्मलोक में निवास करने वाली, कन्या की तरह हंसारूढ़, लाल वर्ण, चार मुख और चार हस्त वाली, दो लाल वस्त्र धारण करने वाली, हाथों में कमण्डलु, पुस्तक, दण्ड और रुद्राक्ष की माला लिए हुए आदित्य मण्डल से आने वाली गायत्री देवी का ध्यान करे।"

मध्याह्न काले विष्णुरूप–गायत्री ध्यानम्

ॐ मध्याह्ने विष्णुरूपां च तार्क्ष्यस्थां पीतवाससम्।
युवतीं च यजुर्वेदां सूर्यमण्डलसंस्थिताम् ॥

"विष्णुरूप (हाथों में शंख, चक्र गदा और पद्म लिए) गरुड़ पर स्थित, पीत वस्त्र धारण किये हुये युवती के रूप में, यजुर्वेद से युक्त, सूर्य मण्डल में स्थित गायत्री देवी का ध्यान करे।"

सायङ्काले शिवरूप गायत्री ध्यानम्

ॐ सायाह्ने विश्वरूपाञ्चवृद्धांवृषभवाहिनीम्।
सूर्यमण्डलमध्यस्थां सामवेदसमायुताम् ॥

"शिव रूप (हाथों में त्रिशूल, डमरू, पाश और पात्र धारण किये हुए), वृषभ को वाहन, बनाकर सूर्य मण्डल में स्थित और सामवेदसे युक्त गायत्री देवी का ध्यान करे।"

गायत्री हृदयम्

ॐ अस्य श्री गायत्री हृदयस्य नारायण ऋषिर्गायत्रीच्छन्दः परमेश्वरी गायत्री देवता गायत्री हृदय जपे विनियोगः। यथार्थ-न्यासः। द्यौर्मूर्ध्नि देवताम्। दन्तपंक्ताअश्विनौ। उभे सन्ध्ये चौष्ठौ मुखमग्निः जिह्वायां सरस्वती। ग्रीवायां तु वृहस्पतिः। स्तनयोवसवोऽष्टौ। वाह्वोर्मरुतः। हृदये पर्जन्यः। आकाशमुदरम्। कैलासमलये ऊरु। विश्वेदेवा जान्वोः जंघायां कौशिकः। गुह्य-मयने। ऊरू पितरः पादो पृथ्वी। वनस्पतयोऽङ्गलीषु। ऋषयो रोमाणि। नखानि। मुहूर्तानि। अस्थिषु ग्रहाः। असृङ्मास ऋतवः सवत्सरा वै निमिषम्। अहोरात्राआदित्यश्चन्द्रमाः। प्रवरां दिव्यां गायत्री सहस्रनेत्रां शरणमहं प्रपद्ये। ॐ तत्सवितु वंरेण्याय नमः। ॐ तत्पूर्वंजयाय नमः। प्रातरादित्याय नमः। तत्प्रातरादित्यप्रतिष्ठाय नमः। प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। सायं प्रातरधीयानो अपापो भवति सर्वंतीर्थेषु स्नातो भवति। सर्वं देवैर्ज्ञातो भवति। अवाच्यवचनात्पूतो भवति। अभक्ष्यभक्षणा-त्पूतो भवति। अभोज्यभोजनात्पूतो भवति। अचोष्यचोषणात्पूतो भवति। असाध्यसाधनात्पूतो भवति। दुष्प्रतिग्रहशतसहस्रात्पूतो भवति। सर्वंप्रतिग्रहात्पूतो भवति। पंक्तिदूषणात्पूतो भवति। अनृतवचनात्पूतो भवति अथाऽब्रह्मचारी ब्रह्मचारी भवति। अनेन हृदयेनाधीतेन क्रतुसहस्रेणेष्टं भवति। षष्टिशतसहस्र गायत्र्या शप्यानि फलानि भवन्ति अब्राह्मणानु सम्यग्ग्रहेयेत्। तस्यासिद्धिर्भवति य इदं नित्यमधीयानो ब्राह्मणः प्रातः शुचि सर्वपापैः प्रमुच्यते इतिः ब्रह्मलोके महीयते इत्याह भगवान् श्री नारायणः ॥

जप के पूर्व की २४ मुद्रायें

जप से पहले २४ मुद्राओं के प्रदर्शन का विधान शास्त्रों में मिलता है। मुद्रा का अभिप्राय हाथ को विशेष आकृति से मोड़ना है। हाथ को विभिन्न प्रकार से मोड़ने पर अलग-अलग मुद्रायें बनती हैं। मुद्राओं का प्रदर्शन अपने इष्ट देवता की मूर्ति, चित्र या यन्त्र के समक्ष एकान्त स्थान में किया जाता है। किसी दूसरे व्यक्ति के उपस्थित रहने पर इनका प्रदर्शन वर्जित है। जप पूर्व की २४ मुद्राओं के नाम इस प्रकार हैं :—

१. सुमुख	२. सम्पुट	३. वितत
४. विस्तृत	५. द्विमुख	६. त्रिमुख
७. चतुर्मुख	८. पञ्चमुख	९. षण्मुख
१०. अधोमुख	११. व्यापकाञ्जलि	१२. शकट
१३. यमपाश	१४. ग्रन्थित	१५. सन्मुखोन्मुख
१६. प्रलम्ब	१७. मुष्टिक	१८. मत्स्य
१९. कूर्म	२०. वराहक	२१. सिंहाक्रांत
२२. महाक्रान्त	२३. मुद्गर	२४. पल्लव

(इन मुद्राओं की आकृति अगले पृष्ठों पर छपे इनके चित्रों से स्पष्ट हो जायेगी।)
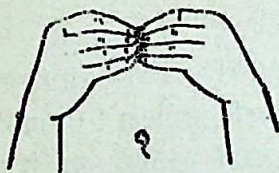
—❀—

१
सुमुखम्
२
सम्पुटम्
३
विततम्
४
विस्तृतम्
५
द्विमुखम्
६
त्रिमुखम्
७
चतुर्मुखम्
८
पञ्चमुखम्

षण्मुखम्
९
१०
अधोमुखम्
११
१२
शकटम्
व्यापकाञ्जलिकम्
१३
यमपाशम्
१४
ग्रन्थितम्
१५
उन्मुखोन्मुखम्
१६
प्रलम्बम्
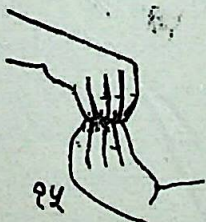
१७ मुष्टिकम्

१८ मत्स्यः

१९ कूर्मः

२० वराहकम्
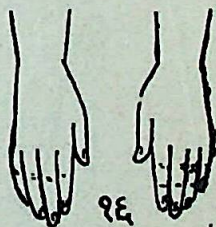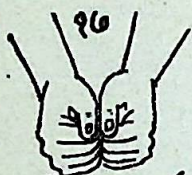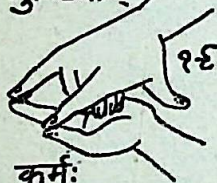
२१ सिंहाक्रान्तम्

२२ महाक्रान्तम्

२३ मुद्गरम्

२४ पल्लवम्

जप के बाद का साधना क्रम

जप के बाद की ८ मुद्रायें

सुरभिज्ञानवैराग्येयौनिः शंखोऽथ पङ्कजम् ।
लिङ्ग निर्वाणमुद्राष्यै जपं च प्रदर्शयेत् ॥

जप के बाद की ८ मुद्रायें करने की विधि

अन्योन्याभिमुखी श्लिष्टा कनिष्ठानामिका पुनः ।
तथैव तर्जनीमध्या धेनुमुद्रा समीरित ॥१
तर्जन्यङ्गुष्टकौ सक्तावग्रतो हृदि विन्यसेत् ।
वामहस्ताम्बुजं वामे ज्ञानमूर्द्धनि विन्यसेत् ॥
ज्ञानमुद्रा भवेदेषा । रामचन्द्रस्यप्रेयसी ॥२
शांतर्जन्यङ्गुष्ठकौ सक्तौ जान्वन्ते च विनिर्दिशेत् ।
वैराग्या ह्यस्ति मुद्रा च मुक्ति साधन कारिका ॥३
मिथः कनिष्ठिके वद्ध्वा तर्जनीभ्यामनामिके ।
अनामिकोद्धर्वसंश्लिष्टै दीर्घमध्यमयोरथ ।
अङ्गुष्ठाग्राद्वये न्यस्य योनिमुद्रे समीरिता ॥४
वामाङ्गुष्ठन्तु संगृह्य दक्षिणेन तु मुष्टिना ।
कृत्वोत्तानां रतो मुष्टिमङ्गुष्ठन्तु प्रसारयेत् ॥
वामाङ्गुल्यस्तथा श्लिष्टा संयुक्तास्युः प्रसारिताः ।
दक्षिणांगुण्ठंसंस्पृष्टा मुद्रैषा शंखमुद्रिका ॥५
हस्तो तु सम्मुखो कृत्वा संहप्रोन्नतांगुली ।
तलान्तमिलितांगुष्ठौ कृत्वैषा पद्ममुद्रिका ॥६
उच्छ्रितं दक्षिणागुष्ठं वामांगुष्ठेन वन्धयेद् ।
वामंगुलीदक्षिणाभिरंगुलीभिश्च बन्धयेत् ।
लिङ्गमुद्रेयमाख्याता शिवसान्निध्यकारिणी ॥७

अधोमुखं वामकरं तदूर्ध्वं दक्षिणन्तथा ।
उत्तानं स्थापयित्वा च संयुक्तांगुलिकौ तदा ।।
हस्तौ तु मुष्टिकौ कृत्वा श्रोत्रपार्श्वे च कारयेत् ।
तर्जन्यौ दर्शयेदूर्ध्वमेषां निर्वाण संस्मृता ।।८

धेनु मुद्रा—इसमें धेनु के चार स्तनों को बनाया जाता है। समस्त अँगुलियों को दो-दो हाथों को परस्पर में एक दूसरी से श्लेष्ट कर देवें, फिर एक हाथ की कनिष्ठका का अंगुलि को दूसरे हाथ की अनामिका से सटा देवें और इसी तरह से एक की तर्जनी को दूसरे हाथ की मध्यमा से श्लिष्ट कर देवें तो चार स्तन जैसे वन जाते हैं। इसी को धुनु मुद्रा कहा गया है।

ज्ञान मुद्रा—तर्जनी अंगुली और दक्षिण हाथ के अंगुष्ठ को आयं हृदय पर विन्यस्त कर देवें और बायें हाथ को वाम जानु के मुर्द्धा पर रक्खें—यह ज्ञान मुद्रा कही जाती है जो कि श्री रामचन्द्र की बहुत प्यारी है।

वैराग्य मुद्रा—तर्जनी और अंगुष्ठ दोनों को जानु के अन्त में विनिर्दिष्ट करे—यह युक्ति के साधन करने वाली वैराग्य मुद्रा होती है।

योनि मुद्रा—परस्पर में दोनों कनिष्ठिका, दोनों अनामिका और दोनों मध्यमाओं को बद्ध करके दोनों तर्जनियों को लम्ब मान करके श्लिष्ट कर देवें तथा दोनों अंगुष्ठों को बराबर जोड़कर तर्जनियों से सटा देवे तो योनि के आकार वाली मुद्रा बन जाती है।

शङ्ख मुद्रा—बायें अंगुष्ठ को लेकर दक्षिण मुष्टि के बीच में दे देवे और प्रसृत कर देवें। मुष्टि को उत्तान कर देना चाहिए। बायें हस्त की अंगुलियों को संयुक्त करके श्लिष्ट कर देवें। दक्षिण अंगुष्ठ से संस्पर्श करती हुई यह शङ्ख मुद्रा होती है जो एक शङ्ख की आकार वाली होती है।

लिङ्ग मुद्रा—उच्छ्रित दाहिने अंगुठे को बाम अंगुष्ठ से बद्ध कर देवे और बाँये हाथ की अंगुलियों को दाहिने हाथ की अंगुलियों से बाँध देवे—यह लिङ्ग मुद्रा होती है जो भगवान् शिव की सन्निधि करने वाली होती है।

पद्म मुद्रा—दोनों हाथों को संमुख करके दोनों की अंगुलियों को संहत और प्रोन्नत कर लेवें तलान्त में दोनों अंगुष्ठों को मिला देवें यह पद्म मुद्रा बन जाती है।

निर्वाण मुद्रा—बाँये हाथ को अधोमुख करके उसके ऊपर दाहिने हाथ को उत्तान स्थापित कर देवें। दोनों की अंगुलियाँ संयुक्त रक्खें। दोनों हाथों की मुष्ठि बनाकर श्रोत्र के पास में करे और दोनों, तर्जनियों को ऊपर की ओर दिखावे तो यह निर्वाण मुद्रा बन जाती है।

(मुद्राओं के चित्र अगले पृष्ठ पर देखें।)

गायत्री कवचम्

ॐ अस्य श्री गायत्रीकवचस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्रीच्छन्दो गायत्री देवता ॐ भूः बीजम् र्भुवः शक्तिः स्वः कीलकम् गायत्री-प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ॥

॥ अथ ध्यानम् ॥

पञ्चवक्त्रां दशभुजां सूर्यकोटिसमप्रभाम्।
सावित्रीं ब्रह्मवरदां चन्द्रकोटिसुशीतलाम् ॥
त्रिनेत्रां सितवक्त्रां चमुक्ताहारविराजिताम्।
वराभयाङ्कुशयशाहेमपात्रक्षमालिकाः ॥
शंखचक्राब्जयुगलं कराभ्यां दधती पराम्।
सितपङ्कजसंस्थां च हंसारूढ़ां सुरपूजिताम्।
ध्यात्वैवं मानसाम्भोजे गायत्रीकवचं जपेत् ॥

ज्ञानम.
सुरभिः
वैराग्यम.
१
२
३
योनिः
शंख.
४
५
६
लिङ्गम.
७
८
पङ्कजम.
निर्वाणम
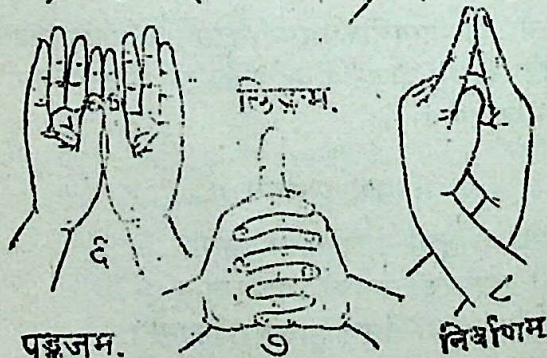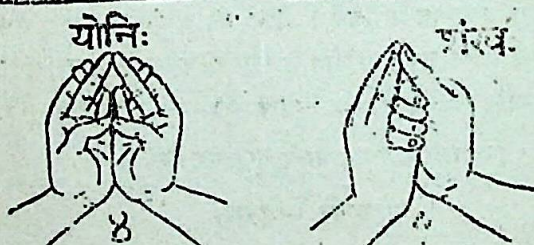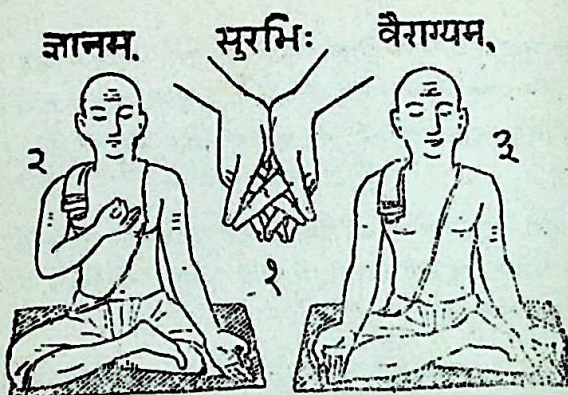
॥ ॐ ब्रह्मोवाच ॥

विश्वामित्र महाप्राज्ञं गायत्रीकव चं शृणु ।
यस्य विज्ञानमात्रेण त्रैलोक्यं वशयेत्क्षणात् ।१
सावित्री मे शिरः पातु शिखायाममृतेश्वरी ।
लालाट ब्रह्मदेवत्या भ्रुवौ मे पातु वैष्णवी ।२
कर्णौ मे पातु रुद्राणी सूर्या सावित्रिकाऽम्बिके ।
गायत्री वदनं पातु शारदा दशनच्छदौ ।३
द्विजान् यज्ञप्रिया पातु रसनायां सरस्वती ।
सांख्यायनी नासिका मे कपोलौ चन्द्रहासिनी ।४
चिवुक वेदगर्भा च कण्ठं पात्वघनाशिनी ।
स्तनौ मे पातु इन्द्राणी हृदयं ब्रह्म वादिनी ।५
उदरं विश्वेनाकर्त्री च नाभौ पातु सुरप्रिया ।
जघनं नारसिंही च पुष्टं ब्रह्माण्ड धारिणी ।६
पार्श्वौं मे पातु पद्र्माक्षी गुह्यं गोगीप्त्रिकाऽवतु ।
ऊर्वोओं काररूपा च जान्वोः सन्ध्यात्मिकाऽवतु ।७
जंघयोः पातु अक्षोभ्या गुल्फयोर्ब्र [illegible]शीर्षका ।
सूर्या पदद्वयं पातु चन्द्रा पादांगुलीषु च ।८
सर्वाङ्गे वेपजननी गातु मे सर्वदाऽनघा ।
इत्येतत कवचं ब्रह्मन् गायत्र्याः सर्वपावनम् ।
पुण्यं पवित्र पापघ्नं सर्वरोगनिवारणम् ।९
त्रिसन्ध्यं यः पठेद्विद्वान् सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।
सर्वशास्त्रार्थतत्वज्ञः स भवेद्वेदवित्तमः ।१०
सर्वे यज्ञफलं प्राप्य ब्रह्मान्ते शापवाप्नुयात् ।
प्राप्नोति जपमात्रेण पुरुषार्थश्चतुर्विधान् ।११

गायत्री तर्पणम्

इसे केवल प्रातःकाल की सन्ध्या में करना चाहिए ।

ॐ गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिः सविता देवता गायत्री छन्द-गायत्री तर्पणे विनियोगः । ॐ भूः ऋग्वेद पुरुषं तर्पं० । ॐ भुंवः सामवेद पुरुषं तर्पं० । ॐस्वः अथर्ववेद पुरुषंतर्पं० । ॐमहः इति-ह्रास पुराण पुरुषं तर्पं०। ॐजनः सर्वागपुरुषं तर्पं० । तपः तपस्वी-पुस्टषं तर्पं० । ॐसत्यं सत्यलोक पुरुषं तर्पं०। ॐभूः भूर्लोक पुरुषं तर्पं० । ॐ भुंवः भुवर्लोक पुरुषं तर्पं० । ॐ स्वः स्वर्लोक पुरुषं तर्पं० । ॐ भूः एकपदां गायत्री तर्पं० । ॐ भुंवः द्विपदां गायत्री तर्पं० । ॐ स्वः त्रिपदां गायत्री तर्पः। ॐ भूर्भुवः स्वः चतुष्पदं गायत्रीतर्पं० । ॐस्वः उषसी तर्पं० । ॐगायत्री तर्पं०। ॐसावित्री तर्पं० । ॐ सरस्वती तर्पं० । ॐ वेदमातरं तर्पं०। पृथिवी तर्पं०। ॐ ऊर्जातर्पं० । ॐ कोशिकी तर्पं०। ॐ सा कृति तर्पं० । ॐ सर्व-जितां तर्पं० ॐ तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु ।

क्षमा प्रार्थना

साधना में हुई त्रुटियों के लिए निम्न प्रकार से क्षमा प्रार्थना करनी चाहिए :-

आवाहनं न जानामि नैब जानामि पूजनम् ।
विसर्जनं न जानामि क्षमस्व परमेश्वरि ।१
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वरि ।
यत्पूजितं मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे ।२
यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनं च यद् भवेत् ।
तत्सर्वंक्षम्यतां देवि प्रसीद परमेश्वरि ।३
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो बन्दे तमच्युतम् ।४
प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषुयान् ।
स्मरणंदेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः ।५

स्तोत्र पाठ

इसके बाद गायत्री के एक या अनेक रुचिकर स्तोत्रोंका पाठ किया जा सकता है ।

आरती गायत्री जी की

जयति जय गायत्री माता, जयति जय गायत्री माता ।
आदि शक्ति तुम अलख निरंजन जग पालन कर्त्री ॥
दुःख शोक भय क्लेश कलह दारिद्र दैन्य हर्त्री ।
ब्रह्म रूपिणी, प्रणत पालिनी, जगतधातृ अम्बे ।
भवभयहारी, जन हितकारी सुखदा जगदम्बे ॥
भय हारिणी भव तारिणी अनघे, अज आनन्द राशी ।
अविकारी, अघहरी अविचलित अमले, अविनाशी ॥
कामधेनु सत् चित आनन्दा जय गङ्गा गीता ।
सविता की शाश्वती शक्ति तुम सावित्री सीता ॥
ऋग् यजु, साम, अथर्व प्रणयिनी, प्रणव महामहिमे ।
कुण्डलिनी, सहस्रा, सुषुम्ना शोभा गुण गरिमे ॥
स्वाहा, स्वधा शची ब्रह्माणी राधा रुद्राणी ।
जय शतरूपा वाणी विद्या कमला कल्याणी ॥
जननी हम हैं दीन हीन दुःख दारिद्र के घेरे ।
यदपि कुटिल कपटी कपूत तऊ बालक हैं तेरे ॥
स्नेह सनी करुणामयि माता चरण शरण दीजे ।
विलख रहे हम शिशु सूत तेरे दया दृष्टि कीजे ॥
कामं, क्रोध, मद, लोभ, दम्भ, दुर्भाव, द्वेष हरिये ।
शुद्ध बुद्धि-निष्पाप हृदय, मन को पवित्र करिये ॥
तुम समर्थ सब भाँति तारिणी तुष्टि, पुष्टि त्राता ।
सत् मारग पर हमें चलाओ जो है सुख दाता ॥
जयति जय गायत्री माता । जयति जय गायत्री माता ।

श्री गायत्री चालीसा

यदि इन स्तोत्रों का पाठ सम्भव न हो तो गायत्री चालीसा का पाठ भी किया जा सकता है। उपरोक्त स्तोत्रों के पाठ के बाद भी सुविधा होने पर इसका पाठ किया जा सकता हैं। चालीसा पाठ इस प्रकार हैं :—

दोहा—ह्रीं, श्रीं, क्लीं मेधा, प्रभा, जीवन ज्योति प्रचण्ड।
शान्ति, कान्ति, जागृति, प्रगति रचना शक्ति अखण्ड॥
जगत् जननि मङ्गल करनि, गायत्री सुरधाम।
प्रणवों सावित्री स्वधा, स्वाहा पूरन काम॥

भूर्भुवः स्वः 'ॐ' युत जननी। गायत्री नित कलिमल दहनी।
अक्षर चौबीस परम पुनीता। इनमें बसें शास्त्र, श्रुति, गीता॥
शाश्वत सतोगुणी सतरूपा। सत्य सनातन सुधा अनूपा॥
हंसारूढ़ सीताम्बर धारी। स्वर्ण कान्ति शुचि गगनबिहारी॥
पुस्तक पुष्प कमण्डलु माला। शुभ्र वर्ण तनु नयन विशाला॥
ध्यान धरत पुलकित हिय होई।सुख उपजत दुःख दुरमति खोई॥
कामधेनु तुम सुरतरु छाया। निराकार की अद्भुत माया॥
तुम्हारी शरण गहै जो कोई। तरै सकल संकट सो सोई॥
सरस्वती, लक्ष्मी तुम काली। दिखै तुम्हारी ज्योतिनिराली॥
तुम्हरी महिमा पार न पावें। जो शारद शत मुख गुन गावें॥
चार वेद की मातु पुनीता। तुम ब्रह्माणी गौरी सीता॥
महामन्त्र जितने जग माहीं। कोऊ गायत्री सम नाहीं॥
सुमिरत हिय में ज्ञान प्रकासा। आलस सपाप अविद्या नासा॥
सृष्टि बीज जगजननी भवानी। कालरात्रि बरदा कल्याणी॥
ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र सुर जेते। तुम सों पावें सुरता तेते॥
तुम भक्तन की भक्त तुम्हारे। जननिहि पुत्र प्राण ते प्यारे॥
महिमा अपरम्पार तुम्हारी। जै जै जै त्रिपदा भयहारी॥

पूरित सकल ज्ञान विज्ञाना । तुमसम अधिक न जग में आना।।
तुमहिं जानि कछु रहे न शेषा । तुमहिं पाय कछु रहे न क्लेशा ।।
जानत तुमहिं तुमहिं ह्वै जाई । पारस परसि कुधातु सुहाई ।।
तुम्हारी शक्ति दिपै सब ठाई । माता तुम सब ठौर समाई ।।
ग्रह, नक्षत्र, ब्रह्मांड घनेरे । सब गतिवान् तुम्हारे प्रेरे ।।
सकल सृष्टि की प्राण विधाता । पालक, पोषक नाशक, त्राता ।।
मातेश्वरी दया व्रत धारी । तुम सन तरे पातकी भारी ।।
जा पर कृपा तुम्हारी होई । तापर कृपा करें सब कोई ।।
मन्द बुद्धि ते बुद्धि बल पावैं । रोगी रोग रहित ह्वै जावैं ।।
दारिद्र मिटैं कटे सब पीरा । नासै दुःख दुःख हरै भवभीरा।।
गृह क्लेश चित्त चिन्ता भारी । नासै गायत्री भयहारी ।।
सन्तति हीन सुसन्तति पावें । सुख सम्पति युत मोद मनावें ।।
भूत पिशाच सबै भय खावें । यम के दूत निकट नहिं आवें ।।
जो सधवा सुमिरै चित्त लाई । अछत सुहाग सदा सुखदाई ।।
घर वर सुखप्रद लहैं कुमारी । विधवा रहें सत्य व्रत धारी ।।
जयति जयति जगदम्ब भवानी । तुम सम और दयालु न दानी ।।
जो सद्गुरु सौं दीक्षा पावें । सो साधन को सफल बनावें ।।
सुमिरन करै सुरुचि बड़भागी । लहैं मनोरथ गृही विरागी ।।
अष्ट सिद्धि नव निधि की दाता । सब समर्थ गायत्री माता ।।
ऋषि,मुनि, यति,तपस्वी,योगी । आरत, अर्थी, चिन्तित, भोगी ।।
जो जन शरण तुम्हारी आवें । सो सो निज वांछित फल पावें।।
बल बुद्धि विद्या शील सुभाऊ । धन वैभव यश तेज उछाहू ।।
सकल बढ़ें उपजै सुख नाना । जो यह पाठ करै धर ध्याना ।।

दोहा— यह चालीसा भक्तियुत, पाठ करे जो कोय ।
तापर कृपा प्रसन्नता, गायत्री की होय ।।

विसर्जन

अन्त में विसर्जन मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये जो इस प्रकार है :–

उत्तमे शिखरे देवि भूम्यां पर्वत मूर्ध्नि ।
ब्राह्मणेभ्यो ह्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम् ।।

अर्घ्यदान

जल पात्र में रखे जल से सूर्य भगवान् को अर्घ्य देना चाहिए । मन्त्र इस प्रकार है :—

ॐ सूर्य देव सहस्रांशो तेजो राशि जगत्पते ।
अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणर्घ्यं दिवाकर ।

यह दैनिक साधना का क्रम है । प्रातःकाल का समय तो श्रेष्ठ माना ही गया है । सुविधा होने पर सायंकाल की भी साधना करनी चाहिए । सायंकाल सूर्यास्त होने के एक घण्टे बाद तक गायत्री जप किया जा सकता है । प्रातः सूर्योदय होने के दो घण्टे पूर्व से आरम्भ किया जा सकता है ।

—×—

जप के साथ अर्थचिंतन का घनिष्ठ सम्बन्ध

चिंतन से जीवन का कायाकल्प–

नियत ध्वनियों के समूह को मन्त्र कहते हैं । मन्त्र में ध्वनियों की ही विशेषता रहती है । इसलिए मन्त्र में स्वर पर ही विशेष ध्यान दिया जाता है । उसी से शक्तियों का विकास होता है । मन्त्रों के निर्माण का भी एक स्वतन्त्र विज्ञान है । प्रत्येक मन्त्र का गठन कुछ व्यवस्थित विधि विधान से किया जाता है कि उनका सीधा प्रभाव

हमारी सूक्ष्म ग्रन्थियों, षट् चक्रों और शक्ति केन्द्रों पर पड़ता है जिसमें सूक्ष्म जगत् के शक्ति केन्द्र जाग्रत होते हैं।

इन ध्वनि समूहों की शक्तियों के अतिरिक्त मन्त्रों में उत्तम शिक्षायें और प्रेरणाएँ भी होती हैं जिनका मनन चिन्तन करने से वह जीवन का कायाकल्प ही कर देती हैं। मन्त्र का अर्थ ही मनन, विद्या और ज्ञान होता है। यदि उसके अर्थों का मनन न किया जाए तो साधना अधूरी ही रहती है। जब इष्ट मन्त्र का जप किया जाता है, तो नेत्र बन्द करके मन्त्र के एक-एक अक्षर के अर्थ पर रुक-रुक कर बिचार करना चाहिए और मनः क्षेत्र पर उसे प्रतिष्ठित करना चाहिये जैसे वह मूर्त्त रूप में सामने आ रहे हैं और साधक उनका श्रद्धा पूर्वक ध्यान और चिन्तन कर रहा है। जिन विचारों का नित्यप्रति बार-बार चिन्तन किया जाता है, उनके मन में पहले से स्थित विचार को विजय होती है। मन में जो पहले जन्मों के संस्कार जगे होते हैं, वह उखड़ने लगते हैं और नये संस्कारों का उद्दीप्त होना आरम्भ होतेहैं और साधक अपने लिए एक नई सृष्टि का निर्माण करता है। यह तभी होना सम्भव होता है जब वह नियमित रूप से लम्बे समय तक निरन्तर उन्हीं विचार को मनोभूमि में विकसित करने का प्रयत्न करता रहता है। चिन्तन की प्रक्रिया से जिस मन्त्र में अगाध श्रद्धा और विश्वास होता है, उसके अर्थ तो जीवन का एक अङ्ग वन जाते हैं। साधना की सफलता इसी में है जव साधक मन्त्र के साथ एकाकार कर लेता है। उसकी विधि एकाग्रता पूर्वक जप के साथ अर्थ चिन्तन की है। जप की प्रमुखता तो है। उससे लाभ होता ही है परन्तु उनके अर्थों की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। साधना की पूर्णता इसी में है कि जप के साथ अर्थों का चिन्तन हो।

मन्त्र—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गोदेवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्।

अर्थ इस प्रकार है:—

ॐ—ईश्वर, भूः—प्रणव स्वरूप, भुवः —दुःख नाशक स्वः—सुख स्वरूप, तत् — इस (परमात्मा), सवितु — तेजस्वी, प्रकाशवान्, वंरेण्यं—श्रेष्ठ, भर्गो—पापों का नाश करने वाला, देवस्य—दिव्य, देने वाला, धीमहि—धारण करें, धियो—बुद्धि, यो—जो, न हमारी, प्रचोदयात्-प्रेरित करे।

गायत्री मन्त्र क उपरोक्त अर्थों का चिन्तन इस प्रकार करना चाहिये :—

ॐ रूपी परमात्मा भूः भुवः स्वः पृथ्वी अन्तरिक्ष और द्युलोक तीन लोकों के कण-कण में व्यापक रूप से समाया हुआ है। उसे सर्व व्यापक और अपनी सभी प्रकार की स्थूल व सूक्ष्म गतिविधियों का निरीक्षण मानकर कोई पाप न करें और न ही कोई बुरे विचार मन में लावे क्योंकि वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है और हमारी सभी प्रकार की क्रियाओं को देखने की सूक्ष्म दृष्टि रखता है। वह प्राणी-प्राणी में समाया है। अतः किसी से ऊँच नीच का व्यवहार न करें, सभी यहाँ समान उत्पन्न हुए हैं। पशु पक्षियों में भी उसी ईश्वर का निवास मानकर उनसे भी वही व्यवहार करना चाहिए जो हम अन्य प्राणियों से अपने लिए चाहते हैं। जब सब उसी का रूप हैं तो किसी से घृणा, ईर्ष्या द्वेष न करें, किसी को हानि न पहुँचाये किसी से धोखा, छल, कपट, बेईमानी न करें यदि हम ऐसा करते हैं तो अपने साथ ही यह दुर्व्यवहार करते हैं, क्योंकि वह हमारा ही रूप है। सभी प्राणी ईश्वरकी सकार प्रतिमाएँ हैं, उनमें केवल बाहरी ढाँचे का ही अन्तर है। अतः ॐ रूपी परमात्मा को तीनों लोकों में व्याप्त समझकर गुप्त से गुप्त पाप से भी बचने का प्रयत्न करें।

तत् वह ईश्वर, सवितु—तेज युक्त, प्रकाशवान। वंरेण्य—श्रेष्ठ, अनुकरणीय, भर्गो—पाप रहित, पवित्र, देवस्य—दिव्य स्वरूप

वाला, देने वाला, परमार्थ परायण, उसे में अपने अन्तःकरण में धारण करता हूँ। मेरे अन्तःकरण में निवास करके मुझे भी अपने अनुरूप तेजस्वी बना रहे हैं, मेरे सभी अवगुण, कुप्रवृत्ति और कुविचार भाग रहे हैं, और मैं श्रेष्ठ बन रहा हूँ, पाप नष्ट होते जा रहे हैं ईश्वर के सामीप्य से उनका मेरे अन्तः करण में निवास सम्भव नहीं हो पा रहा है। अब क्षुद्रताओं की ओर मेरा ध्यान भी नहीं जाता है। महानतायें ही मेरे जीवन का परम लक्ष्य बन गया है। स्वार्थपरता मेरे व्यवहार में नहीं रही है, परमार्थ वृत्ति मेरे जीवन का एक अंग सा ही बन गई है, मैं दिन प्रति दिन देवत्व की भूमिका में प्रविष्ट होता जा रहा हूँ। ईश्वर की निकटता से मैं तेजस्वी, श्रेष्ठ पाप रहित, दिव्य बनता जा रहा हूँ।

वह ईश्वर नः हमारी (केवल मेरी नहीं मेरे परिवार, दिव्य नगर, समाज, राष्ट्र और विश्व की), धियो-बुद्धि को, प्रचोदयात्— सद्मार्ग की ओर प्रेरित करे। सद्बुद्धि—विश्व की सबसे महानतम शक्ति है, इनकी वर्षा हम सब पर हो रही है, हम इससे ओत प्रोत हो रहे हैं और कुमार्ग से हटाकर सुमार्ग पर चल रहे हैं और अपने जीवन के परम लक्ष्य की ओर द्रुतगति से बढ़ते जा रहे हैं।

उपरोक्त अर्थों का मनन धीरे-धीरे करना चाहिए। एक-एक शब्द पर कुछ समय रुकना चाहिये, और उस शब्द का कल्पना चित्र मन में बनाना चाहिए। कुछ समय बाद यह शब्द मूर्त रूप में मन में अंकित हो जाते हैं और साधक का मन उसी के अनुरूप ढलता जाता है।

———

शक्ति और सिद्धि का सशक्त माध्यम—पुरश्चरण

[स्पष्टीकरण और विधान]

परिभाषा—

सवा लाख मन्त्रों के जप को अनुष्ठान कहा जाता है। हर वस्तु-के पकने का कुछ नियत समय होता है। काँच, ईंट, दाल, आग आदि के पकने के लिए एक नियत प्रकार के तापमान की अपेक्षा रहती है। वृक्षों पर फलों के पकने का भी एक समय रहता हैं। गर्भ में बालक जब पूरा समय ले लेता है, तब जन्म लेता है। यदि उपरोक्त क्रियाओं में नियत अवधि से पहले ही विक्षेप उत्पन्न हो जाये तो उसकी सफलता की आशा नहीं रहती। अनुष्ठान की अवधि, मर्यादा, ताप मात्रा सवा-लक्ष जप है। इतनी मात्रा में जब वह पक जाता है, तब स्वस्थ परि-णाम उत्पन्न होते हैं, पकी हुई साधना ही मधुर फल देती है।

साधक अपने मानसिक व आत्मिक विकास के लिये अपनी रुचि व श्रद्धा के अनुसार उपासना करता है परन्तु जब कुछ विशिष्ट व शीघ्र लाभ की आकांक्षा हो तो दैनिक साधना से अधिक समय तक विशेष नियमों के अन्तर्गत उसके अनुरूप विशिष्ट साधना तपश्चर्या करनी पड़ती है जिसमें साधना के साथ-साथ संकल्प व दृढ़ता का भी सम्पुट होता है। किसी विशेष उद्देश्य के लिये नियत समय में नियत जप व साधना करना और दैनिक सरल साधना से कुछ कड़े नियमों के पालन करने को ही अनुष्ठान कहते हैं। अनुष्ठान के लिए प्रक्रिया है जो कठिन कार्यों को सरल बनाती है, एक ऐसी साधना प्रणाली है जिससे विशिष्ट शक्तियों का उपार्जन होना सम्भव होता है। आध्यात्मिक भाषा में यूं कह सकते हैं कि सिद्धि प्राप्त करने के अनुष्ठान (पुरश्चरण) का

सहारा लेना पड़ता है। जितनी सिद्ध पुरुषों ने सिद्धियाँ प्राप्त की हैं, उन्होंने इसी प्रणाली का अनुकरण किया है और भविष्य में जिन्हें सिद्धि प्राप्त करना अभीष्ट हो, उन्हें भी यह मार्ग अपनाना होगा।

अनुष्ठान तीन प्रकारके होते हैं। चौबीस हजार जपका लघु अनुष्ठान उसके बाद दो सौ चालीस आहुतियोंका हवन करना होता है। सवा लाख जप का मध्यम अनुष्ठान जिसमें १०५० आहुतियों का हवन करना होता है। २४ लाख जप का महापुरश्चरण होता है उसके बाद चौबीस हजार आहुतियों का हवन करना होता हैं।

लघु अनुष्ठान को ९ दिन में २६ माला प्रतिदिन के हिसाब से पूरा करना होता है मध्यम अनुष्ठान ४० दिन में ३३ माला प्रतिदिन के हिसाब से पूर्ण होता है। २४ लाख जप को एक वर्ष में पूर्ण करने के लिये ६६ माला का प्रतिदिन जाप करना चाहिये।

शास्त्रों में पुरश्चरण की परिभाषा इस प्रकार की गई है :—

विश्वामित्र कल्प के अनुसार—

गायत्रीछन्दोमन्त्रस्य यथासंख्याक्षराणि च।
तावल्लक्षाणि कर्तव्यं पुरश्चरणकं तथा॥

गायत्री छन्द रूपी मन्त्र में जितने अक्षरों की संख्या होती हैं, उतने ही लाख मन्त्र जप को एक पुरश्चरण कहा जाता है। गायत्री मन्त्र में २४ अक्षर होते। हैं अतः गायत्री मन्त्रका पुरश्चरण २४ लाख मन्त्रोंका होता हैं।

प्रपंचसार में लिखा है :—

एवं कृत्वा तु सिद्धथं गायत्रीं दीक्षितो जपेत्।
तत्वलक्ष विधानेन भिक्षाशीविजितेन्द्रियः॥

'इस तरह से गायत्री मन्त्र की दीक्षा लेकर २४ लाख गायत्री जप विधि से करना चाहिए। भिक्षा पाकर भोजन करना चाहिए और इन्द्रियों को नियन्त्रण में रखकर हर प्रकार से संयम पूर्वक रहे।

कुलार्णव तन्त्र में कहा गया है—

पंचाङ्गानि महादेवि ! जपो-होमश्च तर्पणम् ।
अभिषेकश्च विप्राणामारा धनमपीश्वरि ! ॥

'पुरश्चरण के पाँच अंग हैं—जप, हवन, तर्पण, अभिषेक और ब्राह्मण की पूजा । इनमें से एक की भी उपेक्षा करने पर पुरश्चरण खण्डित हो जाता है ।'

पुरश्चरण से पूर्व आत्म शुद्धि की साधना—

विश्वामित्र कल्प का निर्देश हैं—

आत्मनः शोधनार्थाय लक्षत्रयं जपेद् बुधः ।
अथवाऽप्यष्टलक्षं तु गायत्री श्रुतिचोदिताम् ॥
चतुर्विशति लक्ष वा याज्ञवल्क्यमतं यथा ॥

'आत्म शुद्धि के लिए बुद्धिमान् साधक को चाहिये कि वेदोक्त गायत्री मन्त्र का तीन,आठ अथवा चौबीस लाखका जप करे । यह महर्षि याज्ञबल्क्य की उक्ति है ।

और भी कहा है—

नद्यादितीर्थे सर्वप्रायश्चित्तविधिना षडब्दं त्र्यब्दं सार्धाब्दं वा यथाशक्ति-कृच्छ्रचान्द्रायणादि सर्वप्रायश्चित्तं कृत्वा पुरश्चरणं कुर्यात् ।

'सरिता के जल में सर्व-प्रायश्चित विधान का अनुकरण करते हुए छः, तीन या डेढ़ वर्ष तक अपना सुविधा और क्षमता के अनुसार कृच्छ्रचान्द्रायणादि सर्व - प्रायश्चित करके पुरश्चरण का शुभारम्भ करे ।'

समय—

रुद्रयामल के अनुसार—

वैशाखे श्रावणे वाऽपि आश्विने कार्तिके यथा ।
फाल्गुने मार्गशीर्षे वा मन्त्रो कुर्यात् पुरस्क्रियाम् ॥

वैशाख, श्रावण, आश्विन, कार्तिक, फाल्गुन और मार्गशीर्ष मास पुरश्चरण सिद्धि के लिए उपयुक्त समय है ।"

स्मृति चन्द्रिका में उपयुक्त तिथियों का विवरण देते हुए कहा गया है :—

पूर्णिमा पंचमी चैव द्वितीया सप्तमी तथा।
त्रयोदशी च दशमी प्रशस्ता सर्वकर्मसु।

'पूर्णिमा, पंचमी, द्वितीया, सप्तमी, त्रयोदश और दशमी तिथियाँ पुरश्चरण की सफलता के लिए प्रशस्त मानी गई ।'

निषिद्ध समय की चेतावनी देते हुए विश्वामित्र कल्प में कहा गया है :—

ज्येष्ठा-ऽऽषाढ़ो भाद्रपदं पौषं तु मलमासकम्।
अङ्गार शनवारौ तु व्यतिपातं च वैधृतिम्॥
अष्टमीं नवमीं षष्ठीं चतुर्थीं च त्रयोदशीम्।
चतुर्दशीअमावास्यां प्रदोषं च तथा निशि॥
यमा-ऽग्नि-रुद्र-सर्पेंद्र-वसु-श्रवण-जन्मभम्।
मेष-कर्क-तुला-कुम्भ-मकरा-ऽलिक-लग्नकम्॥
सर्वाण्येतानि वर्ज्याणि पुरश्चरणकर्मणि।
सन्ध्या-गर्जित-निर्घोष भूकम्पोल्का-निपातने॥
एतानन्यांश्च दिवसान स्मृत्युक्तांश्च परित्यजेत्।

'ज्येष्ठ, आषाढ़ भादों पौष और मल मास में पुरश्चरण नहीं करना चाहिये। सफलता अशक्य रहती है। मंगल और शनि के दिन व्यतिपात व वैधृति योग, अष्टमी, नवमी, षष्ठी, चतुर्थ, त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावस्या, प्रदोष, रात का समय, भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा ज्येष्ठा, धनिष्ठा, श्रवण और जन्म नक्षत्र मेष, कर्म तुला, कुम्भ, मकर और वृश्चक यह सभी पुरश्चरण कार्य में वर्जित माने गये हैं। संध्या समय जब बादल गरजा हो, भूकंप, उल्कापात और स्मृतियों में जिन मास तिथियों, योग, नक्षत्र आदि को वर्जित माना गया है उस समय पुरश्चरण को आरम्भ न करे ।

अनुष्ठान शुभदिन और मुहूर्त देखकर शुरू करना चाहिये। प्रतिपदा,

पंचमी, एकादशी पूर्णिमा रविवार, गुरुवार शुभ तिथियाँ मानी जाती है। लघु अनुष्ठान चैत्र व आश्विन की नवरात्रियों में उत्तम रहते हैं।

स्नान–

स्नान से शरीर शुद्धि होती है। स्नान करते समय जप का निम्न विधान उपयुक्त माना गया ताकि शरीर शुद्धि के साथ आत्म शुद्धि के लक्ष्य की ओर प्रगति हो–

स्नात्वा नु शतगायत्र्या शतमन्तर्जले जपेत् ।
शतेनापस्ततः पीत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।
चान्द्रायणातिकृच्छ्रस्य फलं प्राप्नोतिनिश्चितम् ।।

स्नान करते हुए शत गायत्री का जप करना चाहिए। इसी तरह जल में खड़े होकर एक-एक गायत्री मन्त्र का उच्चारण करते हुए सो बार आचमान करे और यह भावना करे कि इसके ग्रहण करने पर पवित्र हो रहा हूँ। इससे सर्व पापों का नाश होता है। गायत्री जप करते हुए आचमन करने से चान्द्रायण और कृच्छ्र स्तान्तपन के समान परिणाम निश्चय पूर्वक उपस्थित होते हैं, यह शास्त्रोंका आश्वासन है।

स्नान–

पुरश्चरण के लिये स्थान की खोज व नियुक्ति भी एक आवश्यक अंग है। विश्वामित्र कल्प में उत्तम स्थान के चुनाव के लिये निर्देश देते हुए कहा है :–

पर्वताग्रे नदीतीरे विल्वमूले जलाशये ।
गोष्ठे देवालयेऽश्वत्थे उद्याने तुलसीवने ।।
पुण्यक्षेत्रे गुरोः पार्श्वे चित्तोएकाग्रस्थलेऽपिच ।
पुरश्चरणकृन्मत्री सिध्यत्येव न संशयः ।।

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि पर्वत पर, सरिता किनारे, विल्व मूले, जलाशय, गोष्ठ, देवस्थान, पीपल, बाग, तुलसी वन, पुण्य क्षेत्र गुरु के सान्निध्य में और जिस स्थान पर स्वभावतः चित्त की एकाग्रता

होती हो, ऐसा स्थान पुरश्चरण सिद्धि के लिये उपयुक्त रहता है और निश्चय ही सफलता मिलती है।

नारद पुराण में विभिन्न स्थानों का मूल्यांकन इस प्रकार किया गया है :—

शिवस्य सन्निधाने च सूर्याग्न्योर्वा गुरोरपि।
दीपस्य ज्वलितस्याऽपि जपकर्म प्रशस्यते ॥
गृहे जपं समं विद्याद् गोष्ठे शतगुणं भवेत्।
नद्यां शतसहस्रं स्यादनन्तं शिवसन्निधौ ॥
समुद्रतीरे च ह्रदे गिरौ देवालयेषु च।
पुण्याश्रमेषु सर्वेषु जप कोटिगुणो भवेत् ॥

'शिव के निकट, सूर्य अग्नि और गुरु के पास, या जलते हुए घृत दीपक को सामने रखकर जप करना प्रशस्त माना गया है। अपने घर में जप करने से यदि समान फल माना जाए तो गोष्ठ में सौगुना, सरिता किनारे लाख गुना, शिव के सान्निध्य में अनन्त गुना, और समुद्र तट, जलाशय, पर्वत, देवस्थान और सभी प्रकारके पुण्याश्रमों में साधना करने से करोड़ गुना लाभ प्राप्त होता है।'

आसन—

शारदा तिलक में आसन का विधान इस प्रकार निश्चित किया गया है :—

कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धि-र्मोक्षश्री र्व्याघ्रचर्मणि।
स्यात् पौष्टिकं च कौशेयं शान्तिकं वेत्रविष्टरम् ॥
वंशासने व्याधिनाशः कम्बले दुःखमोचनम्।
सर्वाभावेदत्वासनार्थं कुशविष्टरमिष्यते ॥

"कृष्ण मृग चर्म पर बैठकर साधना करने से ज्ञान सिद्धि होती है व्याघ्र चर्म पर मोक्ष प्राप्ति होती है। कुशासन पौष्टिक सिद्ध होता है। बेंत का आसन शान्तिदायक, वंशासन व्याधिनाशक और कम्बल का

आसन दुःख मोचन सिद्ध होता है। इनमें से जब कोई आसन भी उप-लब्ध न हो तो कुशासन ही श्रेष्ठ मानकर ग्रहण कर लेना चाहिए।"

माला—

शारदा तिलक में लिखा है—

रुद्राक्षः श्वेतपद्माक्षंमाले तु अखिले जपेत् ।
अतिस्थूलोऽतिसूक्ष्मश्च स्फुटितोभृगुरुर्लघुः ॥
भिन्नः पुरा धृतो जीर्णो रुद्राक्षो वरदः स्मृतः ।
अष्टोत्तरशतैं माला प्रशस्ता सर्वकर्मसु ॥
गुरु प्रकाशयेद् धीमन् मन्त्रं नैव प्रकाशयेत् ।
अथ मालां च मुद्रां च गुरोरपि न दर्शयेत् ॥

रुद्राक्ष और सफेद पद्म की माला से अति सूक्ष्म, अति, स्थूल, फूटा हुआ अथवा छोटा-बड़ा सभी तरह का जप होता है। रुद्राक्ष जीर्ण और फूटा हुआ हैं। तो भी उससे साधना की जा सकती है। जप कर्म में प्रयुक्त माला में १०८ दाने होते हैं। वैसे तो इसे गुप्त ही रखना चाहिए परन्तु अपने मार्गदर्शन गुरु की माला की संख्या दिखाने में कोई हानि नहीं है परन्तु मन्त्र का प्रकाश गुरु को भी नहीं करना चाहिए क्योंकि माला और जप मुद्रा गुप्त रूप से करने का विधान है। उन्हें गुरु को भी नहीं दिखाया जाता।"

शारदा तिलक में माला संस्कार का विधान इस प्रकार वर्णित है :—

क्षालयेत् पञ्चगव्येन सद्योजातेन तज्जलैः ।
चन्दना-ऽगुरु-गन्धाद्यैं र्वामदेवेन घर्षयेत ॥
धूपयेत्तामघोरेण लेपयेत पुरुषेण तु ।
मन्त्रयेत् पंचमेनैव प्रत्येकं तु शतं शतम् ॥
मेरुं च पञ्चमेनैव तथा मन्त्रेण मन्त्रयेत् ।
येन प्रातिष्ठिता माला तमेवं तु मनु जगत् ॥

प्रथम माला को पंचगव्य से और फिर जल से निम्न मन्त्र का उच्चारण करते हुए धोए :—

ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः ।
भवे भवेनाति भवे भवस्व माँ भवोद्भवाय नमः ॥

अगुरु और गन्ध का निम्न मन्त्र से घर्षण करे :—

ॐ वाम देवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः । कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय । नमो बलप्रमथनाय: नमःसर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः ॥

निम्न मन्त्र से धूप दें :—

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोर-घोरतरेभ्यः ।
सर्वभ्यः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्रेभ्यः ॥

इस मन्त्र से अनुलेपन करना चाहिए :—

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि ।
तन्नो रुद्रःप्रचोदयात् ॥

निम्न मन्त्र से सौ-सौ बार अभिमन्त्रित करे :—

ॐ ईशानः सर्वविद्यानाभीश्वरः सर्वभूतानाम् ।
ब्रह्माऽधिपतिर्ब्रह्मणोऽधि पतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु—
सदा शिवोम् ॥

मेरु को भी उपरोक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित करना चाहिए । जिस मन्त्र से साधना करना अभीष्टहो, उस मन्त्र से माला को प्रतिष्ठित करें। इसके बाद इस मन्त्र का जप करें ।

अन्न शुद्धि—

अयाचितोञ्छ-शुक्लश्च भिक्षावृत्ति-चतुष्टयम् ।
तान्त्रिकैर्वैदिकैश्चैव अन्नशुद्धिः प्रकीर्तिता ॥
अन्नानुसारिकर्माणि बुद्धिः कर्मानुसारतः ।
'पललस्पर्शमात्रेण तपो दहति निश्चितम् ॥

साधना में अन्न शुद्धि का विशेष ध्यान चाहिए क्योंकि मन्त्र सिद्धि का यह एक आवश्यक अंग है । बिना माँग पर प्राप्त किया हुआ खेत में गिरे दानों को कण-कण करके संग्रह किया हुआ । (जैसे कार्यं में संलग्नसाधकों को ही भिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था । भिक्षा को आय का साधन बनाना तो राष्ट्रीय अपराध है । अन्न शुद्धि तान्त्रिक वे वैदिक विधान से करनी अभीष्ट है। क्योंकि जैसा अन्न होता है, वैसा ही मानव का कर्म होता है और कर्म के अनुसार ही उसकी बुद्धि निर्मित होती है ! पुरश्चरण काल में माँस का स्पर्श भी न करे क्योंकि इसके तप का नाश होता है ।

नियमों का विशेषण करते हुए शास्त्र का आदेश है :—

अशक्तो वाऽपि शक्तो वा आहारे नियते कृते ।
षण्मासे तस्य सिद्धिः स्याद गुरुभक्तिरतः सदा ।।
एकाहं पञ्चगव्याशी ह्यैकाहं मारूताशनः ।
एकाहं ब्राह्मणान्नाशी गायत्रीजपकर्मणि ।।

गायत्री साधना से संलग्न साधन अशक्त हों या सशस्त, यदि वह आहार के नियमों का पालन करते हुए गुरु में श्रद्धा बनाये रखे तो छः मास में ही सिद्धि प्राप्त होना सम्भव है । गायत्री पुरश्चरण से पूर्व माधक को पहले दिन पंचगव्य पीना चाहिए, दूसरे दिन वायु को ही आहार मन्त्र मानना चाहिए अर्थात् कुछ भी अन्न ग्रहण न करे, तीसरे दिन ब्राह्मण का पवित्र अन्न स्वीकार करके साधना आरम्भ करे ।

यथा शक्ति अस्वाद व्रतका पालन करना चाहिये । नमक व मिठाई का त्याग हो सके तो करना चाहिए दोनों में एक का भी त्याग हो सकता है अन्न त्याग का भी व्रत लिया जा सकता हैं । दोनों समय दूध गा फलाहार लेना चाहिए। एक समय फलाहार व एक समय अन्नाहार भी लिया जा सकता हैं ।

वर्जित आहार की चर्चा करते हुए शास्त्र में कहा गया है :—

लवणं क्षारमाम्लं च गृञ्जनादि निषेधितम् ।
ताम्बूलं च द्विभुक्तिञ्च दुष्टवासं प्रमत्तताम् ॥
श्रुति-स्मृतिविरोधं च जपं रात्रौ विवर्जयेत ।
श्राद्धादरनुरोधेन जपं यदि त्यजेन्नरः ॥
स भवेद् देवताद्रोही पितृन् सप्त नयेदध- ।

नमक, क्षार, खट्टा व गाजर आदि वर्जित माने गये हैं । ताम्बूल का सेवन, दो बार भोजन ग्रहण करना, दुष्ट व्यक्तिका सङ्ग, पागलपना वेद स्मृति का अनावश्यक विरोध और उनके सम्बन्ध में तर्क-वितर्क करना और रात को जप करना वर्जित माना गया है । श्राद्धादि का करना साधक यदि जप नही करता है तो उसे देवता द्रोही माना जाता है। इसके दण्ड स्वरूप उसकी सात पीढ़ियाँ नरक में जाती हैं ।

विशिष्ट नियम---

भूशय्या ब्रह्मचारित्वं मौनचर्यास्तथैव च ।
नित्यं त्रिषवणं स्नानं क्षुद्रकर्म विवर्जनम् ॥
नित्यपूजा नित्यदानमानन्दं स्तुति कीर्तनम् ।
नैमित्तिकार्चनं चैव विश्वासी गुरु-देवयोः ॥
जपनिष्ठा द्वादशैते धर्माः स्युर्मन्त्रसिद्धिदाः ।
नित्यं सूर्यमुपस्थाय तस्य चाऽभिमुख जपेत् ॥
देवताप्रतिमादौ वा वह्नौ वाऽभ्यर्च्य तन्मुखे ॥
स्नान-पूजा-जप-ध्यान-होम-तर्पण-तत्परः ॥
निष्कामो देवतायां च सर्वकर्म निवेदकः ।
एवमादींश्च नियमान् पुरश्चरणकृच्चरेत् ॥

यह बारह नियम जप साधना और सिद्धि में सहायक माने गये हैं। इनका त्याग सिद्धि का त्याग है । भूमि शयन, ब्रह्मचर्य व्रत का धारण, मौन रहना, नित्य तीन बार स्नान करना, निम्न कोटि के कार्यों का त्याग, नित्य पूजा, नित्य दान देना, इष्टदेव की स्तुति कीर्तन

श्रद्धापूर्वक करना, नैमित्तिक अर्चन, गुरु व देवता में दृढ़ विश्बास और जपनिष्ठा से ही साधना सिद्धि की ओर बढ़ते हैं। कुछ अतिरिक्त नियमों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि नित्य प्रति सूर्य की परिक्रमा करें और सूर्य के सामने होकर इष्टदेवों की मूर्ति और अग्नि में सूर्य का अर्चन करना चाहिए। स्नान, पूजा, जप, ध्यान हवन, तर्पण में तत्परता पूर्वक संलग्न रहे और निष्काम रूप से देवता में सभी कर्मों का निवेदन करना चाहिए । इन्हें नित्य के नियम मानना चाहिए ।

पुरश्चरणकाल में निम्न नियमों का भी विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए :—

जहां तक सम्भव हो, खड़ाऊ का प्रयोग करना चाहिए और चमड़े के जूतों का परित्याग करना चाहिये । सर के बाल न कटावें । ठोढ़ी के बाल भी अपने हाथ से ही बनाने चाहिए । अपने शरीर और वस्त्रों से दूसरों का स्पर्श कम से कम होने दें । इन दिनों दूसरों से कम से कम सेवा लें अधिकतर काम स्वयं ही करने चाहिये । नित्यप्रति उत्तम ग्रन्थों का स्वाध्याय करना चाहिये । स्वाध्यायके सार का मनन, चिन्तन करना चाहिये । अनुष्ठान के दिनों में सत्य बोले, किसी की निन्दा न करें, अपशब्द न कहें, अनावश्यक विवाद न करें, किसी को हानि न पहुँचाये धन, प्राप्ति की अनाधिकार चेष्टा न हो, तमोगुणी प्रवृति वाले व्यक्तियों से अधिक मेलजोल न हो, सात्विक वातावरण व सात्विक विचार व व्यवहार हो । इष्ट मन्त्र को संस्कारित करके पुरश्चरण करना चाहिए । मन्त्र जितने अक्षर का है, उतने ही लांख जाप करने से सिद्धि की प्राप्ति बताई गई है । जिस समय पुरश्चरण आरम्भ किया जा रहा हो, यह संकल्प करना चाहिए कि आज से इस समय तक मन्त्र साधना शुरू करता हूं । फिर नित्य प्रति ऐसा संकल्प करना चाहिए । नित्य निश्चित समय और संख्या का जप करे । कभी, कम कभी अधिक यह क्रम ठीक नहीं है ।

जप—

विश्वामित्र कल्प में जप का विधान इस प्रकार वर्णित है :—

ॐ कारं पूर्वमुच्चार्य भूर्भुवः स्वः तथैव च ।
गायत्रीं प्रणवान्तां च मध्ये त्रिप्रणव तथा ।
एवं नित्यं जपं कुर्याद् ब्राह्मणो विप्रपुङ्गवः ।
भिन्नपादा तु गायत्री ब्रह्महत्याप्रणाशिनी ।
अभिन्नपादा गायत्री ब्रह्महत्यां प्रयच्छति ।
अच्छिन्न पादगायत्रीजपं कुर्वन्ति ये द्विजा ॥
अधोमुखाश्च तिष्ठन्ति कल्पकोटिशतानि च ।
धर्मशास्त्र-पुराणेषु इतिहासेषु सुव्रत ! ॥
पञ्चप्रणव संयुक्तां जपेदित्यनुशासनम् ।
जपसंख्याष्टभागान्ते पादो जाप्यस्तुरीयकः ॥
स द्विजः परमो ज्ञेयः परं सायुज्यमाप्नुयात् ।
अन्यथा प्रजपेद्यस्तु स जपो विफलो भवेत् ॥
प्रारम्भदिनमारभ्या समाप्तिदिवसावधि ।
न न्यून नातिरिक्तं च जपं कुर्याद् दिने दिने ॥
नैरन्तर्येण कुर्वीय स्व स्ववृत्ति न लिम्पयेत् ।
प्रातराम्य विधिवज्जपेन्मध्यन्दिनावधि ॥
मेनः संहरणं शौचं यान मन्त्रार्थचिन्तनम् ॥

पहले ओंकार का, फिर भूर्भुवः स्व का, फिर ओंकार का और उसके बाद गामत्री मन्त्र का उच्चारणक रना चाहिए। इसका क्रम इस प्रकार है :—

ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं ॐ भर्गो देवस्य धीमहि ॐ धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ ।

इस तरह से गायत्री के अन्त में एक और मध्य में तीन ओंकार लगाकर जप करना चाहिये। श्रेष्ठ ब्राह्मण को इसी विधि के अनुसार जप करना चाहिये। यदि गायत्री के तीन पादों को अलग-अलग करके

उच्चारण किया जाये तो इस विधान को ब्रह्म हत्याका नाश करने वाला बताया गया है। गायत्री के पादों को अलग करके जो जाप नहीं करता, वह ब्रह्महत्या का भागी होता है। जो द्विज गायत्री केपादों को अलग नहीं करता और एक पद में ही उच्चारण करता है, उसे कल्प-कोटि वर्षों तक नरक में रहना पड़ता है। धर्मशास्त्र पुराण और इति-हास का यही आदेश है कि उपरोक्त विधि के अनुसार पाँच ओंकार लगाकर गायत्री का जप करना चाहिये। जब जप पूर्ण हो जाये तो चौथे पाद—(धियो नः प्रचोदयात) अपनी सुविधानुसार जप करे। इस तरह जो द्विज जप करता है, उसे सायुज्यमुक्ति का फल मिलता है। जो साधक इस विधि का अनुकरण नहीं करते, उनका जप असफल माना जाता है। आरम्भ से अन्त तक जप संख्या में न्यूनाधिकता नहीं होनी चाहिये जप संख्या एक समान चलनी चाहिये और नित्य विधि का त्याग नहीं करना चाहिये। प्रातः से आरम्भ का मध्यान्ह तक जप किया जा सकता है। साधक मन को नियन्त्रण में रखे। जप के साथ मन्त्र का अर्थ चिन्तन भी होना चाहिये।

एक चौकी पर इष्टदेव की प्रतिमा या सुन्दर चित्र स्थापित करना चाहिये। निराकार उपासक दीप शिखा को प्रतिष्ठित करे। इन्हें पुष्पों पर प्रतिष्ठित करके आराध्य शक्ति की भावना करनी चाहिये। नित्य-आवाहन और विसर्जन करना चाहिये। इसमें भावना की ही प्रधानता रहती हैं। जहाँ जप करना हो; वहाँ का वातावरण सात्विक हो। स्नानादि से निवृत होकर, स्वच्छ वस्त्रों को ग्रहण करके पूर्व की ओर मुख करके प्रातःकाल साधना आरम्भ करनी चाहिये। धूप और दीपक निरन्तर जलते रहें। उपासना में श्रद्धा की प्रमुखता रहती है। अतः जप प्रेम, भक्ति और श्रद्धा से करना चाहिये। इष्टदेव के चित्र में उनके प्रत्येक अंग को भली प्रकार देख कर ध्यान का अभ्यास करना चाहिये। अभ्यास से एकाग्रता में वृद्धि होती जायेगी।

अनुष्ठान के अन्त में हवन व तर्पण मार्जन करना चाहिये और यथा सम्भव दान व ब्रह्मभोज करना चाहिये ।

शारदा तिलक में हवन का विधान इस प्रकार दिया गया है :—

क्षीरोदनं तिला दूर्वाः क्षीरद्रुमसमिद्वरान् ।
पृथक् सहस्त्रितयं जुहुयान्मन्त्रसिद्धय ॥

गो दुग्ध, पायस तिल, दूर्वा, दुधार, वृक्षों—बड़, गूलर, पीपल, पापड़ की समिधाओं से हवन करना चाहिये । इनमें से प्रत्येक में से तीन-तीन हजार आहुति देकर कुल २४ हजार आहुति देनी चाहिये जो तन्त्र सिद्धि के लिये आवश्यक है ।

विश्वामित्र कल्प के अनुसार विधान इस प्रकार है :—

तिलैः पत्रै प्रसूनैश्च यवैश्च मधुनाप्लुतैः ।
कुर्यात् दशांशतो होमं ततः सिद्धी भवेन्मुनि ॥

मन्त्र की सिद्धि के लिये तिल, पत्र पुष्प, से शहद से युक्त जप दशांश हवन करना चाहिये ।

शास्त्र का विधान है कि जप का दशांश हवन, हवन का दशांश तर्पण तर्पण का दशांश मार्जन और मार्जन का दशांश ब्रह्मभोज करना चाहिये । सिद्धि प्राप्त करने का यही विधान है । उपरोक्त नियमों का पालन पुरश्चरण में करना ही चाहिये ।

—×—

सिद्धि में एकाग्रता की असाधारण भूमिका

गायत्री सिद्धि के लिये मन की एकाग्रता आवश्यक है। मन की चंचलता इसका सहज स्वभाव है। इधर-उधर भागने में उसे आनन्द आता है। किसी के स्वभाव को बदलना बहुत कठिन कार्य है। मन जब तक विषय वासनाओं में लिप्त रहता है, तब तक उसकी चंचलता में गति रहती है। परन्तु उनमें संयम का अभ्यास करने पर वह धीरे-धीरे स्थिर होने लगता है। कबीरने ने माला द्वारा जप साधन का विरोध इस आशय से किया था कि यदि कर का मनका फेरने के साथ-साथ मन निर्विषय होकर स्थिर नहीं होता है, तो उस साधना का क्या लाभ है? तो मन को फेरने में ही है जिससे स्थिरता और सिद्धि हो।

कबीर की चेतावनी को लोग माला का विरोध मान लेते हैं। वास्तव में उन्होंने मन की एकाग्रता की ओर विशेष ध्यान देने की ओर प्रेरित किया है। साधारणतः लोग नही जानतेकि मन संसार की महानतम शक्ति है। संसार के सभी दृश्य चमत्कार इसी की एकाग्रता का परिणाम है। यदि इसका उचित मूल्यांकन किया जाता तो धन लाभ के लिये कामुक व भ्रष्ट साहित्य का प्रकाशन, अश्लीलता के प्रसार के लिये कामुक चलचित्रों का निर्माण, चोरी, डकैती, भ्रष्टाचार, बेईमानी, मिलावट जैसे कुकृत्य न होते रहते और मानव इसी गोरखधन्धे में घूमता रहकर अपने मूल्यवान जीवन को नष्ट न कर देता।

मन का मूल्यांकन—

मन का उचित मूल्यांकन हमारे शास्त्रों ने किया है। यजुर्वेद १७।२५ में मनन शक्ति से संसार की उत्पत्ति बताई गई है। कहा है सूर्य उत्पादक सर्वधारक ईश्वर ने मनन शक्ति से निश्चय ही जब जल को तथा इन दोनों बने हुये द्यु लोक तथा पृथ्वी लोक को उत्पन्न किया

तब ही इन दोनों के अन्तः प्रदेश को भी दृढ़ किया। अनन्तर उत्कृष्ट द्यावा पृथ्वी विस्तार को प्राप्त हुई।' यजुर्वेद के तृतीय अध्याय के ५४ मन्त्र में प्रार्थना है कि वह 'पुनः वह मनन शक्ति हमको सत्कर्मके लिये, बल के लिये संजीवनी के लिये और चिरकाल पर्यन्त परमात्मा के दर्शन के लिये भली-भाँति प्राप्त हो।' ५५ आगे के मन्त्र में प्रार्थना है कि 'हे विद्यादान् से पालन करने वाले महानुभावो ! आप तो देवत्व गुणयुक्त श्रेष्ठ विद्वान हैं,हमें पुनः मनन शक्ति प्रदानकरें जिससे हमसत्य भाषण आदि व्रतों से युक्त जीवन बना सकें।" यदि हम अपनी मनन शक्तिको जीवन में सत्य व्रतों को धारण करने में लगा दें तो काम, क्रोध, लोभ मोह, मद, मत्सर, चिन्ता, कलह, क्लेश, दुःख ईर्ष्या, द्वेष-राग आदि हमारे शत्रु जो हमें रात दिन जलाते रहते हैं, अपने प्रतिकूल वातावरण देखकर अनुकूल वातावरणमें जानेकेलिये उत्सुक रहेंगे और उनके छोड़ने पर हमारे ऊपर निरन्तर सुख शान्ति एवं आनन्द की वर्षा होती रहेगी।

उपनिषद् भी इस सम्बन्ध में मौन नहीं है। वृहदारण्यकोपनिषद् में कहा है कि 'वह मन से ही देखता है और मन से ही सुनता है। (इसलिए कहे देते हैं—मेरा मन अन्यत्र था, इसलिए मैंने नहीं सुना) मन अन्तरिक्ष लोक है, मन यजुर्वेद है, मन पितृगण है मन ही पिता है, जो कुछ जिज्ञासा के योग्य है, वह मन का रूप है। इस मन का द्युलोक शरीर है, ज्योतिर्मय वह आदित्य है। जनक के यज्ञ में याज्ञवल्क्य और अश्वल के संवाद में याज्ञवल्क्य ने कहा 'ब्रह्मा का यज्ञ मन ही है और जो मन है, वही यह चन्द्रमा है, ब्रह्मा है और वह मुक्ति है और वह अति मुक्ति है।' इसी सम्वाद में आगे कहा है 'मन ही देवता है। मन अनन्त है, अतः उस मन से यजमान अनन्त लोक भी जीत लेता है।' मन ज्योति (संकल्प विकल्प की साधना) है।

गीता १०।१२ में भगवान् ने कहा है, इन्द्रियों में मन मैं हूँ। प्रश्नोपनिषद २।२ में भी मन को देवता कहा है। छान्दोग्योपनिषद में सनत्कुमार जी ने नारद जी को उपदेश देते हुए कहा—मन' ही आत्म

है, मन ही लोक है और मन ही ब्रह्मा हैं । तुम मन की उपासना करो। वह जो कि मन की 'यह ब्रह्म है' इस प्रकार उपासना करताहै । उसकी जहाँ तक मन की गति है, वहाँ तक स्वेच्छागति हो जाती है ।' मुक्तिकोपनिषद में कहा है "सहस्रों अंकुर त्वचा, पत्ते, शाखा एवं फल से मुक्त इस संसार वृक्ष का यह मन ही मूल है । यह निश्चित हुआ और वह मन संकल्प रूप है। संकल्प को निवृत्त करके उस मनस्तत्व को सुखा डालो जिससे वह संसार वृक्ष भी निराश सूख जाए ।" तैत्तिरीयोपनिषद में भी मन को ब्रह्म कहा है और कहा है कि 'सचमुच मनसे ही समस्त प्राणी उत्पन्न प्राणी उत्पन्न होकर मन से ही जीते हैं । तथा इस लोक के प्रयाण करते हुए (अन्त में) मन में ही सब प्रकार प्रविष्ट हो जाते हैं ।"

स्वामी विवेकानन्द का वचन है "मन की दुर्बलता सब प्रकार के बन्धनों की जड़ है । जब तक हमारा मन अशक्त नहीं हुआ है तब तक दुःखों की क्या मजाल है जो वह हमारा मन अशक्त नहीं हुआहै तब तक शक्ति हमारा जीवन और दुर्बलता ही मृत्यु है । । मनोबल ही सुख सर्वस्व, चिरन्तन जीवन और अमृतत्व तथा दुर्बलता ही रोग समूह दुःख और मृत्यु है ।

मन इन्द्रियां स्वाधीन कर, तज द्वेष देष दे तज राग दे ।
सुख शांति का यह मार्ग है, श्रुति सन्त कहते हैं सभी ॥

मैत्रेयी उपनिषत् ५।७ में कहा है 'प्रशान्त मन वाला पुरुष जब आत्मा में स्थिति लाभ करता है, तब उसे अक्षय आनन्दकी प्राप्ति होती हैं ।" महोपनिषद् अमृत के पास करने से तथा लक्ष्मी के आलिंगन से वैसा सुख प्राप्त नहीं होता जैसा सुख मनुष्य मन की शान्ति से प्राप्त करता है ।" कबीर—'जब में बैरी कोई नहीं जो मन शीतल होय ।' मनु० ४।१६० "जो दूसरोंकी (बाह्य वस्तुओं की) अधीनतामें है वह सब दुःख है और जो अपने (मन के) अधिकार हैं. वह सुख है । यही सुख दुःख का चिन्तन न करना ही दुःख निवारण की अचूक औषधि है ।'

भर्तृहरि "मन प्रसन्न होने पर क्या दरिद्रता और क्या अमीरी दोनों समान है" प्रसिद्ध यूनानी तत्ववेत्ता प्लेटो का कहना है कि "शारीरिक अर्थात् बाह्य आदि भौतिक सुख की अपेक्षा मन का सुख श्रेष्ठ है ।"

इसलिए शास्त्रों ने मन के सम्बन्ध में अत्यन्त सावधान रहने की प्रेरणा दी है । उसे अपने नियन्त्रण में रखने का आदेश दिया है । हमारे ऋषि भली प्रकार जानते थे कि मन की शक्तियों को नष्ट करना अपने जीवन का नाश करना है और उसे एक निश्चित दिशा में व्यवस्थापूर्वक लगाना सफलता की कुन्जी है ।आध्यात्मिक भाषा में इसे मन का निग्रह कहते हैं प्रत्येक कार्य की सफलता के लिए मनोनिग्रह आवश्यक है क्योंकि अनुभव बताता है कि मन के निग्रह के द्वारा इन्द्रियों का निग्रह करना सब साधनों का मूल है । यह शान्ति और आनन्द के भण्डार खोल देता है । यही ब्रह्म दर्शन की कुञ्जी है । गायत्री साधना का यह आवश्यक अङ्ग है ।

विज्ञान की दृष्टि में—

वैज्ञानिकों ने भी मन की शक्ति की नाप तोल करने का प्रयत्न किया है । उसके अनुसार, मन भौतिक शरीर का चेतन है — आइन्स्टीन के शक्ति सिद्धान्त के अनुसार कुछ भार वाले एक परमाणु में ही प्रकाश की गति × प्रकाश की गति अर्थात्....१८६०० × १८६००० केलोरी शक्ति उत्पन्न होगी । १ पौण्ड पदार्थ की शक्ति १४ लाख टन कोयला जलाने में जितनी शक्ति मिलेगी इतनी होगी । यद्यपि पदार्थ को पूरी तरह शक्तिमें बदलना सम्भव नहीं हुआ तथापियदि इस शक्ति को पूरी तरह शक्ति में बदलना सम्भव होता तो एक पौण्ड कोयले जितना द्रव्य होता है, उसे शक्ति में बदल देने से सम्पूर्ण अमेरिका के लिए १ माह तक के लिए बिजली तैयार हो जाती । मन शरीर के द्रव्य की विद्युत शक्ति है । मन की एकाग्रता जितनी बढेगी शक्ति उतनी ही तीव्र होगी । यदि सम्पूर्ण शरीर को इस शक्ति में बदला जा सके तो ११० पौण्ड भार वाले शरीर को विद्युत शक्ति अर्थात् मन को

सामर्थ्य इतनी अधिक होगी कि वह पूरे अमरीका को लगातार १० वर्ष तक विद्युत देता रह सके। इस प्रचण्ड क्षमता से ही भारतीय योगी, ऋषि, महर्षि शून्य आकाश में स्फोट किया करते थे और वे किसी को एक अक्षर का उपदेश दिये बिना अपनी इच्छानुसार अपने संकल्प बल से समस्त भूमण्डल की मानवीय समस्याओं का संचालन और नियन्त्रण किया करते थे। शेर और गाय को एक ही घाट का पानी पिला देने की प्रचण्ड क्षमता इसी शक्ति की थी। मन को ही वेद में "ज्योतिषा ज्योति" अर्थात् प्रकाश का भी महाप्रकाश कहा है। डा० बैनेटर्न ने उसे एक महान-विद्युत शक्ति (माइन्ड इज ए ग्रेट इलेक्ट्रिकल फोर्स) से सम्बोधित किया है ।

ऊपर मन की शक्तियों का जो वर्णन किया गयाहै, वह एकाग्र हुए मन की शक्ति का परिचय है मन की शक्तियों को विकसित करने के लिए उसका एकाग्र होना आवश्यक है। इकाग्र मन के लाभों का वर्णन शास्त्रों में इस प्रकार है :–

एकाग्रता का परिणाम–

ऋग्वेद–"हे मनुष्य ! यदि तू मन को स्थिर करने में समर्थ हो जाए तो तू स्वयं ही समस्त बाधाओं और विपत्तियों पर विजय पा सकता है।" श्री बिजय कृष्ण गोस्वामी 'मनोनिग्रह सबसे बड़ी विद्या है। यही सब सुखों का मूल है।" महोपनिषद् "निग्रह किया हुआ मन अनायास प्राप्त हुए थोड़े से भी भोग को जो विस्तार को नहीं प्राप्त हुआ है, क्लेशदायन होने के कारण बहुत अधिक समझता है।' मनु० ।१। "स्मृतिकार ऋषि अपने मन को एकाग्र करके ही धर्म अधर्म बतलाया करतेथे।" गीता ३।६। "जोमूढ़ (हाथ पैर आदि)कर्म इन्द्रियों को रोक कर मन से इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन किया करता है, उसे मिथ्याचारी तथा दम्भी कहते हैं परन्तु हे अर्जुन ! उसकी योग्यता विशेष अर्थात् श्रेष्ठ है कि जो मन से इन्द्रियों का संकलन करके केवल कर्म इन्द्रियों के द्वारा अनासक्त बुद्धि से कर्मयोग का आरम्भ करता है।

सन्त तुकाराम 'ईश्वर के पास कोई मोक्ष की गठरी नहीं धरी है कि वह किसी के हाथ में दे दें। यहां तो इन्द्रियों को जीतना और मन को निर्विषय करना ही मुख्य उपाय है।" भागवत में जड़भरत ने राजा रहुगण को उपदेश देते हुए कहा "विषय आसक्त मन जीव को संसार संकट डालने वाला है और विषयहीन होने पर वही उसे शांतिमय मोक्ष पद को प्राप्त करा देता है।" योगवसिष्ठ "सबसे उत्तम परम सम्पदा का अर्थ अपने मन के निग्रह से सिद्ध होता है। अपने मन का निग्रह करना ही बीज है। जो चेतन रूपी क्षेत्र से प्रफुल्लित होकर फल दायक होता है। सम्पूर्ण पृथ्वी की शिला मात्र बड़ी बड़ी मणि भी होवें तो भी मन के समान नहीं है।"

यजुर्वेद ११।१ "योगैश्वर्य का सम्पादन प्रथम मन को एकाग्र करता हुआ बुद्धिइन्द्रियों और कर्मेन्द्रिय को तत्वज्ञान के लिए आत्म ज्योति का साक्षात्कार करके पार्थिव पदार्थों से ऊपर उठाताहै।" ११।२ (पूर्वोक्त) योगी विद्वान् की अध्यक्षता में हम भी एकाग्र मन से विशेष सुख लाभ के लिए अपनी सामर्थ्य से (आत्म ज्योति को) धारण करें" इसके विपरीत कठोपनिषद् में यम नचिकेता से कहते हैं। 'जिसके मन इन्द्रियां संयमित नहीं है, जिसका मन चंचल है, वह परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता।" १।१।२।४

संयम के परिणाम—

योग दर्शन (१।४०) में स्थिरता के परिणाम पर प्रकाश डालते हुए कहा है—

परमाणुपरममहत्वान्तीऽस्य वशीकारः।

"उस समय इसका परमाणु से लेकर परम महत्व तक वशीकार हो जाता है।

मन की स्थिरता और एकाग्रता हो जाने पर वह इतना नियन्त्रित हो जाता है कि साधक जहां चाहे वहां छोटे परमाणु से लेकर

प्रकट किये उसी में लग जाता है। एकाग्रता के द्वारा मन का वशीकार होना महान् सफलता है। वशीकार से योगी का चित्त परिपूर्ण होकर स्थिर होता हुआ फिर अभ्यास कर्म की अपेक्षा नहीं करता।

संयम के चमत्कारों का वर्णन करते हुए योग दर्शनकार पतंजलि ने कहा है—

परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् ।३।१६

"तीनों परिणामों (धर्म, लक्षण, अवस्था) में संयम करने से अतीत व अनागत भूत, भविष्य का ज्ञान होता है।"

शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात् संकरस्तत्प्र-
विभागसंयमात् सर्वभवरुतज्ञानम् ।३।१६

शब्द, अर्थ, ज्ञान इन तीनों का जो एक दूसरे का अभ्यास हो जाने के कारण मिश्रण हो रहा है, उनके विभाग में संयम करने से सब प्राणियों के शब्द का ज्ञान हो जाता हैं।"

कायरूपसंयमात्तद्ग्राशक्तिस्तम्भे चक्षु: ।
प्रकाशासम्प्रयोगेऽन्तर्धानम् ।३।२१

"शरीर रूप से संयम करने से रूप की ग्राह्य शक्ति रुक जाती हैं। इससे दूसरे की आँखों के प्रकाश का संयोय न होने पर योगी अन्तर्ध्यान हो जाता है।"

सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म तत्संयमाद-
परान्तज्ञान मरिष्टेभ्यो वा ।२।२२

"उपक्रम सहित (तीव्र वेग वाले) दोनों प्रकार के उपक्रम रहित (मन्द वेग वाले) दोनों प्रकार के कर्मों में संयम करने से मृत्यु का ज्ञान होता है अथवा अनिष्टों से भी मृत्यु का ज्ञान होता है"

मैत्र्यादिषु बलानि ।६।२३

"मैत्री आदि में संयम से मैत्री आदि बल प्राप्त होते हैं।"

बलेषु हस्तिबलादीनि ।३।२४

हाथी आदि के बलों में संयम करने से उन्हीं के समान बल प्राप्त होता है ”

भुवज्ञानं सूर्ये संयमात् ।३।२६

“सूर्य में संयम करने से समस्त भुवनों का ज्ञान होता है ।

चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ।३।२७

“चन्द्रमा में संयम करने से सब नक्षत्रों की स्थिति का ज्ञान होता है ।”

ध्रुवेतद्गति ज्ञानम् ।३।२८।

“ध्रुव में संयम करने से ताराओं की गति का ज्ञान होता है ।”

नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ।३।२९

“नाभिचक्र में (संयम करने से) से शरीर की स्थिति का ज्ञान होता है ।”

कंठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः ।३।३०

“कंठ कूप में संयमकरने से भूख प्यास दूर होती है ।”

कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् ।३।३१

“कूर्म नाड़ी में संयम करने से स्थिरता प्राप्त होती है ।”

मूर्धज्योतिषि सिधि दर्शनम् ।३।३२

“मूर्धा की ज्योति में संयम करने से सिद्धों का दर्शन होता है ।”

हृदये चित्तसंवित् ।३।३४

“हृदय में संयम द्वारा चित का ज्ञान होता है ।’

सत्व पुरुषयोरत्यन्तासंकीर्ण योः प्रत्ययाविशेषो ।

भोग परार्थत्वार्थसंयमापुरूषज्ञानम् ।३।३५

“सत्व (बुद्धि) और पुरुष जो दोनों परस्पर भिन्न है, इन दोनोंका अभेद ज्ञान भोग है। उसमें से परार्थ प्रतीति से भिन्न जो स्वार्थ प्रतीत है, उसमें संयम करने से पुरुष का ज्ञान होता है ।”

ततः प्रतिमाश्रवणवेदनादर्शस्वादवार्ता जायन्ते ।३।३६।

'उस स्वार्थ संयम से प्रतिमा, श्रवण वेदना, आदर्श, आस्वाद, वार्ता ज्ञान उत्पन्न होता है। इससे सूक्ष्म छिपी हुई' देशों में स्थित एवं भूत भविष्य वर्तमान बस्तुओं की जानकारी होती है।

श्रवण—इससे दिव्य शब्द सुना जाता है।

वेदना—दिव्य स्पर्श का अनुभव होता है।

आदर्श—दिव्य रूप का दर्शन होता है।

आस्वाद—दिव्य रस का अनुभव होता है।

वार्ता—दिव्य गन्ध का अनुभव होता है।

समान वायु को (संयम द्वारा) जीत लेने से (योगी का शरीर) दीप्तिमान होता है।

श्रोत्राकाशयो: सम्बन्धसंयमाद् दिव्य श्रोत्रम् ।६।१।

'कान एवं आकाश के सम्बन्ध में संयम—करने से दिव्य श्रोत्र होते है।'

कायाकाशयो: सम्बन्धसंयमाल्लघुतूल समासत्तेश्चाकाशगमनम् ।३।४२

'शरीर आकाश के सम्बन्ध में संयम करने से और हल्की वस्तु (रुई आदि) में संयम करने से आकाश गमन की शक्ति प्राप्त हो जाती है।'

स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयावर्थत्व सयमाद्भूतयज: ।३।२४

"पांचों भूतों के स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय—अर्थवत्व में संयम करने से भूतों पर जय प्राप्त होती है,

क्षणंतत्क्रमयो: संयमाद्विवेकजंज्ञानम् ।३।५२

'क्षण और उसके क्रम में संयम से विवेकजन् ज्ञान होता है।

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि संयम का परिणाम सिद्धि है। ऊपर संयम के जो माध्यम वर्णित किये गये हैं, उनमें से मन अधिक सूक्ष्म शक्तिशाली है, उसे यदि संयमित, स्थिर व एकाग्र किया जा

सके तो उसकी शक्तियों की कल्पना करना भी सम्भव नहीं है। मन्त्र साधना का तो यह आवश्यक अङ्ग है। यदि विषय वासनाओं से अलिप्त रहकर मन की एकाग्रता की ओर ध्यान दिया जायेगा तो कबीर या उनके समर्थकों को माला द्वारा जप साधना का विरोध करने का अवसर ही नहीं आयेगा। अतः गायत्री मन्त्र साधकको एकाग्रता की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये।

कुछ आवश्यक तथ्य—

गायत्री साधना के लिए चित्त का स्वस्थ व शान्त होना आवश्यक है। हृदय में श्रद्धा और भक्ति भावना हो, मन को सब ओर से हटाकर तन्मय किया जाये और चित्त को एकाग्र किया जाए, तभी साधना में सफलता और सिद्धि प्राप्त होती है अन्यथा निराशा ही हाथ लगती है। जब मन में अशान्ति, चिन्ता, उत्तेजना, भय व सन्देह हो, उसका एक स्थान पर स्थिर होना कठिन है। वह इधर-उधर भागेगा। ऐसी स्थिति में न जप में मन लगता है न ध्यान में। साधक माला तो घुमाता रहता है, मन्त्र भी बोलता रहता है, चित्त इधर-उधर भागता है। सफलता आशा रखने वाले साधक के लिये यह अच्छे लक्षण नहीं हैं। सब ओर से मन हटाकर, श्रद्धा भक्ति से तन्मयता पूर्वक साधना से ही वह आकर्षण शक्ति उत्पन्न होती है जिससे अभीष्ट सिद्धि प्राप्त हो।

गायत्री साधक को चाहिए कि प्रथम किसी अनुभवी, निस्वार्थ पथ-प्रदर्शक से यह क्रियात्मक विधि सीखे और अभ्यास करने के लिए एकान्त स्थान में स्थित हो प्रातःकाल कम से कम दो तीन घण्टे और शाम को दो घण्टे ध्यान करना चाहिए। पद्मासन में दोनों जंघाओं को गर्दन, पीठ को सीधा करके खेचरी मुद्रा से बैठे। अभक्ष्य पदार्थों का सेवन, मादक, शराब, भंग, सुलफा, सिगरेट आदि का सेवन न करें। लाल मिर्च, खटाई, तेल, गरिष्ठ, वादी, कफ वर्धक तीक्ष्य पदार्थों का सेवन न करें। ऐसा भी पदार्थ न सेवन करना चाहिए जिससे आलस्य

रोग पैदा हों। मैथुन कुसंग, क्रोध, शोक, भय, उत्पन्न करने वाली बातें न करनी चाहिए। शरीर शुद्ध रहे आँतोंमें मल न रहे इसके लिए ज्योती नेती करनी चाहिए। शारीरिक ब्रह्मचर्य के समान मानसिक आध्यात्मिक ब्रह्मचर्य आवश्यक है। अपने अनुभवोंको दूसरे से न कहना चाहिए। इस प्रकार वातावरण अच्छा होने से कार्यों में सफलता शीघ्र प्राप्त होती है।

एकाग्रता में बाधक विघ्न—

योग दर्शन (१।३०।३१) में बाधक विघ्नों-विक्षेपों और ५ उप-विक्षेपों का वर्णन है, उसे दूर करना आवश्यक है—

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेचान्तरायाः ॥३०॥

(१) व्याधि, (२) स्त्यान, (३) संशय, (४) प्रमाद, (५) आलस्य, (६) अविरति, (७) भ्रान्ति दर्शन, (८) अलब्धभूमिकत्वा, (९) अनवस्थितत्व, ये नौ चित्त के विक्षेप हैं, वे ही विघ्न हैं।

साधक को योग मार्ग से पथ-भ्रष्ट करने वाले नौ विघ्न इस प्रकार है:—

(१) व्याधि—शरीर में कोई रोग, इन्द्रियों में शिथिलता एवं चित्त में भ्रम उद्वेग का होना व्याधि हैं।

(२) स्त्यान—असमर्थता और अकर्मण्यता, काम करने योग्य समुचित उत्साह का अभाव अथवा सामर्थ्य की न्यूनता स्त्यान कहलाता है।

(३) संशय—योग विद्या की वास्तविकता पर या अपने प्रयत्न की सफलता पर सन्देह होना संशय कहलाता है।

(४) प्रमाद—योग साधन में लापरवाही करना, नियमित कार्य-क्रम को अधूरा ही छोड़ देना और उसके बिगड़ने पर भी चिन्ता न करना प्रमाद है।

(५) आलस्य —शरीर में भारीपन या तमोगुण रहने से आलसी हो जाना, कार्य में मन न लगना, सुस्ती का छाया रहना आलस्य होता है।

(६) अविरति– विषयों के साथ संयोग होने से मन का विषयों में ही पड़ा रहना, चित्त में वैराग्य का अभाव हो जाना अविरति है।

(७) भ्रान्ति दर्शन– किसी कारण से अध्यात्म-दर्शन तथा साधना मार्ग का ठीक ज्ञान न होना अथवा यह साधना ठीक नहीं है,ऐसा मिथ्या ज्ञान ही भ्रान्ति दर्शन है।

(८) अलब्ध भूमिकत्वा– साधना करने पर भी साधक की स्थिति को प्राप्त न होना, बीच में मन का वेग रुक जाना अलब्ध भूमिकतत्व कहलाता है।

(९) अनवस्थितत्व– चित्त का स्थिर न रहना भूमिका तक पहुँचकर भी अस्थिरता के कारण मनोभूमिका डांवाडोल रहना अनवस्थितत्व कहलाता है।

इन नौ चित्त विक्षेपों को अन्तराय, विघ्न और योग प्रतिपक्षी भी कहते हैं, इनके अलावा और भी विघ्न हैं, जो इस प्रकार है:—

दुःखदौर्मनस्यांग मेजयत्वश्वास प्रश्वासा विक्षेपसहभुवः ।३१

"दुःख, दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व, श्वास, प्रश्वास, यह विघ्न विक्षेपों के साथ रहते हैं।"

पहले सूत्र में योग के नौ विक्षेप कहे हैं किन्तु उनके होने पर और भी पाँच विघ्न उपस्थित हो जाते हैं—१. दुःख, २. दौर्मनस्य, ३. अंगमेजयत्व, ४. श्वास, ५. प्रश्वास।

१. दुःख—आध्यात्मिक, आधि भौतिक, आधिदैविक तीन प्रकार के होते हैं। काम, क्रोध, राग, द्वेष चिन्ता, भय आदि के कारण मन इन्द्रिय शरीर में ताप या पीड़ा एवं विकलता होती है, उसको आध्यात्मिक दुःख कहते हैं। सिंह, सर्प, शत्रु, दस्यु, मच्छर आदि के कारण होने वाली पीड़ा को आधिभौतिक दुःख तथा सर्दी, गर्मी, बिजली, अग्नि

वर्षक, अग्नि, भूकम्प, पवन आदि के कारण होने वाली पीड़ा को आधि दैविक दुःख कहते हैं। दौर्मनस्य इच्छा की पूर्ति न होने पर मन में क्षोभ होना।३। अंगमेजयत्व--शरीर के अवयवों अङ्गों का कांपना। ४. श्वास– श्वास पर नियन्त्रण न रहना, विना इच्छा के बाहर की वायु नासिका द्वारा अन्दर जाना। ५. प्रश्वास--श्वास पर काबू न रहने से भीतर को वायु नासिका द्वारा बाहर निकल जाना– यही पांच उप विक्षेप कहे जाते हैं। पहिले कहे नौ विक्षेप तथा पाँच उप विक्षेप चंचल चित्त वालों को होते हैं किन्तु जिनका मन एकाग्र हो गया है, उनको नहीं होते। अतः इन समाधि के शत्रुओं को अभ्यास, वैराग्य द्वारा नियन्त्रण में करना चाहिये।

विघ्नों का निवारण

इन विक्षेपों को दूर करने का उपाय इस प्रकार है---

यत्प्रतिषेधार्थमेकतत्वाभ्यास ।·।३२

'उन विक्षेपों को दूर करने के लिए एकतत्व का अभ्यास करना चाहिये।'

चित्त वह पदार्थ है जिससे अनेक विषयों का चिंतन होता है। इस चित्त का अनेक विषयों से हटाकर एक ईश्वरीय विषय में अर्थात् ईश्वर प्राणाधान में लगावे। कई विद्वानों का मत है कि ईश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य तत्व या लक्ष्य का तत्परतापूर्वक ध्यान करके चित्त की एकाग्र अवस्था प्राप्त करे। परन्तु एक तत्व से तात्पर्य परब्रह्म परमात्मा से ही है। अतः उसी ईश्वर का ध्यान तन्मयता के आधार पर करे, तब विक्षेप और उप-विक्षेप दूर होते हैं।

विषयों से मन कैसे हट सकता है। उसका सरल उपाय इस प्रकार है---

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यविषयाणां भावनातश्चित्त प्रसादनम् ॥१।३३॥

'सुख दुःख पुण्य पाप (प्राणियों के साथ) मित्रता, दया, प्रसन्नता उपेक्षा की भावना से चित्त निर्मल हो जाता है ।'

चित्त में ६ प्रकार का मल उत्पन्न होता है जो रजोगुण, तमोगुण की वृत्तियों की अधिकता से होता है। उनके नाम इस प्रकार हैं—१. राग कालुष्य २. ईर्षा कालुष्य ३. परोपकार–चिकीर्षा–कालुष्य, ४. असूया कालुष्य," ५. द्वेष कालुष्य, ६. अमर्ष कालुष्य।

१. राग कालुष्य—वह जो स्वयं गुण का अनुभव करते हुए सदैव सुखी रहने की इच्छा हो परन्तु सर्व सुख साधनों के न होने से चित्त मलिन हो जाता है।

२. ईर्षा–कालुष्य–दूसरों की सम्पत्ति, गुण, यश देखकर डाह करना ।

३. परोपकार चिकीर्षा कालुष्य—दूसरे मनुष्यों की बुराई या मान करना।

४. असूया कालुष्य—दूसरे गुणों में दोष लगाना विद्वान् को मूर्ख, मुनीश्वर को पाखण्डी कहना।

५. द्वेष कालुष्य—किसी से द्वेष करना।

६. अमर्ष कालुष्य–अपने को गाली दे या कठोर वचन कहे अथवा कोई अपना काम कराकर अपमान करे, उसको न सहकर बदला लेनेकी चेष्टा करना।

इन मलों से चित्त मलीन होकर विक्षिप्त हो जाता है। पुनः साधना में एकाग्रता नहीं होती। इसलिए इन मलों की निर्वृत्ति करके चित्त को एकाग्र करने का सूत्र में उपाय कहा है।

१. सुखी मनुष्यों को देखकर उन पर मित्र भाव रखने राग ईर्षा कालुष्य मिट जाती है अर्थात् मित्र के सुख को अपना सुख समझने से जलन (ईर्षा) मिट जाती है।

२. दुःखी मनुष्यों पर दया रखने से 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' अपने ही समान सब प्राणियों के दुःख सुख का अनुभव करते हुए दुःखी को

देखकर उसके दु:ख को दूर करने की चेष्टा करना। इस प्रकार घृणा नष्ट हो जाती है।

३—पुण्यात्मा—(जो मनुष्य धर्म मार्गमें लगे हैं) उनको देखकर चित्त में हर्ष होना उनकी प्रशंसा करने से असूया अर्थात् झूठे कलंक लगाने की, निन्दा चुगलखोरी की वृत्ति नष्ट हो जाती है।

४—जो मनुष्य पापी है और अपने से कठोर वचन बोले या अपमान करें, उनसे बदला न लेकर उदासीनता भाव रखने से अमर्षमल, द्वेष और कठोरता की शान्ति होती है। इस तरह चित्त के मल जब धुल जाते हैं तब स्वच्छ चित्त प्रसन्नता को प्राप्त होता है और एकाग्रता लाभ करता है। यह उपाय समाहित चित्त वाले उत्तम अधिकारी के लिए मार्ग दर्शन में है।

मन की स्थिरता के उपाय—

चित्त निर्मल करने का अन्य उपाय प्राणायाम बताया है—

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य (१-३४)

'अथवा प्राण वायु को बारम्बार बाहर निकालने और रोकने (अर्थात् प्राणायाम करने से चित्त निर्मल होता है)"

प्राणायाम का फल इस प्रकार बताया है—

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् (२-५२)

"प्राणायाम के अभ्यास से ज्ञान का आवरण (विवेक ज्ञान का पर्दा) नष्ट हो जाता है।

प्राणायाम का अभ्यास जैसे-जैसे बढ़ता जाता है वैसे ही वैसे मनुष्य से संचित कर्मों के संस्कार, अविद्या जनित क्लेश जो कि ज्ञान के आवरण रूप हैं, दुर्बल होते जाते हैं। इसी आवरण से ज्ञान ढका रहने के कारण सांसारिक विषय वासनाओं से पीड़ित मनुष्य दु:खों को भोगता रहता है। अत: यह संचित कर्मों का पर्दा प्राणायाम के अभ्यास से शनैः शनैः क्षीण हो जाता है तब विवेक ज्ञानरूपी प्रकाश का उदय हो जाता

है। जैसे तपाये हुए सोने के सभी मल नष्ट हो जाते हैं, इसी तरह प्राणा याम के करने से इन्द्रियों के मल नष्ट हो जाते हैं।

प्राणायाम करने का भी फल अगले सूत्र में कहा है—

धारणासु च योग्यता मनसः (१-५३)

"धारणा में मन योग्यता होती है।

प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास से मनकी चंचलता नष्ट हो जाती है और उसमें धारणा की योग्यता आ जाती है।

योग दर्शन में मन को स्थिर करने का अन्य उपाय इस प्रकार वर्णित किया है—

विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनीं(१।३५

अथवा विषय वाली प्रवृत्ति उत्पन्न होकर वह भी मन की स्थिति को बाँधने वाली होती है।

इन्द्रियों के विषय गंध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द से उत्पन्न साधना वृत्ति मन की स्थिति को निरुद्ध करती हैं। जैसे–नासिका के अग्रभाग में संयम से दिव्य का साक्षात्कार किया जाता, उसको गन्ध प्रवृत्ति कहते हैं। जिह्वा के अग्र भाग में दिव्य रस का साक्षात्कार किया जाता है, उसे रूप प्रवृत्ति कहते हैं। जिह्वा के मध्य भाग में दिव्य स्पर्श का साक्षात्कार किया जाता है, उसको स्पर्श प्रवृत्ति कहते हैं। जिह्वाके मूल में समय की दृढ़ता से शब्द का साक्षात्कार होता है उसको शब्द प्रवृत्ति कहते हैं।

इस प्रकार प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होकर चित्त की स्थिति को बाँधती है। अतः विश्वास श्रद्धा के साथ किसी योग्य गुरुके उपदेश से प्रवृत्तियों में से एक का अभ्यास करना चाहिये। चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, मणि, दीपक आदि में संयम से जो सात्क्षात्कार होता है वह भी विषयदती प्रवृत्तियाँ हैं।

योगदर्शन में मन को स्थिर करने का तीसरा उपाय इस प्रकार बताया है:—

विशोका वा ज्योतिष्मती। (१-३६)

"अथवा शोक रहित प्रकाश वाली वृत्ति मन को स्थिर करती है।' जिस प्रकार विषयवती प्रवृत्ति मन को स्थिर करती है, उसी प्रकार विशोका प्रवृत्ति भी मन को स्थिर करती हैं। विषयवती प्रवृत्ति के नासिका अग्रभाग जिह्वा अग्रभाग आदि पाँच स्थान हैं, जहाँ मन को स्थिर किया जाता है। ऐसे ही विशोका वृत्ति में हृत् पदम में मन को स्थिर किया जाता है, उसको क्रिया कहते हैं। पहले रजोगुण, तमोगुण से उत्पन्न जो शोक मोहादि हैं, उनका समाधान कर लेने और अज्ञानान्धकार को दूरकर ज्ञान का प्रकाश जला लेने से सतोगुणी निर्मल वृत्ति उत्पन्न होती है, उससे मन स्थिर हो जाता है। अभ्यास यह है कि हृदय-स्थान में एक कमल जैसी सूक्ष्म ग्रन्थि है, उसको हृत् पदम कहते हैं। इसकी आठ पंखुड़ियाँ हैं। मुख नीचे, जड़ ऊपर को है, पंखुड़ियाँ बन्द हैं। प्राणायामके अभ्यास द्वारा इस अधोमुख कमलको ऊपरको सीधा किया जाता, जैसे फूलकी कली खिलकर फूलके रूपमें विकसित होती है। इस कमल के बीच में ॐकार स्थित है जिसका 'अ' सूर्य रूप 'उप' चन्द्र रूप, 'म' अग्नि मण्डल रूप है उसके ऊपर अर्ध मात्रा ब्रह्मानन्द स्वरूप है। उस कमलकी कर्णिकाओं में ऊपर की ओर मुख किए सुषुम्ना नाड़ी है। उसी के अन्तर्गत ब्रह्म नाड़ी है जो मूर्धा तक चली गई है। मूर्धा से बाहर भी इस ब्रह्मनाड़ी का सम्बन्ध सूर्य लोक आदि लोकों से है। इस नाड़ी में चित्त का निवास है। ध्यान योग तथा प्राणायाम के आधार पर जब हृत् पदम का साक्षात्कार एवं विकास किया जाता है तो उसमें निवास करने वाला चित्त सूर्य, चन्द्र, मणि आदि ज्योतियों के रूप में दिखाई पड़ता है, इस साक्षात्कार को ज्योतिष्मती कहते हैं। इसके उदय

होने पर रज तम से उत्पन्न शोकादि शान्त हो जाते हैं। इसीलिए इस को विशोका वृत्ति कहते हैं।

मन की स्थिरता का चौथा उपाय इस प्रकार है:—

वीतरागविषयं वा चित्तम् (१-३७)

अथवा वीतराग पुरुषों (राग सहित योगियों) का विषय करने वाला चित्त भी स्थिर हो जाता है।"

जिन पुरुषों के राग-द्वेष नाश हो चुके हैं जैसे—शुकदेव आदि उनको ध्येय बनाकर उसके सदृश अपनी भावना करने से एवं अपनी मानसिक स्थिति उन्हीं के समान बना देने से उन्हीं के समान अनुभव होने लगता है। योगी का चित्त कैसा निर्मल है, केवल इतना कहना ही पर्याप्त नहीं, किन्तु उन्हें अपने निर्मल चित्त से संसार के पदार्थ कैसे लगते होंगे उन सबके बारे में योगी का मन जो सोचता और अनुभव करता होगा, उस अनुभूति की भावना अपने मन में जाने के लिए अपने चित्त को योगी के चित्त की स्थिति में पहुँचाना होता है। इस साधनासे मन निर्मल होता है।

पाँचवां उपाय इस प्रकार है:—

स्वप्नद्राज्ञानालंबनं वा (१-३८)

'स्वप्न और निद्रा ज्ञान का सहारा लेने वाला मन स्थिर होता है।"

स्वप्न में देखे हुए अलौकिक पदार्थों से कभी-कभी चित्त को बड़ा आनन्द होता है ऐसा जाग्रत अवस्था में नहीं होता। जैसे—किसी इष्ट देवके दर्शन होना, राजा, योगी या महापुरुष हो जाना अथवा कोई और असाधारण सुख की सफलता पाना उस हालत में जो अति हर्ष होता है उसकी भावना (स्वप्न की याद करते हुए) करने से भी मनमें वशीकार होता है। इस साधना को वे ही साधक कर सकते हैं जिनने जाग्रत की अपेक्षा कभी कोई स्वप्न में असाधारण आनन्द देखा हो।

अथवा यह संसार क्षण भंगुर है और स्वप्नके समान है, ऐसी दृढ़ भावना करते रहने से वैराग्य होता है और मन सांसारिक तृष्णाओं की व्यर्थता समझकर स्थिर होता है। अथवा गाढ़ निद्रामें सुख-दुःख से रहित होकर जब केवल चित्त की वृत्तियों के अभाव का ज्ञान रहता है, किसी अन्य पदार्थ की प्रतीति नहीं रहती, उस ज्ञान को अन्तःकरणमें लगने से चित्त स्थिर होता है। अथवा जैसे स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थामें जाग्रत विषय का ज्ञान तथा इन्द्रियों की चंचलता नष्ट हो जाती है, वैसे ही ज्ञान के आश्रय से बहिर्मुखी वृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं, तब चित्त स्थिर होता है।

मनुष्यों की रुचि अनेक प्रकार की होती है, जिस वस्तु में जिसकी अधिक रुचि हो, उसी का ध्यान करे, यही विधान है।

यथाभिमतध्यानाद्वा (१।३९)

यथा जिसको जो अभिमत हो उसके ध्यान से मन स्थिर होता है।"

पहिले बताये हुए साधनों में से कोई साधन यदि साधक के अनुकूल नहीं पड़ता हो तो अपनी इच्छानुसार चुने हुए या अपने इष्टदेव के स्वरूप का ध्यान करने से मन स्थिर होता है। सारांश यह है कि चित्त स्थिर करने के लिए मन को किसी ऐसी स्थूल मूर्ति में लगाना चाहिए जो साधक को अति प्रिय हो। चाहे वह मूर्ति, पिता, माता गुरु, भाई आदि की हो। स्थूल मूर्ति में चित्त स्थिर हो जाता है और पुनः-पुनः अभ्यास से सदैव स्थिर रहता है।

पहिले बताये हुए उपायों से मन की स्थिरता और एकाग्रता हो जाने पर वह इतना नियन्त्रित हो जाता है कि साधक जहाँ चाहे वहाँ छोटे से छोटे पर परमाणुसे लेकर आकाश तक किसी भी पदार्थ या तत्व में लगाना चाहे तो विना चंचलता प्रकट किये उसी में लग जाता है। एकाग्रता के द्वारा मन का वशीकार होना महान सफलता है। वशीकार से योगी का चित्त परिपूर्ण होकर स्थिर होता हुआ फिर अभ्यास कर्म की अपेक्षा नहीं करता।

योगदर्शन (२।४१) में एकाग्रता का साधन शौच की सिद्धि बताया गया है। शौच कहते हैं--पवित्रता को। यहाँ मन की पवित्रता ही अभिप्रेत है। मन की पवित्रता में अपार शक्ति है। मलिनता से शक्तियों का ह्रास होने लगता है। शुद्ध मन ही मोक्ष का दूसरा नाम है। यही ब्रह्मज्ञान है। यही अमृत है यही आनन्द का स्रोत हैं। जिसका मन निर्मल हो गया है, उसे दुःखों और चिन्ताओं के दर्शन कभी नहीं होते। अतएव जिन्हें इनसे छुटकारा पाना हो, वह मन को शुद्ध करे। योग वशिष्ठ में कहा है---जिनका मन परम पावन और निर्मल पद में दृढ़, विश्रान्त और स्थिर हुआ है उसका नाश मृत्यु भी नहीं करती। जिसका मन शुद्ध होता है, जिसका सत्य संकल्प होता है और वह जैसा संकल्प करता है वैसा ही होता है--शुद्ध अन्तःकरण में जैसा निश्चय होता है, वैसा ही तत्काल आगे सिद्ध होता है और मलिन अन्तःकरण का निश्चय सिद्ध नहीं होता।"

कठोपनिषद् में यम नचिकेता से कहते हैं--"शुद्ध मन से ही परमात्मा तत्व प्राप्त किये जाने योग्य हैं २१।११ जैसे दर्पण में सामने आई हुई वस्तु दीखती है, वैसा ही शुद्ध अन्तःकरण में ब्रह्मके दर्शन होते हैं २।३।५।" मुण्डकोपनिषद् ।३। ।८ "वह परमात्मा न तो नेत्रों से न वाणी से और न दूसरी इन्द्रियों से ही ग्रहण करने में आता है तथा तप से अथवा कर्मों से भी वह ग्रहण नहीं किया जा सकता। उस अवयव रहित परमात्मा को तो विशुद्ध अन्तःकरण वाला साधक उस विशुद्ध अन्तःकरण से निरन्तर उसका ध्यान करता हुआ ही ज्ञान की निर्मलता से देख पाता है---३।२।५ सर्वथा आसक्ति रहित और विशुद्ध अन्तः-करण वाले ऋषि लोग परमात्मा को पूर्णतया प्राप्त होकर ज्ञान से तृप्त एवं परम शांत हो जाते हैं --- -६।२।७ जिनका अन्तःकरण शुद्धहो गया है, वह समस्त प्रयत्नशील साधकगण मरण काल में (शरीर त्याग कर) ब्रह्म लोक में जाते हैं और वहाँ परम अमृत स्वरूप होकर सर्वथा मुक्त हो जाते हैं।"

श्वेताश्वतरोपनिषद् ३।१३ 'निर्मल हृदय और विशुद्ध मनसे ध्यान में लाया हुआ प्रत्यक्ष होता है--१।२० इस परब्रह्म परमात्मा का स्वरूप दृष्टि के सामने नहीं ठहरता, इस परमात्मा को कोई भी आँखों से नहीं देख सकता। जो साधक जन इस हृदय में स्थित अन्तर्यामी परमेश्वर की भक्ति युक्त हृदय से तथा निर्मल मन के द्वारा इस प्रकार जान लेते हैं, अमृत स्वरूप हो जाते हैं।

अनुभवी साधकों का विचार है कि जब तक मन अपवित्र रहता है उसमें विषय वासनाओं का आधिपत्य रहता है। जब तक बुद्धि निश्चयात्मिका नही हो पाती, मन में तल्लीनता नहीं आती तल्लीनता के लिए मन की पवित्रता आवश्यक है और बिना तल्लीनता व एकाग्रता के गायत्री मन्त्रकी सिद्धि असम्भव है। अतः सिद्धि तक पहुँचने के लिए मन को वासना रहित करना आवश्यक है। यह कठिन अवश्य है परन्तु और कोई मार्ग भी तो नहीं है। अतः गायत्री साधकों को इसकी ओर पूरा ध्यान देना है।

लम्बे अभ्यास की आवश्यकता---

मन को एकाग्र व स्थिर करने के लिए ऊपर जो उपाय बताये गये हैं, उनको क्रियान्वित करने के लिए लम्बे समय के अभ्यास की अपेक्षा है। संसार के बड़े से बड़े, कठिन, असम्भव कार्य भी अभ्यास से पूर्ण हो जाते हैं। अभ्यास से मनुष्य से लेकर पशु पक्षी आश्चर्यजनक, प्रकृति विरुद्ध काम करते हैं। यदि चिरसंचित बहिर्मुखी संस्कार इस कार्य में बाधक होते हैं, फिर भी दृढ़तापूर्वक अभ्यास करते रहनेसे वह भी शमन हो जाते हैं। परन्तु योग दर्शनकार चेतावनी देते हैं कि यह अभ्यास बहुत काल तक लगातार सत्कार से ठीक-ठाक किया जाए तभी इसमें दृढ़ता आती है। (१।१४) अभ्यास और वैराग्य के इस मिले-जुले प्रयत्नसे चित्त वृत्तियों का निश्चित रूप से निरोध होता है और मन एकाग्र होता है। यही गायत्री मन्त्र की सिद्धि का मार्ग है।

सिद्धि के लिये मन को सत्व गुण प्रधान बनाया जाए

गायत्री जप आरम्भ करने के पहले शरीर और मन को सत्वगुण प्रधान बना लेना चाहिए। यदि मन सत्वगुण प्रधान न हुआ तो मन की चंचलता व उछल कूद एकाग्रता में बाधक होगी और चित्त वृत्तियों का निरोध नहीं हो पाएगा। मन को सत्वगुण प्रधान बनाने के लिए स्वर योग का तात्कालिक सहयोग लेना पड़ता है।

स्वर योग एक ऐसी वैज्ञानिक विधि व्यवस्था है जिससे सूर्य चन्द्र आदि ग्रहों को शरीरस्थ सूक्ष्म नाड़ियों की सहायता से अपने अनुकूल बनाकर उनसे शक्ति की प्राप्ति की जाती है और उनके गुणों से लाभ उठाकर अपने जीवन को विकसित किया जाता है। भारतीय योगियों ने उन सूक्ष्म नाड़ियों का पता लगाया जो इन ग्रहों से प्रभावित होती है और इनके अनुकूल बनकर शरीर व आत्मा में शक्ति का कोष भर देती है। इस पर सहज में विश्वास इसलिए नहीं होता कि इनका निरीक्षण किसी भौतिक यन्त्र से करना सम्भव नहीं है। सूक्ष्म नेत्रों से ही इनकी खोज की गई है और वहीं इनकी विद्यमानता को सिद्ध कर सकते हैं। इन नाड़ियों को हम भले ही न देख सकें परन्तु स्वर योग से होने वाले चमत्कारों लाभों से कौन इन्कार कर सकता है। यह विद्या जीवन के हर क्षेत्र में हमारा साथ देती है और कल्याणकारक सिद्ध होती है।

प्राचीन ऋषियों ने इसे एक महत्वपूर्ण योग घोषित किया था। भगवान् शिव इसके आदि आविष्कारकर्ता माने जाते हैं। 'शिव स्वरोदय" में इसकी महिमा का विस्तृत वर्णन है। भगवान् शिव पार्वती से कहते हैं कि इस स्वरोदय में कुयोग की कोई आशंका नहीं होती और इनकी सहायता से सभी अशुभ कार्य शुभ हो जाते हैं। उन्होंने तो यहाँ तक कह दिया कि सम्पूर्ण शास्त्र, पुराणादि, स्मृति और वेदांग

आदि यह सब स्वर ज्ञान से श्रेष्ठ नहीं है। गुप्त वस्तु उपकारोंका प्रकाशक और ज्ञान का शिरोमणि कहा गया है। इसकी शक्ति की घोषणा करते हुए बताया गया है कि यह नास्तिकों को चमत्कार दिखाता है और आस्तिकों के विश्वास को दृढ़ करता है भगवान् शिव ने एक रहस्य की बात पार्वती को बताई जो लोग सूर्य और चन्द्र स्वरों का भली भाँति अभ्यास कर लेते हैं, वह परोक्ष-ज्ञान को जानने की क्षमता को प्राप्त करते हैं और प्रकृति के गुप्त रहस्यों को समझने की स्थिति में हो जाते हैं।

स्वरयोग वैज्ञानिक भित्ति पर आधारित हैं। आधुनिक विज्ञान के अनुसार चन्द्रमा समुद्रकी लहरों को प्रभावित करके ज्वार भाटा उत्पन्न करता है। सूर्य जलकणों को आकर्षित करने का कार्य करता है। दोनों के सहयोग से यह पृथ्वी वाला समुद्र आंशिक रूप में उठकर चला जाता है और आकाश में एक जल भण्डार एकत्रित हो जाता है जिससे धरती का सिंचन होता है और प्राणियों का जीवन स्थिर रहता है। यदि सूर्य और चन्द्र अपने यह कार्यक्रम स्थगित करदें तो प्रलय ही आ जाये और विकसित मानवके सामने ऐसी समस्याऐं उत्पन्न हो जाएँ जिनका समाधान आधुनिक युग के महान वैज्ञानिक भी करने में असमर्थ रहें। सूर्य और चन्द्र प्रभावशाली ग्रह हैं। उनके अपने-अपने गुण हैं। एक ऊष्ण और दूसरा शीतल। जीवन में दोनों गुणों की आवश्यकता रहती है। भारतीय मनीषियों की मान्यता है कि पिण्ड भी ब्रह्माण्ड है। जो कुछ ब्रह्माण्ड में है, वह सभी कुछ पिण्ड में अवस्थित हैं। ब्रह्माण्ड के सूर्य, चन्द्र पिण्ड में भी विद्यमान हैं। योगियों ने इसकी खोज की और पाया कि दांये स्वर से सम्बन्धित नाड़ी सूर्य शक्ति से ओत-प्रोत है और बांये स्वर से सम्बन्धित नाड़ी में चन्द्रमा की सी शक्ति है। यह पिण्ड के ग्रहों को अपने अनुकूल बनासकें तो प्रतिकूल परिस्थितियां अनुकूल बन जाती हैं। यही स्वरयोग का विज्ञान है। जीवन के हर क्षेत्र में इस विद्या का लाभ उठाया जा सकता है।

स्वर योगके योग आचार्यों की खोजों के परिणाम स्वरूप यह तथ्य सामने आया कि हमारी नाभि में एक नाड़ी होती है जो कुण्डली मार कर बैठी है। उस नाडी से दस नाड़ियाँ निकलती हैं जो शरीर के विभिन्न भागों को जाती है। इनमें से महत्वपूर्ण तीर हैं—इडा पिंगला और सुषुम्ना, इडा को चन्द्र, पिंगला को सूर्य और सुषुम्ना को वायु भी कहते हैं। इडा का स्थान बाँये नासिका, पिंगला का दाँये नासिका और सुषुम्ना दोनों के बीच में रहती है। हमारे जीवन में यह तीन नाडियाँ महत्वपूर्ण भूमिका का अभिनय करती है। इन्हें अनुकूल बना कर अशुभ और असफलता को शुभ और सफलता में बदला जा सकता है।

दाँये में सूर्य और बाँये स्वर में चन्द्र के गुणों की प्रधानता रहतीं है। सूर्य में उष्णता और चान्द्रमें शीतलता का गुण है। उष्णता उत्पन्न करने के लिए सूर्य और शीतलता प्रभृति गुणों के विकास के लिए चन्द्र स्वर उपयुक्त रहता है। पूजा उपासना, साधना, दान, यज्ञ, योगाभ्यास, मन्त्र व्यापार, यात्रा, दीक्षा, विद्यारम्भ, विवाह, मकान, मन्दिर आदि भवन बनवाना और इसी तरह के शान्ति के कोई भी कार्य हों, वह चन्द्र (बाँये) स्वर में करने चाहिए जिनमें विवेक, वृद्धि और गम्भीरता की आवश्यकता प्रतीत होती है। व्यायाम, तोड़-फोड़ युद्ध, स्त्री, भोग शिकार आदि उत्तेजक कार्यों में सूर्य स्वर चलना लाभदायक रहेगा।

अतः गायत्री जप आरम्भ करने के पूर्व स्वर का परीक्षण कर लेना आवश्यक है। अपनी दोनों नासिकाओं के आगे हाथ रखना चाहिए और श्वाँस से तीव्रगति से बाहर फेंकना चाहिए। इससे यह पता चलेगा कि किस नासिका से अधिक वेग से श्वाँस निकल रहा है। यदि नासिका से अधिक वेग सें श्वांस निकल रहा है तो यह समझना चाहिए कि मन में रजोगुण और तमोगुण की प्रधानता है। यह मनोभूमि साधना के अनुकूल

नहीं हैं क्योंकि सूर्य स्वर के चलते रहने पर चित्त चञ्चल रहता है चित्त की चञ्चलता को कम करने के लिए स्वर को दाँयें से वायें कर लेना चाहिए । इसके लिए थोड़ी देर के लिये बाँयें ओर लेटें । कुछ ही समय में दायां स्वर बायां हो जायेगा । बायां स्वर होने पर गायत्री जप करना चाहिये । इससे मनकी चञ्चलता कम रहती है और चित्त वृत्तियों के निरोध में सहायता मिलती है क्योंकि मन में सत्वगुण प्रधान रहता है ।

यम-नियम गायत्री साधना की नींव है ।

यम—

योग दर्शन (१।३०) में अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को पाँच यम कहा है । इसके महत्व का दिग्दर्शन करते हुए अगले सूत्र में कहा गया है। जाति, देश, काल, समय में आवद्ध न होकर इन धर्मों का पालन करना महाव्रत है ।'

साधारण रीति से हिंसा न करने, घात न करने, दुःख न देने को अहिंसा कहते हैं । वाणी द्वारा प्रहार करनेमें ऊँचा हिंसा है । वाणी से मन सूक्ष्म है । अतः मन में वैर-भाव रखना या ईर्षा, द्वेष करना वाणी से भी बड़ी हिंसा है जिससे तन और मन दोनों जल जाते हैं इन घातक वृत्तियों से बचे रहने को अहिंसा कहते हैं । अहिंसा, एक ऐसा व्रत है जिससे शक्ति का विकास होता क्योंकि काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद आदि मानसिक वृत्तियों से होने वाले क्षति से संरक्षण होता है और उच्च वृत्तियों के पालन से शक्ति की वृद्धि होती है । प्राणियों के प्रति प्रेम भावना की दृढ़ता से ही यह वृत्ति जाग्रत होती है प्रेम, शत्रुको भी मित्र बना देता है। प्रेमरसको पीकर मनुष्य तो क्या पशु-पक्षी भी मनुष्य के वश में हो जाते हैं और हिंसक जन्तु भी अपनी

हिंसक वृत्ति भूल जाते हैं। ऋषियों के आश्रमों में सिंहों के निवास के उदाहरण मिलते हैं। कण्व ऋषि के आश्रम में भरत जी सिंहों से खेलते थे। महर्षि रमण के आश्रम में सर्प और मयूर एक साथ रहते थे। अहिंसा वृत्ति से हिंसक भी अहिंसक वन जाते हैं। इसी भाव की योग-दर्शन २।३५ में व्यक्त किया गया है—"अहिंसा की दृढ़ स्थिति होने पर उस योगी के निकट सब प्राणी वैर का त्याग कर देते हैं।"

इन्द्रिय मन से प्रत्यक्ष देखा हुआ या अनुमान द्वारा अनुभव किया हुआ यथार्थ प्रिय और हितकर वचन ही सत्य है। सत्य के आचरण से सूक्ष्म शक्तियों का उत्तरोत्तर विकास होता है, सद्गुणों की वृद्धि होती है उसकी वाणी सिद्ध हो जाती है।

स्तेय कहते हैं चोरी को और अस्तेय चोरी न करने को। किसी दूसरे की वस्तु पर अनधिकार चेष्टा को स्तेय और उससे बचने को अस्तेय कहा गया है। रिश्वत, मिलावट, कम तोलना, निश्चित मूल्य से अधिक लेना भी स्तेय है। योग-दर्शन २।३६ में कहा है "चोरी के पूर्णयता त्याग से उस योगी के सामने सब प्रकार के रत्न प्रकट हो जाते हैं।"

मन, वाणी और शरीर से समस्त मैथुनों का त्याग करके वीर्य रक्षा करना ब्रह्मचर्य है। वेद को ब्रह्मा कहते हैं। अतः वेदाध्ययन के लिए आचरणीय कर्म ब्रह्मचर्य है। योग-दर्शन २।३८ में ब्रह्मचर्य के व्रत का लाभ वर्णन करते हुए लिखा है "ब्रह्मचर्य की दृढ़ स्थिति होने पर सामर्थ्य (वीर्य) का लाभ होता है।"

धन-सम्पत्ति का संग्रह परिग्रह और उससे बचना अपरिग्रह हैं। परिग्रह की वृत्ति से मोह, ममता, स्वार्थपरता, भय आदि मानसिक व आत्मिक रोग पनपते हैं। अपरिग्रह से परमार्थ, निःस्वार्थता, निर्भयता, अनासक्ति की दृढ़ स्थिति होती है, समता के भाव जाग्रत होते हैं। यह वृत्ति समाजवाद की द्योतक है। अपरिग्रह को योग-दर्शनकार ने एक सिद्धि

माना है और कहा "अपरिग्रह की पूर्ण स्थिति होने पर अपने जन्म जन्मान्तरों का ज्ञान होता है" (१।३६)

नियम—

योग-दर्शन २।३८ के अनुसार शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर शरणागति ये पाँच नियम हैं।

शौच का अर्थ है—वाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार की पवित्रता। वाह्य स्वच्छता स्वास्थ्य का एक आवश्यक नियम है। मन और विचारों की शुद्धि से ही आत्मिक उन्नति सम्भव है। विचार शुद्धि में ईर्षा, अभिमान, घृणा, असूर्या आदि दोषों का अभाव होना चाहिए। मल अशक्तता और रोग का चिह्न है और इसका अभाव शक्ति विकास का साधन हैं। शौच के लाभों का वर्णन करते हुए योग दर्शन में लिखा है "शौच से घृणा। दूसरों से संसर्ग न करने की इच्छा होती है" (२।४०)। "चित्त की शुद्धि, मन की स्वच्छता, एकाग्रता इन्द्रियों का जीतना आत्म साक्षात्कार की योग्यता ये पाँचों अभ्यन्त शौच हैं। सन्तोष का अर्थ प्रसन्नता, आनन्द और खुशी है। अपनी इच्छाओं को सीमित रखना, सब तरह की परिस्थितियों में प्रसन्न रहना सन्तोष है। यही जीवन की वास्तविक कला और सुख, शान्ति का मूल है। जो इच्छाओं, कामनाओं व तृष्णाओं के वश में है और निरन्तर असन्तोष की अग्नि में जलता रहता है, वह सदैव दुःखी रहता है। योग-दर्शन २।४२ में भी यही बात कही है। 'सन्तोष से, जिससे उत्तम दूसरा सुख कोई नहीं है, ऐसे सर्वोत्तम सुख का लाभ होता है।'

तप का अर्थ है कष्ट सहना, परिश्रम करना। सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख, भूख-प्यास, मान-अपमान आदि को सहन करना तप है। इससे शक्तियाँ तेज होती हैं। जिस तरह सोने को अग्नि में तपाने से ही वह शुद्ध हो जाता है, उसी तरह आन्तरिक मलों को तप की गर्मी से पिघलाने से ही उनका नाश व शुद्धि होगी। योग दर्शन २।४३ में कहा

है "तप के प्रभाव से जब अशुद्धि नष्ट हो जाती है तब शरीर तथा इन्द्रियों की सिद्धि हो जाती है। प्राचीन काल में ऋषियों ने तप से बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ प्राप्त की थीं, असम्भव को भी सम्भव बनाया था, कठिन तपस्याओं का हल निकाला था। जबसे इन्द्रियाँ असाधारण रूप से विकसित हो जाती हैं और अणिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। दिव्य दर्शन, दिव्य श्रवण, दूर श्रवण आदि सिद्धियाँ तप का ही फल है।

वेद, उपनिषद्, दर्शन, स्मृतियाँ, रामायण, गीता, महाभारत आदि सद्ग्रन्थों का पठन पाठन और मनन स्वाध्याय है। यह स्वाध्याय की स्थूल क्रिया है। इसकी सूक्ष्म प्रक्रिया तो आत्म निरीक्षण हैं। अपने जीवन की समस्त गतिविधियों, दोषों और दुर्गुणों का अध्ययन करना ही वास्तविक स्वाध्याय है। यह आत्म अध्ययन ही आगे बढ़ने की सीढ़ी है। इसके बिना विकास रुका रहता है। योग दर्शन २।४४ के अनुसार 'स्वाध्याय से इष्ट देवता का साक्षात्कार होता है।' साक्षात्कार के लिए अपने समस्त दोषों को दूर करके मन को पवित्र रखना आवश्यक है। पवित्र मन से ही इष्ट देवता के दर्शन होते हैं। मन की पवित्रता को बनाये रखने के लिए मानसिक वृत्तियों की छान-बीन करते रहकर तप की अग्नि में उन्हें भस्म करते रहना चाहिए।

ईश्वर प्राणाधान का तात्पर्य है—ईश्वर को अपने मन-मन्दिर में बिठाना, हृदय में धारण करना, स्थापित करना, रोम-रोम में ईश्वर का अनुभव करना, मन, प्राण और इन्द्रियों के समस्त कर्मों की और उनके परिणामों को ईश्वर के ही अर्पण करना। योग दर्शन २।४५ ईश्वर प्राणाधान से समाधि की सिद्धि होना बताया गया है। ईश्वर को अपने-रोम-रोम में समाया हुआ मानने और जानने वाला उन्हीं गुणों से ओत-प्रोत हो जाता है। अपने कर्मों और उनके परिणामों को ईश्वर समर्पण करने से मोह, ममता, आसक्ति आदि बन्धनकारक वृत्तियों का अभाव हो जाता है जिससे साधक अपने इष्टदेव से एकता स्थापित

करने की ओर बढ़ता है क्योंकि इस स्थिति तक पहुँचाने के लिए जो विघ्न उपस्थित होना स्वाभाविक है, उनका वह परिमार्जन कर देता है।

यम सामाजिक कर्तव्य है। एक सभ्य नागरिक बनने के लिए उनका पालन आवश्यक है। नियमों का सम्बन्ध व्यक्तिगत जीवन से है। जीवन को विकसिक व प्रगतिशील बनाने के लिये इन दस नियमों पर चलने की अपेक्षा की जाती है। योग साधन द्वारा शक्तियों और सिद्धियों की प्राप्ति, ईश्वर साक्षात्कार के लिये यह प्रारम्भिक सीढ़ियाँ हैं, इन पर चढ़कर ही उन तक पहुँचा जा सकता हैं। इनकी अवहेलना करने से आगामी साधनों की सफलता में सन्देह ही है क्योंकि यह उनकी जड़ है। हिंसा, झूठ, छल, कपट, चोरी, व्यभिचार, लोभ, मलीनता,लालसा, आलस्य, अज्ञान आदि वृत्तियाँ हमारे सूक्ष्म शरीर की शक्तियों को चूसती रहती हैं। परिणाम-स्वरूप शरीर एक खोखला ढाँचा मात्र रह जाता है। अपने आन्तरिक शत्रुओं से बचने के लिए यम और नियमों द्वारा संरक्षण किया जाता है जिनका पालन अध्यात्म पथ पर चलने वाले साधकों के लिये आवश्यक है।

योग साधना की सफलता के लिए यम और नियम आवश्यक है। यह योग साधना की नींव का काम करते हैं। गायत्री उपासना भी एक योग है। गायत्री सिद्धि के लिये भी यम और नियमों का पालन आवश्यक है। जिस तरह एक भवन के निर्माण में सुदृढ़ नींव बनाई जाती है, उसी तरह इस साधना में यम-नियम की नींव को मजबूत बनाने की दिशा में पूरा-पूरा ध्यान देना पड़ता है।

अहिंसा एक ऐसी शक्ति है जिससे साम्राज्यों का निर्माण और उत्थान किया है। व्यक्ति रूप से आत्म-विकास की यह सीढ़ी है। अहिंसा की महान् शक्ति से महात्मा गांधी ने भारत को विदेशियों के चंगुल से स्वतंत्र कराया। अहिंसा का व्रत वही पालन कर सकता है जिसने शक्ति का सृजन किया है। सत्य स्वयं एक सिद्धि है। यदि कोई और साधना न

की जाए तो भी यह शक्ति के स्रोत खोलने की क्षमता रखता है। महाभारत की कथा के अनुसार तुलाधार वैश्य सत्य-निष्ठता की साधना से भूत-भविष्य की बातें जानने की क्षमता रखते हैं और इस अशिक्षित वैश्य से एक तपस्वी ऋषि शिक्षा और प्रेरणा प्राप्त करने में अपना गौरव समझते हैं।

अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन शक्ति पथ का साधक ही कर सकता है। शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणाधान ऐसे आवश्यक नियम हैं जिनके बिना किसी भी साधना में सिद्धि प्राप्त करना असम्भव है। हर साधना पद्धति में थोड़े हेर-फेर के साथ इन्हें सम्मिलित किया गया है। व्यवस्थित नियमों के पालन से ही साधना का मार्ग प्रशस्त होता है। यम नियमों की उपेक्षा करना बिना नींव के भवन-निर्माण की तरह है जो किसी भी समय ध्वस्त हो सकता है। शताब्दियों तक वह बना रहे, इसके लिये उसकी नींव पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाता है। गायत्री उपासना से जीवन रूपी अत्यन्त मूल्यवान भवन का निर्माण होता है। इसकी मान्यता और सुदृढ़ता के लिये साधक अपने तप की सारी पूँजी लगाने के लिये तैयार हो जाता है। जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों के परिमार्जन और परिशोधन का महान कार्य सम्पादित करने के लिये प्राथमिक साधना के आवश्यक अङ्गों को सावधानी से व्यवहार में लाना चाहिये ताकि सिद्धि में कोई व्यवधान उपस्थित न होने पाये।

अतः गायत्री साधकों को चाहिये कि वह यम और नियमों को शक्तियों के रूप में ग्रहण करके मार्ग को सरल बनाएँ ताकि उसके लिए सिद्धि का मार्ग सरल हो जाए।

—❀—

सदाचार शिष्टता और सत्यनिष्ठता सिद्धि के द्वार खोलते हैं।

सदाचार का व्यावहारिक पक्ष--

कुछ लोगों में यह भ्रम उत्पन्न हो गया है कि सदाचार का पालन करने वाला कलियुग में लौकिक दृष्टि से घाटे में रहेगा। वास्तविकता यह है कि सभी लोग सहयोग, सहानुभूति, स्नेह, आत्मीयता तथा मैत्री का हाथ बढ़ाते हैं और उसे हर प्रकार से तुष्ट करते हैं। सदाचारी व्यक्ति की आत्मा बलवान होती है, उसे किसी का भय नहीं होता, उसकी शक्तियों की निरन्तर वृद्धि होती रहती है। इसलिये वह लौकिक व पारलौकि दोनों दृष्टियों से प्रगति करता रहता है। इसके विपरीत पापी व दुराचारी व्यक्ति की आत्मा अत्यन्त निर्बल होती है, उसके मन में भय रहता है कि उसके कर्म आसुरी शक्तियों के रूप में उसका विरोध करने अथवा उसके कर्मों का फल देने के लिये आ रहे हैं। सहयोगियों की अपेक्षा उसके शत्रु बढ़ते रहते हैं क्योंकि हर काम में उसका उद्देश्य स्वार्थ ही रहता है। स्वार्थ मानव का ऐसा शत्रु है जो किसी को अपना बनाना नहीं जानता। वह हर किसी को पराया समझता है। पराये से सहयोग की सम्भावना का प्रश्न ही नहीं उठता। जो दूसरों से सहयोग नहीं करता, उसे दूसरों की सहानुभूति प्राप्त करने की भी आशा नहीं करनी चाहिए। अतः सदाचार मानव की उन्नति के द्वार खोलता है। और दुराचार-दुर्गति का मार्ग प्रशस्त करता है। इतिहास भी इसका साक्षी है। रावण ने सीता का हरण किया। रावण और उसकी सोने की लङ्का का नाश हुआ और अब लाखों वर्षों से वह भारतीय संस्कृति में दुराचार का प्रतीक बना चला आ रहा है। लोग चारों वेदों के

द्वान् पण्डित के निन्दित कर्मों को दुत्कारते हैं। जब तक हिन्दू धर्म ीवित है, रावण को लोग एक अत्यन्त निन्दनीय और क्षुद्र व्यक्ति के प से स्मरण करते रहेंगे। यदि वह पाप कर्म न करता तो उसकी ोग्यताओं व क्षमताओं को देखते हुए वह एक महामानव के रूप में जा जाता और लोग उससे प्रेरणायें लेते। अतः विद्वत्ता की अपेक्षा ाचार का महत्व अधिक है। दुर्योधन ने आचार विहीन होकर महा ारत को निमन्त्रण दिया जिससे लाखों व्यक्तियों का नाश हुआ। यदि र्योधन पाण्डवों से भ्रातृत्व व्यवहार करता तो यह नाश लीला नहीं ोती और भारतवर्ष का इतिहास कुछ और ही होता। जिस अपार क्ति का व्यय आपस में लड़कर हुआ, उसका प्रयोग देश के विकास के िए होता। छोटा सा अभद्र व्यवहार विशाल रूप ग्रहण कर लेता है ौर अनहोने परिणाम उपस्थित करता है।

ाक्ति विकास का आधार स्तम्भ सदाचार

व्यक्तिगत रूप से भी दुराचार शक्ति का नाश करता है। विश्वा-मित्र तपस्वी होते हुए भी काम-वासना के चंगुल में फँस गये। परिणाम स्वरूप उन्हें तप के फल से वंचित होना पड़ा। वाजिस्रवा अपने प्रमाद े कारण पराजित हुआ। वसिष्ठ पुत्र प्रचेता का क्रोध उन्हें ही ले डूबा। दुराचार का परिणाम शुभ हो ही नहीं सकता। यह निश्चित है क्योंकि इससे शक्ति का निरन्तर ह्रास होता रहता है। मन्त्र साधना में शक्ति ा सहयोग चाहिए। दुराचारी व्यक्ति की शक्ति का नाश तो उसका दुराचार ही करता रहता है, मन्त्र जप से उसका क्या भला हो सकता है। मन्त्र शक्ति के विकास की आधार भूमि को नष्ट करने वाला उससे लाभान्वित होने की क्या आशा रख सकता है। आचार व मन्त्र साधना दोनों परस्पर सहयोग से फलते-फूलते हैं। जब सहयोग की अपेक्षा विरोध होना आरम्भ होगा तो तप के अनुकूल परिणाम में सन्देह ही करना चाहिए।

सिद्धि का आधार तो सदाचार ही होता है। दान, दया, संयम,

तप, त्याग, कष्ट, सहिष्णुता आदि सब सदाचार के ही विभिन्न रूप हैं। यह गुण आन्तरिक शक्तियों के जागरण के हेतु बनते हैं। ईश्वर की उपासना न करने पर भी किसी व्यक्ति विशेष में सच्चरित्रता, आत्मीयता परमार्थ, दया, पवित्रता के गुण विद्यमान हैं तो वह उस उपासना करने से कहीं अच्छा है जिसमें इन गुणों का अभाव हैं। इसका अर्थ है वह सिद्धि के द्वार की ओर ले जाने वाली शक्तियों का तिरस्कार करता है। इस उपेक्षा का परिणाम यह होता है कि मन्त्र साधना से जो सिद्धि प्राप्त होनी चाहिए, उसमें भी बिलम्ब होता चलता है। कारण स्पष्ट है सर्वत्र सहयोग की अपेक्षा विरोध मिलता है। सहयोग प्राप्त करने के लिये सदाचार का पालन आवश्यक है।

सत्यनिष्ठता की महान् शक्ति—

मनुष्य में सदाचार की प्रवृत्ति का विकास सत्य के आचरण और व्यवहार से ही होता है। किसी अनुभवी व्यक्ति ने ही कहा है 'सत्य में हजार हाथियों के समान बल होता है। सत्य से इतनी शारीरिक शक्ति उत्पन्न करना तो शायद सम्भव नहीं है। इस शक्ति का संकेत आत्म बल की ओर ही है। इसका अभिप्राय यह है कि सत्यवादी में इतना आत्म-बल विकसित हो जाता है कि वह हजार पाखण्डियों का भली प्रकार विरोध कर सकता है। सत्य शक्ति का ही रूप होता है, अतः अन्त में उसी की विजय होती है। असत्य का शरीर खोखला होता है। देखने में भले ही वह हृष्ट-पुष्ट हो परन्तु उसे अपनी शक्तियों पर स्वयं ही विश्वास नहीं होता। निराशा और भय निरन्तर उसे घेरे रहते हैं। सत्य के भय से वह काँपता है, आशा उससे बँधी रहती है। शक्ति उसकी दासी है और सदैव उसके आदेश की प्रतीक्षा में रहती है। यही कारण है कि सत्यनिष्ठा को हमारे शास्त्रों में एक महानतम उपासना के रूप में प्रतिष्ठित किया है। सत्यनारायण कथा का घर-घर में व्यापक प्रचार है। यहाँ सत्य को नारायण ईश्वर की संज्ञा दी गई है। इसका अभिप्राय यह है कि जो व्यक्ति सत्य को वरण करता है, वह ईश्वर का सामीप्य

प्राप्त करता है, ईश्वरीय शक्तियों को प्राप्त करने का श्रेय प्राप्त करता है, वह शक्ति का भण्डार हो जाता है। तभी कहा जाता है कि जो व्यक्ति सत्यनारायण कथा का श्रवण करता है, सत्यनिष्ठ बन जाता है, स्वर्ग-मुक्ति की सिद्धि उसे ही प्राप्त होती है। यह सत्यनिष्ठा मन्त्र साधकों के लिए वरदान सिद्धि होती है।

सत्य पालन का महान् गौरव—

सत्य का पालन आर्यों का परम धर्म रहा है। तभी हर प्रकार से वह शक्तिशाली हुआ करते थे। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

अभिमन्यु के मृतपुत्र को जिलाते हुए भगवान् कृष्ण ने कहा था—"मैं कभी झूठ नहीं बोलता। निश्चय ही सभी व्यक्तियों की उपस्थिति में मैं इस बालक को जिला दूंगा। मैं हँसी में भी कभी झूठ नहीं बोला हूँ। इसलिए यह बालक जी जाय। सत्य और धर्म सदा मेरे साथी रहे हैं। अत: यह बालक जी जाए।"

अध्यात्म रामायण के निम्न उदाहरण इस तथ्य की पुष्टि करते हैं—

जब निषादराज भगवान् राम से कहते हैं—"मैं भी आपके साथ चलूंगा, आप मुझे आज्ञा दीजिए, नहीं तो मैं प्राण छोड़ दूंगा।" इस पर राम कहते हैं—"मैं चौदह वर्ष दण्डकारण्य में रहकर यहां फिर आऊँगा। मैं जो कुछ कहता हूँ सत्य ही कहता हूँ, राम की बात कभी मिथ्या नहीं हो सकती।" जब राम केकई के पास जाते हैं तो उन्होंने केकई की बाते सुनकर कहा—"पिताजी के लिए मैं जीवन दे सकता हूँ, भयङ्कर विष पी सकता हूँ। सीता, कौशल्या तथा राज्य को भी छोड़ सकता हूँ। उन्होंने मेरे लिए जो आज्ञा की है, उसे मैं अवश्य पूर्ण करूँगा। यह सर्वथा सत्य है। राम दो बात कभी नहीं कहता।" जब महर्षि बाल्मीकि सीताजी को अयोध्या ले गये तो उन्होंने राम से कहा "इस पतिव्रता, धर्मपरायण, निष्कलंक सीता को तुमने कुछ समय हुआ लोकापवाद से डरकर भयङ्कर वन में मेरे आश्रम के पास छोड़ दिया

था अब वह अपना विश्वास देना चाहती है। आप उसे आज्ञा दीजिए यह दोनों सीता के साथ उत्पन्न हुए पुत्र हैं मैं सत्य कहता हूँ यह दोनों दुर्जन्य वीर आप ही की सन्तान हैं। हे राम ! मैं प्रजापति प्रचेता का दसवाँ पुत्र हूँ। मैंने कभी मिथ्या भाषण किया हो, ऐसा मुझे स्मरण नहीं है। वही मैं आपसे कहता हूँ कि यह बालक आप ही के पुत्र हैं।"

महाभारत के निम्न उदाहरण भी उपरोक्त भावों का समर्थन करते हैं—

परीक्षित को शाप देने वाले श्रृङ्गी ऋषि अपने पिता शमीक से कहते हैं" पिताजी ! मैं आपसे सत्य कहता हूँ अब यह शाप टल नहीं सकता। मैं हँसी मजाक में भी झूठ नहीं बोलता। फिर शाप देते समय कैसे झूठी बात कह सकता हूँ।" जरत्कारु मुनि के चले आने पर उसकी पत्नी जरत्कारु ने अपने भाई नागराज वासुकि से कहा—"राजन् ! उन्होंने पहले कभी विनोद में भी झूठी बात कही हो, यह मुझे स्मरण नहीं है।" जरत्कारु मुनि के पुत्र आस्तीक मुनि अपने मामा को ढाँढ़स बँधाते हुए कहते हैं कि "मैं जनमेजय के पास जाकर अपनी मंगलमयी वाणी से ऐसा सन्तुष्ट करूँगा जिससे राजा का यज्ञ बन्द हो जायगा। मैंने कभी हँसी मजाक में भी झूठी बात नहीं कही, फिर इस संकट के समय तो कह कैसे सकता हूँ।' भीष्म का कथन है—"मैंने जन्म से लेकर अब तक कोई झूठ बात नहीं कही है। जब तक मेरे शरीर में प्राण रहेंगे, तब तक मैं सन्तान नहीं उत्पन्न करूँगा।" व्यास गान्धारीसे कहते हैं "मैंने कभी हास-परिहास में भी झूठी बात मुँह से नहीं निकाली है फिर वरदान आदि अन्य अवसर पर कही हुई मेरी बात झूठी कैसे हो सकती है।"

सत्य की शास्त्रीय प्रतिष्ठा—

भारतीय शास्त्रों में सत्य की महत्ता का प्रतिपादन इस प्रकार किया गया है :—

महाभारत शान्ति पर्व में उल्लेख है कि हजार अश्वमेध और सत्य की तुलना की जाए तो सत्य ही अधिक शक्तिशाली होगा। एक और स्थान पर कहा है "जो लोग इस जगत् में स्वार्थ के लिए, परमार्थ के लिए या मजाक में भी कभी झूठ नहीं बोलते, उन्हीं को स्वर्ग की प्राप्ति होती है।" भगवान् कृष्ण ने भीष्म पितामह से कहा "चाहे हिमालय पर्वत अपने स्थान से हट जाए अथवा अग्नि शीतल हो जाए परन्तु हमारा वचन टल नहीं सकता।"

प्रश्नोपनिषद् के अनुसार "जिनमें तप ब्रह्मचर्य और सत्य प्रतिष्ठित है, उन्हीं को यह ब्रह्मलोक मिलता है। मुण्डक उपनिषद् के ऋषि ने बड़े साहस के साथ घोषणा की है कि परमविशुद्ध परमात्मा निःसन्देह सत्य भाषण, तप और ब्रह्मचर्य पूर्वक यथार्थ ज्ञान से ही सदा प्राप्त होने वाला है। उपनिषदों ने तो सत्य को ब्रह्म की संज्ञा दी है।

पुराणों की सत्य सम्बधी घोषणाएँ भी महत्वपूर्ण हैं। नारद पुराण में कहा है "सत्य से बढ़कर कोई तप नहीं है। स्कन्द पुराण के अनुसार सत्य तीर्थ है। मार्कण्डेय पुराण में विश्वामित्र का वचन है "सत्य से ही सूर्य तप रहा है। सत्य पर ही पृथ्वी टिकी हुई है। सत्य भाषण सबसे बड़ा धर्म है। सत्य पर ही स्वर्ग प्रतिष्ठित है। एक हजार अश्वमेध और एक सत्य को यदि तराजू पर तोला जाए तो हजार अश्वमेध से सत्य ही भारी सिद्ध होगा।" सभी पुराणों ने एक स्वर से कहा है कि सत्य ही धर्म, तपस्या योग है। सत्य ही सनातन ब्रह्म है। सत्य ही सबसे श्रेष्ठ यज्ञ है। सत्य में ही सब कुछ प्रतिष्ठित है। सत्य से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। सत्य की सदैव विजय होती है, झूठ की नहीं। सत्यवादी व्यक्ति संसार के सब कर्म करता हुआ जल में कमल पत्र के समान अलिप्त रहता है।

सत्य मन्त्र सिद्धि के लिए ब्रह्मास्त्र है—

इस कहावत में बहुत सार है कि सत्य में हजार हाथियों के बराबर बल होता है। सत्य स्वयं शक्ति का अवतार है, मूर्त रूप है। सत्य को

ही भगवान् कहा गया है। जो सत्य रूपी ढाल को सदैव साथ रखता है, वह सुरक्षित रहता है, उसे कोई पराजित नहीं कर सकता,संसार की कोई भी शक्ति उसके दुर्ग को तोड़ नहीं सकती, उसके निश्चय को मोड़ नहीं सकती। आसुरी शक्तियों के लिए सत्य एक ब्रह्मास्त्र का काम करता है। प्राचीन काल में भारतीय इसका निष्ठा से प्रयोग करते थे। तभी विजयश्री उनके पैंर चूमती थी।

सत्य को अपना परम धर्म मानने वाले व्यक्ति को ही मन्त्र सिद्ध हो सकता है। संसार की महानतम् शक्ति से जो व्यक्ति वंचित है वह शक्तियों के उपार्जन में कैसे सफल हो सकता है। प्राचीन काल में जीवन के हर क्षेत्र में मन्त्रों का प्रयोग किया जाता था। गृहस्थ से लेकर रणक्षेत्र तक में सिद्धिदायक मन्त्रों से सफलता प्राप्त की जाता थी। अस्त्र शस्त्रों को प्रभावशाली व शक्तिशाली वनाने के लिए मन्त्र ही प्रमुख साधन माने जाते थे। आधुनिक एटम व हाईड्रोजन बमों के समान विनाशकारी अस्त्रों का संचालन यन्त्रों द्वारा ही होता था। परन्तु उस शक्ति को प्रस्फुटित करने के लिए सत्य को ही आधार वनाया जाता था। सत्य के सहयोग से ही मन्त्र की शक्ति विकसित होती है। जहाँ सत्य का अभाव है, वहाँ मन्त्र भी निष्क्रिय वन जाते हैं और परिश्रम करने पर भी उसके लाभों से वंचित होना पड़ता है। अतः मन्त्र सिद्धि की साधना करने वाले साधक को चाहिए कि वह उत्य की उपेक्षा न करे, उसे अपना जीवन साथी मानकर साथ रखे तभी सिद्धि के द्वार क्रमशः खुलते चले जायेंगे।

शिष्टाचार मन्त्र सिद्धि का आवश्यक अंग है—

सदाचार वं शिष्टाचार के जिन मूल भूत नियमों का पालन प्रत्येक उत्तम नागरिक के लिए परम कर्तव्य माना गया है। मानवीय गुणों की सुरक्षा व विकास के लिए इनका ग्रहण करना अत्यन्त आवश्यक है। शास्त्रों ने बार-बार कहा है कि आचारहीन व्यक्ति लोक व परलोक में कहीं भी सुख-शान्ति प्राप्त नहीं कर सकता। जव उसे लोक में ही

सम्मान नहीं मिलता हर व्यक्ति उसे सन्देह, असम्मान और घृणा कीं दृष्टि से देखता है तो परलोक कल्याण की आशा कैसे कर सकता है। कठोपनिषद् में तो स्पष्ट रूप से घोषणा की है किसी व्यक्ति का बौद्धिक विकास कितना भी हो चुका हो, वह परमात्मा प्राप्ति, मानसिक सुख शान्ति के पथ पर कदापि नहीं चल सकता जब तक उसने बुरे आचरणों को छोड़ा न हो। स्पष्ट है कि बुरे आचरणों से व्यक्ति अपनी भौतिक या आध्यात्मिक, लौकिक व पारलौकिक शक्तियों को क्षीण करता रहता है। शक्तिहीन शक्ति को कभी सिद्धि के दर्शन नहीं होते। सिद्धि प्राप्त करने के लिए शक्ति नाश के सभी मार्ग बन्द होने चाहिए, शक्ति की सुरक्षा होनी चाहिए। तन्त्र साधना शक्ति विकास की साधना है। जो विषय वासनाओं में रत है, वह मन्त्र साधना में रुचि ही नहीं ले सकता, यदि किसी स्वार्थवश वह अपनाता भी हैं तो इसमें सहज मनो-रथ नहीं होता क्योंकि सिद्धि के मूलभूत कारणों की ओर तो उसका ध्यान नहीं जाता। जब कुवृत्तियों का वह त्याग नही कर सकता। मन्त्र सिद्धि का अधिकारी तो सदाचार सम्पन्न साधक ही है जो मानवीय गुणों व विभूतियों से ओत प्रोत होता है। अतः सिद्धि साधना में संलग्न साधक को चाहिये कि साधना के साथ-साथ सदाचार की ओर भी विशेष ध्यान दे।

सदाचार. शिष्टाचार और सत्यनिष्ठता गायत्री सिद्धि के आवश्यक अंग हैं। इनकी उपेक्षा साधना में व्यवधान समझा जायगा। अतः इनके पालन और विकास की ओर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए। अन्यथा सिद्धि की पूर्णता अशक्त रहेगी।

—※—

सिद्धिदायक तप साधनाएँ

सिद्धि प्राप्त करने के लिए निम्न तपश्चर्यायें विशेष लाभदायक रहती हैं। सुविधानुसार उन्हें अपनाना चाहिये—

१. ब्रह्मचर्य पालन–

गायत्री साधना के साथ ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक है। ब्रह्मचर्य स्वयं एक शक्ति है। साधना में इसका उपयोग विशेष उपयोगी रहता है। केवल विषय भोगों से बचना ही ब्रह्मचर्य नहीं है वरन् कामवासना का मानसिक चिन्तन भी इस परिधि के अन्तर्गत आता है। कामवासना को उद्दीप्त करने वाले उपन्यास, कहानियाँ, पत्र-पत्रिकायें व चल चित्र ब्रह्मचर्य को खण्डित करते हैं। अतः उनसे दूर रहना चाहिये। फिल्म तारिकाओं के सम्बन्ध में कोई वार्ता न करें। पराई स्त्री व लड़की को बुरी दृष्टि से न देखें। अपनी पत्नी के अतिरिक्त नारीमात्र को माता, पुत्री व बहिन की पवित्र दृष्टि से देखें। यह गायत्री को अत्यन्त प्रिय है।

२. उपवास–

अनुष्ठान काल में एक समय अन्न और एक समय फल लिया जा सकता है। यह आरम्भिक उपवास है। जब इसका अभ्यास हो जाए तो दोनों समय, फल, दूध, दही पर रहना चाहिए। कठोर व्रत करने वाले केवल दूध या छाछ भी लेते हैं। उपवास काल में जल का खुला उपयोग करना चाहिये। इसे बिना प्यास भी पीना चाहिये। नीबू मिला लिया जाए तो विशेष लाभदायक रहता है।

३. अस्वाद–

नमक व मीठे के प्रयोग से भोजन की विभिन्न वस्तुएँ स्वादिष्ट बनती हैं। इनका प्रयोग न करना अस्वाद व्रत कहलाता है। पहले तो केवल रविवार को ही यह व्रत रखना चाहिए। फिर ६ दिन के लघु अनुष्ठान में किया जा सकता है। अभ्यास होने पर एक मास, एक ऋतु अथवा एक वर्ष के लिए किया जा सकता है। नमक व मीठा

दोनों को एक साथ छोड़ना भी आवश्यक नहीं है। पहले नमक का अभ्यास कर लेना चाहिए। जब इसमें कुछ कठिनाई प्रतीत न हो तो मीठे का त्याग किया जा सकता है। नमक छोड़ने पर ऐसी साग सब्जी का प्रयोग करना चाहिए जिनसे स्वभावतः नमक पर्याप्त मात्रा में होता है। मीठा त्यागने पर ऐसे फलों आदि का उपयोग करें जिनमें स्वाभाविक रूप से शक्कर होती है। इसे सावधानी पूर्वक करना चाहिये अन्यथा हानिकारक सिद्ध होता है।

४. मौन–

अधिक बोलते रहने से शक्ति का व्यय होता है। कम बोलने अथवा मौन रहने से शक्ति का व्यय रुकता है। दूसरे शब्दों में शक्ति विकास में सहायता मिलती है। देवी तत्वों व आत्मबल की वृद्धि और चित्त की एकाग्रता के लिए मौन व्रत का पालन करना चाहिए। पहले इसको केवल सप्ताह में एक दिन रविवार को ही करना चाहिए। फिर सप्ताह में २-३ दिन का अभ्यास वढ़ाया जा सकता हैं। अनुष्ठान काल को पूरी अवधि में इसका पालन किया जाये तो अत्यन्त श्रेष्ठ है। मौनकाल में अपनी रुचि की पुस्तकों का अध्ययन व मनन-चिन्तन करना चाहिए।

५. तितिक्षा–

सहन शक्ति को वढ़ाना इसका उद्देश्य है। गर्मी के मौसम में पंखा, छाता, बर्फ कीं अत्यन्त आवश्यकता रहती है। इसके त्याग से सहन शक्तियों का परिचय मिलता है। सर्दी में भी कम से कम वस्त्रों का उपयोग इस व्रत का पालन करना है।

६. कर्षण साधना–

इसका अभिप्राय शारीरिक सुविधाओं के त्याग का अभ्यास करना है। साधना काल में भूमि या तख्त पर सोना चाहिये। जहाँ तक सम्भव हो, अपने काम स्वयं करने चाहिये, दूसरों से कम से कम

सेवा लेनी चाहिये। समय की सुविधा हो तो वस्त्र धोना, भोजन बनाना बर्तन साफ करना जैसा काम स्वयं ही करने चाहियें। बर्तनों के प्रयोग का भी त्याग किया जा सकता है और भोजन पत्तलों अथवा हाथ पर किया जा सकता हैं। जहाँ सम्भव होसवारी का उपयोग न करके पैदल यात्रा करनी चाहिये व जूता न पहनकर खड़ाऊँ व चट्डी का उपयोग किया जा सकता है।

७. निष्कासन साधना—

दोषों को छिपाना एक ऐसी स्वाभाविक कमजोरी है जिससे मन की गाँठें बन जाती हैं और उस तरह के पाप करने का स्वभाव ही बन जाता है। यह गाठें संस्कारों का रूप धारण कर लेती हैं और इनका परिणाम जन्म-जन्मान्तरों तक भुगतना पड़ता है। इन गाँठों को बनने से रोकने के लिये आवश्यक है कि इन दोनों का प्रकाशन किया जाता रहे। कुछ ऐसे गुप्त दोप होते हैं जिनका प्रकाशन अपने हित में नहीं होता या समाज असम्मान का भय होता। अतः कुछ ऐसे विश्वसनीय मित्रों को चुनना चाहिये जिनपर अपने दोषों को प्रकट किया जा सके। प्राचीनकाल में गौ हत्या का प्रायश्चित यह माना जाता था कि वह गाय की पूँछ को हाथ में लेकर सौ गाँवों में जाए और उच्च स्वर से अपने दोप को स्वीकार करे। महात्मा गाँधी ने अपनी आत्मकथा में अपने पिता की मृत्यु के समय भोग-विलास में लिप्त रहने की घटना लिखी है। अतः दोष प्रकाशन की क्रिया को अपनाने से पापों का बोझ हल्का हो जाता है।

८. प्रदातव्य साधना—

स्वार्थ को छोड़कर परमार्थ पथ पर बढ़ना इसका उद्देश्य है। दूसरों से लेने की नहीं वरन् दूसरों को देने की प्रवृत्ति को अपनाना चाहिये। इसका चुनाव अपनी सुविधा और शक्ति के अनुसार किया जा सकता है। हम दूसरों को किस प्रकार लाभ पहुँचा सकते हैं। दान

और सहायता केवल धन की ही नहीं होती है, यह अनेकों प्रकार की हो सकती है। दूसरों को सहयोग देने की भावना का विकास करना ही इसका उद्देश्य है और कुछ न हो सके तो चिड़ियां, कुत्तों, चींटी, गौ आदि को अन्न का दान ही करना चाहिए जो बहुत सरल है।

९. चन्द्रायण व्रत साधना—

पाप निवृत्ति के जितने उपाय शास्त्रों में वर्णित हैं, उनमें चान्द्रायण व्रत का विधान सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। यह व्यवहारिक भी है। कई विधान तो इतने कठोर और इतने असहनशील हैं कि आज की परिस्थितियों में उन्हें व्यवहार में लाना असम्भव सा ही है।

यह तो निश्चित है कि पाप की निवृत्ति भगवान् से क्षमा माँगने से नहीं हो जाती, न ही तीर्थ स्थान अथवा मन्दिर में भगवान् के दर्शन से हो जाती है। पाप के कुसंस्कार मन में गहरी जड़ जमाये रहते हैं। उनको उखाड़ फेंकना कोई सहज कार्य नहीं है। उसके लिए कोई प्रायश्चित व दण्ड व्यवस्था आवश्यक है। न्यायाधीश अपराधी को दण्ड देते हैं। ईश्वर भी अपराधी को उसके पापों और कर्मों के अनुसार परिणाम भुगतने के लिये निष्पक्ष रूप से विवश करते हैं। दोनों का उद्देश्य केवल यही रहता है कि अपराधी अपने अपराध को स्वीकार करे और दण्ड से भयभीत होकर भविष्य में उससे बचने का संकल्प करे। दण्ड के अभाव में अपराध करने का पुनः साहस होता है और वह पाप कर्म संस्कारों के रूप में एकत्रित होते रहते हैं। इसीलिये राजकीय न्यायालयों की तरह ईश्वरीय दण्ड व्यवस्था भी सुनिश्चित है। तभी ईश्वर को न्यायकारी, समदर्शी और निष्पक्ष कहा जाता है। यदि उसके विधान में शिथिलता आ जाये तो सब ओर अव्यवस्था फैल जाये।

मनुष्य स्वभाव से दुर्बल है। न चाहते हुए भी उससे अनेकों पाप बन पड़ते हैं। ईश्वरीय दण्ड व्यवस्था के अनुसार तो उसे उस

पाप का दण्ड भुगतना ही होगा। फिर भी यदि वह अपनी भूल को मान जाए, प्रायश्चित्त करले और कुछ अल्प दण्ड स्वयं ही सहन कर ले तो ईश्वरीय दण्ड की कुछ सीमा तक पूर्ति हो सकती है और शायद कम यातना सहकर उस पाप दण्ड की निवृत्ति हो जाये। इसीलिये आचार्यों ने विभिन्न प्रकार के अपराधों के लिये अलग-अलग प्रायश्चित्त निर्धारित किये है। उनमें चान्द्रायण व्रत ही श्रेष्ठ, व्यवहारिक और आज की परिस्थितियों के अनुकूल है जिससे अनेकों महापातक व उप-पातक नष्ट हो जाते हैं और ईश्वरीय दण्ड विधान की आवश्यकता की भी कुछ पूर्ति हो जाती है। अधिकांश पापों की निवृत्ति के लिये इसी व्रत की व्यवस्था की घोषणा की गई है। शास्त्र स्वयं इसका समर्थन करते हैं। यथा—

अनादिष्टेषु पापेषु शुद्धिश्चान्द्रायणेन तु।
धर्मार्थं यश्चरेदंतच्चन्द्रस्यति सलोकताम्॥

"पाप निवृत्ति के जहाँ प्रायश्चित-विधान उपलब्ध न हों, वहाँ चान्द्रायण व्रत ही समझना चाहिए। इस व्रत को आत्म शुद्धि के लिए जो तप समझ कर करता है, वह परम गति को प्राप्त होता है।"

हेमाद्रि में इसकी महिमा का वर्णन हैं—

व्रतं चान्द्रायणं राजन् सर्वसिद्धि प्रदायकम्।
यथा विष्णुर्हि देवानां द्विपदां ब्राह्मणो यथा॥
नागानांच यथा मेरु गौर्वरिष्ठा चतुष्पदाम्।
धातुनां कांचनं चैव व्रतं चान्द्रायणं तथा॥

"चान्द्रायण व्रत से सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती है। जिस तरह से देवताओं में विष्णु, मनुष्यों में ब्राह्मण, पर्वतों में सुमेरु, पशुओं में गौ और धातुओं में सोने की श्रेष्ठता स्वीकार की जाती है, उसी तरह व्रतों में चान्द्रायण व्रत की श्रेष्ठता स्वीकार की गई गई है।"

शास्त्रों में इसके माहात्म्य का भी वर्णन किया है—

एवं या कुरुते नारी नारो वा यत मानसः।
धन धान्यादि सम्पत्तिर्भवेत्तस्य गृहे सदा ॥
नारी सुखमवाप्नोति त वैधव्यं प्रजायते।
सौभाग्यदं परं स्त्रीणां पुत्र पौत्र सुखप्रदम् ॥

जो नर नारी इस व्रत को पूर्ण विधि विधान और संयम के साथ करते है, उन्हें धन-धान्य की कमी नहीं रहती। जो स्त्रियाँ इसे करती हैं, वह सौभाग्यवती रहती हैं, उन्हें वैधव्य दुःख नहीं सताता और पुत्र पौत्रों का सुख प्राप्त होता है।

यह माहात्म्य कुछ हद तक ठीक भी है क्योंकि पापों के प्रायश्चित और निवृत्तिके साथ-साथ सुख शान्ति की वृद्धि होना स्वाभाविक ही है।

पातंजलि योग दर्शन के अन्तर्गत क्रिया योग में तप को प्रथम स्थान प्राप्त है। 'व्यासभाष्य' और 'भोजवृत्ति' में कहा गया है—

'तप का अभिप्राय है—शास्त्रों में वर्णित चान्द्रायणादि व्रतों का अनुष्ठान।'

वास्तव में यह व्रत उत्तम तप की श्रेणी में आता है। तप के सभी आधार इसमें उपस्थित हैं।

चान्द्रायण व्रत का स्थूल विधान इस प्रकार से है कि पूर्णिमा से अमावस्या तक अपने निश्चित भोजन का चौदहवाँ भाग कृष्णपक्षमें कम करना होता है और अमावस्या प्रतिपदा को कुछ भी न खाकर शुक्ल पक्ष में दौज से लेकर एक एक १४ वाँ भाग बढ़ाते हुए पूर्णिमा तक उतने ही निश्चित पूर्ण भोजन तक पहुँचना होता है जितना कि व्रत आरम्भ करने के पहिले किया था। आहार ग्रहण करने का विधान यही है।

इस व्रत का विधान केवल मात्र उपवास के कुछ विशिष्ट नियमों का पालन करने तक ही सीमित नहीं है। इसके साथ कुछ साधनाएँ भी सम्बन्धित हैं जिनसे विवेक बुद्धि जाग्रत होकर पापों का सच्चा प्रायश्चित हो जाता है और मन से ही वह पापों से घृणा करने लगता है। इसके लिए सर्वश्रेष्ठ साधना है—गायत्री महामन्त्र का सवालक्ष का पुरश्चरण जो इस एक मास में ही पूरा कर लेना चाहिए। चान्द्रायण व्रत के साथ गायत्री साधना सोने पर सुहागे का काम करती है। इससे आत्मबल की वृद्धि होती है और आत्मा पर जमे मल धुलने लगते हैं, साधक को अपनी भूलों की अनुभूति होती है और जिस अनुपात से शक्ति का विकास होता जाता है उतना ही उसके विचारों और कर्मों में परिवर्तन और परिमार्जन होता चलता है। यही व्रत साधना की सफलता है। यदि यह जागृति न हो तो समझना चाहिए कि अभी व्रत का पूरा लाभ प्राप्त नहीं हुआ है। इसे पुनः पुनः करना चाहिए।

चान्द्रायण व्रत एक श्रेष्ठ साधना और तप है। तप से सिद्धि का प्राप्त होना स्वाभाविक है। इसकी उपेक्षा करने से ही सिद्धि भी उसकी उपेक्षा करती है। अतः सिद्धि प्राप्त करने के लिए चान्द्रायण व्रत साधना अत्यन्त आवश्यक है।

—×—

भौतिक सिद्धियों का सरल मार्ग गायत्री

गायत्री एक शक्ति है। इससे विवेक बुद्धि की जाग्रति, सतोगुण की वृद्धि दोषो, दुर्गुणों व दुष्प्रवृत्तियों का विनाश होकर सद्गुणों का विकास और आत्मोत्थान कुछ ऐसे लाभ हैं जिनका निष्काम साधना से प्राप्त होना निश्चित है। यही कारण है कि जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष

की प्राप्ति के लिये इसी महामन्त्र की ऋषि मुनि साधना किया करते थे। गायत्री से केवल निष्काम ही नहीं, सकाम साधनायें भी सफल होती देखी गई हैं। कुछ प्रयोजनों की सिद्धि का विधि विधान यहाँ दिया जा रहा है। इसका यह अर्थ नहीं है कि गायत्री से केवल उन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति होना सम्भव है। वास्तव में इसे किसी भी कार्य की सफलता के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। विश्वास और भावना से की गई हर साधना में सिद्धि मिलेगी, ऐसा हमारा विश्वास है।

१. बुद्धि का विकास—

गायत्री बुद्धि को शुद्ध व पवित्र करने का विशिष्ट मन्त्र है। इससे मन्द बुद्धि वाला बालक प्रखर बुद्धि सम्पन्न हो जाता है। जिन बालकों को स्कूल का पाठ भली प्रकार याद नहीं हो पाता, वे निश्चित रूप से इस साधना से लाभान्वित हो सकते हैं। महर्षि विरजानन्द सरस्वती प्रज्ञा चक्षु थे, उन्होंने किसी विद्यालय में शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। वे ऋषिकेश में गंगाजल में खड़े होकर गायत्री मन्त्र का जप किया करते थे। फलस्वरूप वह चारों वेदों के प्रकाण्ड पण्डित बने और दयानन्द जैसे शिष्य का निर्माण कर सके। महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती बाल्यकाल से बड़े मन्द बुद्धि के थे। स्कूल में पढ़ने योग्य न समझ कर इनके पिता ने उन्हें पशु चराने का ही काम सौंप दिया था। परन्तु गायत्री जाप से उनका इतना विकास हुआ कि उन्होंने जीवन भर मिलाप दैनिक का लाहौर व दिल्ली से सफल सम्पादन किया और आज वह वेद, शास्त्रों व आध्यात्मिक विषयों के उत्तम वक्ता माने जाते हैं।

साधना इस प्रकार करें कि मस्तक को जल से भिगोयें और सूर्योदय की प्रथम किरणें उस पर पड़ने दें। पूर्व की ओर मुख करके बैठे आँखों को अधखुला रखें और गायत्री से पहले ३ बार 'ॐ' का पाठ करते हुए गायत्री मन्त्र का श्रद्धापूर्वक जप करें। जप १०८ मन्त्रों

का अर्थात् एक माला का तो होना ही चाहिए। अधिक सुविधा हो तो ३, ५, ७, ९, ११ मालाओं का जप किया जा सकता है।

जप के बाद दोनों हाथों की हथेलियों को सूर्य की ओर करें और भावना करें कि बनमें सूर्य की शक्ति प्रविष्ट हो रही है। गायत्री मन्त्र का उच्चारण करते हुए हथेलियों को आपस में रगड़ें और उनको मस्तक, सिर, नेत्रों, मुख, गले, कान आदि सभी गलेके ऊपरी भागों पर फेरें और यह भावना करें मेरे मस्तिष्क के तन्तु खुल रहे हैं।

२. लक्ष्मी की प्राप्ति—

आर्थिक रूप से गिरे व्यक्तियों के लिए यह साधना रामबाण का सा काम करती है। व्यापार में घाटा हो या परिवार के पालन-पोषण के उपयुक्त आमदनी न हो पाता हो, व्यापार में हर काम में हानि ही हानि होती हो, नौकरी न मिलती हो या मिलने में कोई अड़चन पड़ जाती हो, ऋण की निवृत्ति न हो पा रही हो तो नीचे दिये विधान से गायत्री साधना करनी चाहिए :—

लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए गायत्री मन्त्र के अन्त में ३ बार श्रीं बीज मन्त्र का सम्पुट लगाकर जप करना चाहिए। जप कम से कम एक माला का होना चाहिए। जप जितना अधिक किया जायेगा उतना ही लाभ शीघ्र होगा।

पीत वर्ण लक्ष्मी का प्रतीक माना जाता है। हाथी पर सवार, पीताम्बरधारी गायत्री का ध्यान करें। पूजामें आसन, यज्ञोपवीत, वस्त्र, पुष्प सभी पीले होने चाहिए। भोजन में पीली वस्तुओं का ही प्रयोग करना चाहिए। रविवार को उपवास करें। शुक्रवार को तेल में हल्दी मिलाकर मालिश करें।

जप साधना करते हुए इस प्रकार का ध्यान करें कि गायत्री माता प्रसन्न होकर सफलता का आशीर्वाद दे रही है और मेरे ऊपर लक्ष्मी की वर्षा हो रही है।

३. रोग निवृत्ति०

रोगी यदि स्वयं साधना पर बैठ सके तो हरे वस्त्र धारण किये हुए वृषभ वाहिनी गायत्री का ध्यान करना चाहिए। बैठना सम्भव न हो तो गायत्री का मानसिक जप करते रहना चाहिए और तन्त्र केमन्त्र में बीज मन्त्र का सम्पुट लगाना चाहिए। रोग निवारण के लिए पांच प्रकार के सम्पुट लगाये जाते हैं आयुर्वेद के अनुसार रोगोंके तीन कारण होते है—कफ, पित्त, वात। इन्हीं के अनुसार तीन बीज मन्त्रों का विधान रोगों में 'ऐ' बीज मन्त्र वात प्रधान रोगों में 'हूं' बीज मन्त्र का सम्पुट लगाना चाहिए और भावना करनी चाहिए कि गायत्री की सविता शक्ति मन्त्रोच्चारण के साथ मेरे शरीर में प्रविष्ट हो रही है और रोग को नष्ट कर रही है, परिणाम स्वरूप मेरा शरीर स्वस्थ व सबल हो रहा है।

यदि कोई गायत्री सिद्ध साधक किसी दूसरे रोगी का उपचार करना चाहता हो तो ध्यान और बीज मन्त्रों का प्रयोग उपरोक्त विधि से ही रहेगा उपचारकर्त्ता को मन्त्र का उच्चारण करते हुए पीड़ित अंग पर हाथ फेरना चाहिए और आमन्त्रित जल का मार्जन करना चाहिए। उस विशिष्ट रोग के लिये आयुर्वेद या अन्य दवा का उपचार चल रहा हो तो वह चलता ही रहना चाहिए।

४. रक्षा कवच—

मानसिक सुख शान्ति, शारीरिक रोगों से निवृत्ति, आर्थिक अड़चनों को दूर करने के लिये यह कवच धारण किया जाता है। भूत प्रेत बाधा, चोर डकैत, शत्रु, राजदण्ड, बुरे भविष्य की चिन्ता, हानि की आशंका, अकाल मृत्यु व रोगादि के भय से यह कवच रक्षा करता है।

किसी रविवार या अन्य शुभ दिन देखकर उपवास रखना चाहिए। गोरोचन,जायफल, सावित्री, कस्तुरी, केशर—इन ५ वस्तुओं

को मिला कर स्याही बनावें, भोज पत्र पर अनार की कलम से पाँच प्रणव (ॐ) लगा कर गायत्री मन्त्र लिखें। बिना पालिश किये कागज पर भी यह लिखा जा सकता है। इस चाँदी के तावीज में बन्द कर धारण करना चाहिए। यह हर प्रकार के भय से रक्षा करता है।

५. सुखी प्रसव के लिये—

काँसे की थाली में अनार की कलम से उपरोक्त विधि से बनी स्याही से पाँच प्रणव युक्त गायत्री मन्त्र लिखें और प्रसव कष्ट के समय प्रसूता को दिखावें फिर थाली में जल डालकर गायत्री मन्त्र का उच्चारण करें और घोलकर प्रसूता को पिलादें। इससे कष्ट की निवृत्ति होती है और प्रसव सुखपूर्वक होता है।

६. भूत बाधा की निवृत्ति—

भूत बाधा के लिए गायत्री हवन श्रेष्ठ माना गया है। इसमें सतो-गुणी हवन सामग्री लेनी चाहिए। गायत्री मन्त्र से आहुतियाँ दें और हवन कुण्ड के पास रखा हुआ जल जो अग्नि से तप चुका है, रोगी को पिलावें। यज्ञ भस्म रोगी के विभिन्न अङ्गों मस्तक, नेत्र, हृदय, मुख, नासिका, कान आदि पर लगावें, इससे लाभ होगा। गायत्री यज्ञ की भस्म को सुरक्षित रख लेना चाहिए अकस्मात् किसी को भूत बाधा हो जाय तो इसका प्रयोग करना चाहिए।

७. पुत्र प्राप्ति के लिये—

गर्भ गिर जाते हों, गर्भ की स्थापना ही न होती हो या केवल लड़कियाँ ही होती हों और पुत्र की आकांक्षा हो तो गायत्री की इस प्रकार साधना करनी चाहिए :—

इस साधना को पति-पत्नी दोनों करें। कमल पुष्प हाथों में धारण किये हुए, किशोर अवस्था वाली, श्वेत वस्त्र व आभूषणों से विभूषित, गायत्री माताका ध्यान करना चाहिए। माला चन्दन की होनी चाहिए।

'यं' बीज मन्त्र के तीन सम्पुट लगाकर गायत्री जप करें। प्राणायाम की विधि इस प्रकार है :—

पूरक में धीरे-धीरे पेट तक पूरी साँस भर लें। अन्त में कुम्भक में जब श्वास रोकेंतो तीन बार "य" बीज मन्त्रका सम्पुट लगाकार गायत्री का जप करना चाहिए। तीन बार अधिक प्रतीत हो तो कम से कम एक बार तो जप करना ही चाहिएं। फिर धीरे-धीरे स्वांस को बाहर निकाल दें। रेचक में उतना ही समय लगाना चाहिए जितना कि पूरक में लगाया था। बाह्य कुम्भक में भी अन्तर कुम्भक के समान लगाना चाहिए। इस प्रकार बारह बार नित्य प्राणायाम करने का विधान है। इस प्रकार पेट में गायत्री शक्ति का आकर्षण किया जाता है और गर्भाशय या वीर्य कोष में शुभ्र वर्ण ज्योति का ध्यान किया जाता है।

जब तक साधना चले, प्रत्येक रविवार को भोजन में श्वेत वस्तुओं का ही प्रयोग करना चाहिए। इनमें दूध, दही, चावल श्रेष्ठ माने जाते हैं।

गायत्री शक्ति को धारण कराने वाली इस साधना से चरित्रवान् बुद्धिमान् और स्वस्थ बालक की आशा करनी चाहिए।

८. विरोधियों को अपने अनुकूल बनाना—

विरोधी कितना भी शक्तिशाली, उच्चपद पर आसीनहो और अपने हर काम में बाधा उपस्थित कर रहा हो तो उसे अपने अनुकूल बनाने के लिये तीन प्रणव (ॐ) लगा कर गायत्री का जप करना चाहिए। जप काल में इस प्रकार ध्यान करना चाहिये कि हमारे मस्तिष्क मे से नील वर्ण का विद्युत-प्रवाह निकलकर उसके मस्तिष्क मे जा रहा है जिसे अपने अनुकूल बनाना है और वह उससे प्रभावित होकर हाथ जोड़ कर हमारे सामने खड़ा होकर प्रसन्न मुद्रा में हमारे अनुकूल विचारों में बात चीत कर रहा है और अपनी मित्रता व सहयोग का आश्वासन दे रहा है। किसी व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये यह ध्यान अत्यन्त सफल सिद्ध हुआ है।

९. राजकीय कार्यों में सफलता के लिए—

नौकरी के लिए किसी अधिकारी के समक्ष उपस्थित होना; कोई आवश्यक आवेदन पत्र स्वयं देना हो, कोई मुकद्मा या किसी प्रकार कोई और कार्य हो तो इस प्रकार साधना करें :—

इन कार्यों में सफलता प्राप्त करनेके लिए स्वरयोगका प्रयोग किया जाता है। पहले यह देखना चाहिए कि अपना बायाँ या दायाँ कौन सा स्वर चल रहा है। बायाँ स्वर चलने पर हरित वर्ण ज्योति का ध्यान करे और दाहिना स्वर चलने पर पीत वर्ण प्रकाश का ध्यान करें और सप्त व्याहृतियाँ (ॐ भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम्) सहित मानसिक रूप से गायत्री का कम से कम बारह बार जप करें। जप करते समय उसी हाथके अंगूठे के नाखून पर दृष्टि बनी रहेगी स्वर चल रहा है। इस प्रकार कार्यालय में प्रविष्ट हों और धारणा करें कि वह अधिकारी अपनी इच्छा के अनुरूप हमसे वार्तालाप कर रहे हैं। जब तक कार्यालय में रहें, इसी प्रकार का मानसिक जप व भावना करतेही रहना चाहिए। यह साधना प्रतिकूल विचारों को अनुकूल बना देती है।

१०. विष निवृत्ति—

सर्प, बिच्छू, बर्र, ततैया आदि विषैले जीवों के कांटने पर अनेकों प्रकार के प्रयोग व औषधियों को प्रयोग किया जाता है। गायत्री का निम्न प्रयोग भी लाभदायक सिद्ध होता है :—

प्रयोग करते समय जो भी स्वर चल रहा हो, उसी हाथ पर थोड़ी सी पीपलवृक्ष की समिधाओं से किये हवन की भस्म को लेकर दूसरे हाथ से उसे अभिमन्त्रित करें और बीच में 'हूँ' बीज मन्त्र का सम्पुट लगाते चले और रक्त वर्ण अश्वारूढ़ गायत्री का ध्यान करते हुए भस्म को काटे स्थान पर मलना चाहिये। कष्ट शीघ्र ही कम हो जाता है। सर्प काटे पर प्रयोग करना हो तो चन्दन की समिधाओं से किये गये गायत्री हवन की भस्म को मसलना चाहिए। अभिमन्त्रित करके रोगी

को शुद्ध घी पिलाये। इसके साथ-साथ पीली सरसों को उपरोक्त विधि से अभिमन्त्रित करें और उसे पीस करके सभी इन्द्रियों के मुखों पर लगादें। इससे सर्प विष का नाश होता है।

११. शत्रुता का परिहार–

शत्रु के नित्य हानि पहुँचाने वाली मनोवृत्ति द्वेष भाव का परिवर्तन करना हो तो इस प्रकार गायत्री की साधना करनी चाहिए:—

साधना में लाल वस्त्र धारण करें, ऊन का आसन बिछावें। जिस व्यक्ति की द्वेष भावता को दूर करनाहो, उसका नाम पीपलके पत्ते पर लाल चन्दन की स्याही और अनार की कलम से लिखें। उसे उल्टा करके अपने सामने रख दे। चार 'क्लीं' बीज मन्त्रों का सम्पुट लगाकर गायत्री मन्त्र का उच्चारण करें और प्रत्येक मन्त्र के उच्चारण के पश्चात् चम्मचसे कुछ जल उस पत्ते पर छोड़ता जायें और यह भावना करें कि वह व्यक्ति कट्टर शत्रुता को भूलकर हम सेमित्र भाव से बात चीत कर रहा है। इस तरह कम से कम १०८ मन्त्रों का जप करना चाहिए। ध्यान सिंह को सवारी किये हुए, हाथमें खड्ग लिये, विकराल भाव बनाये हुए दुर्गा वेषधारी गायत्री का करना चाहिये। जप लाल चन्दन की माला से करना चाहिए। वर्षों की शत्रुता इस साधना से समाप्त हो जाती है।

१२. चोरी- डकैती से सुरक्षा के लिए–

प्रातः काल शौचादिसे निवृत होकर पूर्वाभिमुख होकर पूर्व निर्देशित विधि से कम से कम एक माला गायत्री का जप करें और इस प्रकार ध्यान करें कि लक्ष्मण रेखा की तरह मकान के चारों ओर विद्युत की एक चमकती हुई रेखा खिची हुई है जिसे पार करना किसी आसुरी प्रवृत्ति वाले व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं है। मुख्य द्वार पर सिंहारूढ़, खड्ग हस्ता, विकराल वदना, दुर्गा वेषधारी गायत्री सुरक्षा में तत्पर हैं और द्वारकी ओर आने वालों को वह अपने अस्त्र शस्त्रों व तेजसे नष्ट

कर रही है। रात्रि को सोते समय भी तीन बार गायत्री का मानसिक उच्चारण करते हुए यही ध्यान करना चाहिए ।

१३. दुःस्वप्नों का निवारण—

कभी कभी ऐसे स्वप्न आते हैं जो बुरे भविष्य का संकेत करते हैं या जिनके स्मरण आते ही मन में भय उत्पन्न होता है । यदि इसकी आशंका बनी रहे तो नित्य प्रति दस माला गायत्री का जप करना चाहिए । गायत्री सहस्रनाम का पाठ भी बुरे स्वप्नों के नाश के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ है ।

१४. अनिष्टों के नाश के लिए—

किसी के बुरे शकुन या मुहूर्तके उपस्थित होने पर जब किसी कार्य को आरम्भ करने में आशंका हो तो गायत्री की एक माला का जप करके वह कार्य आरम्भ किया जा सकता है । विवाह आदि में चन्द्रमा, वृहस्पति व सूर्यादि को कोई बाधा बताई जाती हो, विवाह न बन रहा हो या ऐसीही और कोई रुकावटहो तो गायत्री का नौ दिनका २४००० जप का एक लघु अनुष्ठान कर लेना चाहिए। इससे इस प्रकार की सभी बाधायें शान्त हो जाती हैं और किसी भी अनिष्ट का भय नहीं रहता और बुरे मुहुर्त व शकुनों का परिहार हो जाता है ।

यहाँ कुछ थोड़े से ही सकाम प्रयोजनों की सिद्धि का विधान दिया गया है । इससे यह नहीं समझना चाहिये कि गायत्री शक्ति का क्षेत्र इन्हीं तक सीमित है । वास्तव में किसी भी उद्देश्य की पूर्ति के लिये इस शक्ति का उपयोग किया जा सकता हैं और श्रद्धापूर्वक की गई साधना सफल ही होती है ।

—×—

गायत्री के विविध सिद्धि प्रयोग

देवी भागवत में गायत्री विविध प्रयोग इस प्रकार वर्णित किये गये हैं—

नारायण महाभाग गायत्र्यास्तु समासतः ।
शांत्यादिकान्प्रयोगांस्तु वदस्व करुणानिधे ।१
अतिगुह्यमिदं पृष्टं त्वया ब्रह्मतनूद्भव ।
न कस्यापि च वक्तव्यं दुष्टाय पिशुनाय च ।२
अथ शांति पयोऽक्ताभिः समिद्भर्जु हुयातद्द्विजः ।
शमीसमिद्भिः शाम्यन्ति भूतरोग्रहादयः ।३
आर्द्राभिः क्षीरवृक्षस्य समिद्भर्जु हुयात्द्विजः ।
जुहुयाच्छकलेर्वापि भूतरोगादिशांतये ।४
जलेन तर्पयेत्सूर्यं पाणिभ्यां शांतिमान्नुयात् ।
जानुदघ्ने जले जप्त्वा सर्वान्दोषान्नछम नयेत् ।५
कंठदघ्ने जले कप्त्वा मुच्येत्प्राणातिकाद्भयात् ।
सर्वेभ्यः शान्तिंकर्मभ्यो निमज्ज्याप्सुः जपः स्मृतः ।६

नारदजी बोले—हे नारायण ! हे महाभाग ! हे करुणानिधे ! अब आप गायत्री के शान्ति आदि प्रयोगों को मुझसे कहिए ।१। नारायण बोले—हे नारद ! तुमने यह अत्यन्त गूढ़ रहस्य पूछा है । यह विषय किसी कृपण अथवा दुष्ट पुरुष के समक्ष कहने योग्य नहीं है ।२। अब शान्त प्रयोग कहता हूँ—द्विज पहले एक सहस्र गायत्री जपे फिर दुग्ध मय समिधाओं से होम करें । शमी की समिधायें श्रेष्ठ हैं । इससे भूत रोग और ग्रहादि दोष शान्त होते हैं ।३। सभी भूतरोग आदि के निमित्त गीले, दूध, वाले पीपल, गूलर, वट आदि वृक्षोंकी समिधायें लेकर हवन करना चाहिए ।४। इसके बाद हाथ में जल लेकर सूर्य का तर्पण करें, तो शान्ति होती है । जानु पर्यन्त जल में खड़े रहकर गायत्री मन्त्र जपे

तो दोष शान्त होते हैं ।५। कण्ठ तक जल में जप करें तो मृत्यु का भय नहीं रहता । जल में निमग्न रहकर जप करना तो सभी प्रकार की शान्ति करता है ।

सौवर्णेराजते वापि पात्रे ताम्रमयेऽपिवा ।६
क्षीरवृक्षमये वापि निर्व्रणे मृण्मयेऽपि वा ।७
सहस्र पंचगव्येन हुत्वा सुज्वलितेऽनले ।
क्षीरवृक्षमयैः काष्ठै शेष सम्पादयेच्छनैः ।८
एत्याहुति स्पृशञ्जन्त्वा सहस्र पात्रसंस्थितम् ।
तेन तं प्रोक्षयेद्देशं कुशैर्मन्त्रमनुस्मरन् ।९
बलि किरस्ततस्तभिन्ध्यायेत्तु परदेवताम् ।
अभिचारसमुत्पन्ना कृत्या पापं च नश्यति ।१०
देवभूतपिशाचादीन् यद्यैवं कुरुते वशे ।
लिखने मुच्यते तेभ्यो लिखने मेध्यतोऽपि च ।
मंडले शूलमालिख्य पूर्वोक्ते च क्रमेऽपि वा ।१२

स्वर्ण, चांदी, ताम्र, मृत्तिका या किसी दूध वाले वृक्ष की लकड़ी के पात्र में रक्खे हुये पंचगव्य और दुग्धमयी समिधाओंसे एक हजार गायत्री मन्त्र उच्चारण करता हुआ अग्नि में धीरे-धीरे हवन करें अर्थात् प्रत्येक आहुति के साथ मन्त्र पाठ करता हुआ पंचगव्य से समिधा स्पर्श कराके प्रज्वलित अग्नि में हवन करें । इस प्रकार एक हजार बार करें । फिर एक सहस्र गायत्री के जप के द्वारा पात्र में बचे हुए पंचगव्य को अभिमन्त्रित करें और मन्त्र के स्मरण पूर्वक कुशों को पंचगव्य में डुबोकर छींटे दें इसमें स्थान का प्रोक्षण होता है ।७-९। फिर बलि प्रदान करता हुआ परमदेव का ध्यान करे. इस प्रयोग से अभिचार कर्म द्वारा उत्पन्न हुई कृत्या और पाप का नाश होता ।१०। इसे करने वाले पुरुष के वश में देवता, भूत और पिशाच भी हो जातेहैं । तथा घर, ग्राम, नगर और राष्ट्र किसी पर भी उनका प्रभाव नहीं होता पृथ्वी पर चतुष्कोण मंडल

खींचकर उसके मध्य में गायत्री मन्त्र उच्चारण करता हुआ त्रिशूल बनावे, इस प्रयोग में पिशाचों से रक्षा होती है ।१२।

अभिमन्त्रय सहस्र तन्निखनेसर्वतां तये: ।
सौवर्ण राजतं वापि कुभं ताम्रमयं च वा ।१३
मृण्मयं वा नव दिव्यं सुत्रवेष्टितमव्रणम् ।
स्थंडिले सैकते स्थाप्य पूरयेन्मन्त्रविज्जलैः ।१४
दिग्भ्य आहृत्य तीर्थानि चतसृभ्यो द्विजोत्तमैः ।
एकाचन्दन कर्पूर जातीपाटलमल्लिकाः ।१५
बिल्वपत्रं तथाक्रातां देवीव्रीहियवांस्तिलाम् ।
सर्षपान्क्षीरवृक्षाणां प्रवालानि च निक्षिपेत् ।१६
सर्वाण्य विविधायैवं कुशकूर्चसमन्वितम् ।
स्नातः समाहितो विप्रः सहस्रं संत्रयेत्: बुधः ।१७
दिक्षु सौरानधीयीरन्मंत्रान्विप्रांस्त्रयीविदः ।
प्रोक्षयेत्पाययेदेदं नीरं तेनाभिषिंचयेत् ।१८
भूतरोगाभिचारेभ्यः स निर्मुक्तः सुखी भवेत् ।
अभिषेकेण मुच्येत मृत्योरास्य गतो नरः ।१९

अथवा पूर्व प्रकार चतुष्कोण मंडल में एक सहस्र गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित त्रिशूल गाड़कर वही सोने, चांदी, ताम्र या मिट्टीका कोरा छिद्र रहित कलश स्थापित करें। उसे वस्त्र या सूत्र से वेष्ठित कर बालू की वेदी पर रक्खे और मन्त्रपूत जल से भर दे ।१३-१४। फिर उसमें चारों दिशाओं के तीर्थों का आवाहन करे और इलायची, चन्दक, कपूर जायफल, गुलाब, मल्लिका बिम्बपत, विष्णुक्रान्ता, सहदेवी, ब्रीहि, तिल धान, जौ, सरसों और दूध वृक्षोके पत्ते डाल दें ।१५-१६। कुश निर्मित सत्ताईस कूर्च उसमें रखकर स्नानादि से पवित्र एवं जितेन्द्रिय विद्वान् विप्र उस कलश को एक सहस्र गायत्री से अभिमन्त्रिक करें ।१७। ज्ञाता विप्र को चारों दिशाओं में सूर्यादिका स्तोत्र पाठ और इस अभिमन्तित जल में प्रोक्ष्य, पान और अभिषेक करना चाहिये ।१८। इस

अभिषेक विधि के प्रभाव से भूतरोग और अभिचारादि से संतप्त तथा मृत्यु मुख में गिरा हुआ भी सब प्रकार सुरक्षित एवं सुखी रहता है।१९।

अवश्यं कारयेद्विद्वत्राजादीर्घ जिजीविषु ।
गावो देवाश्च ऋत्विग्भ्य अभिषेके शतंमुने ।२०
दक्षिणा येन वातुष्टिर्यथाशक्त्याऽथवा भवेत् ।
जपेदश्वत्थमालभ्य मद्वारे शतं द्विजः ।२१
भूतरोगाभिचारेभ्यो मुच्यते महतो भयात् ।
गुडूच्या पर्वविच्छिन्ना पयोऽक्ता जुहुगाद्द्विजः ।२२
एव मृत्यु जयो होमः सर्वव्याधि विनाशनः ।
आम्रस्य जुहुयात्पत्रैः पयोऽक्तैर्ज्वरशांतये ।२३
वचोभि पयसाक्ताभिः क्षय हृत्वा विनाशयेत् ।
मधुत्रयहोमैने राजयक्ष्मा विनश्यति ।२४
निवेद्य भास्करायान्नं पाय सं होमपूर्वकम् ।
राजयक्ष्माभिभूतं च प्राशयेच्छांतिमाप्नुयात् ।२५

जो राजा दीर्घ जीवन की कामना करता हो, उसे इस कर्म की प्रेरणा अवश्य दे । अभिषेक की समाप्ति पर ऋत्विजोंकोसौ धेनु दक्षिणा-स्वरूप प्रदान करे ।२०। ऋत्विजों की संतुष्टि और शक्ति के अनुसार दक्षिणा दे । शनिवार के दिन पीपल के नीचे बैठकर द्विजों को सौ बार गायत्री जप करना चाहिए ।२१। ऐसा करनेसे भूत रोग और अभिचार जन्य भय से मुक्ति मिलती है । द्विज को गिलोय के पोरुये के बराबर टुकड़े करके और उन्हें दूध में भिगोकर आहुति देनी चाहिये ।२२। यह मृत्यु जप हवन सभी व्याधियों को नष्ट करने वाला है । यदि ज्वर का शमन करना है तो आम के पत्तों को दूध में भिगोकर उनसे हवन करें ।२३। मीठे बच कों दूध में भिगोकर उसका हवन करे तो क्षय रोग मिट जाता है । दूध, दही और घृत ये तीन मधु हैं। इनके होम से राजयक्ष्मा से निवृत्ति होती है ।२४। क्षीर को होम द्वारा सूर्य को निवेदन करके अवशिष्टको प्रसाद रूप से स्वयं खाये तो राजयक्ष्मा मिट जाती है ।२५।

लताः पर्वसुविच्छिन्न सोमस्यजुहुयाद्द्विजः।
सोमे सूर्येण संयुक्ते पयोऽक्ताः क्षयशांतये।२६
कुसुमैः शंखवृक्षस्य हुत्वा कुष्ठं विनाशयेत्।
अपस्मारविनाशः स्यादपामार्गस्य तंडुलैः।२७
क्षीरवृक्षसमिद्धोमादुन्मादोऽपि विनश्यति।
औदुम्बरस मिद्धोमादतिमेहः क्षयं व्रजेत्।२८
प्रमेहं शमयेद्धुत्वा मधुनेक्षुरसेन वा।
मधुत्रितयहोसेन नयेच्छांतिः मसूरिकाम्।२९
कपिलासर्पिषा हुत्वा नयेच्छांति मसूरिकाम्।
उदुम्वरवटाश्वत्थैर्गोजाश्वामयं हरेत्।३०
पिपीलिमधयल्मीके गृहे जाते शतं शतम्।
शमीसमिद्भरन्नेन सर्पिषा जुहुयाद्द्विजः।३१

सोमलता को प्रत्येक गांठ से काटकर खण्ड-खण्ड करलें। अमावस्या के दिन उसे दूध में भिगोकर हवन करने से क्षय रोग शान्त होता है।१६। शंखपुष्पी से हवन करने पर कुष्ट रोग दूर होता है अपस्मार दूर करने के लिए अपामार्ग के बीजों से हवन करे।१७। क्षीर वृक्ष की समिधाओं से हवन करें तो उन्माद तथा गूलर की समिधाओं से हवन करने पर प्रमेह और क्षय दूर होता है।२८। मधु या ईख-रस के हवन से भी प्रमेह की शान्ति होती है। तथा त्रिमधु अर्थात् दूध, दही और घृत की आहुतियां चेचक का शमन करती हैं।२६। कपिला घृत का हवन करने से भी चेचक की शान्ति होती है। गूलर, वट, और पीपल शमी की समिधा, खीर और घृत के होम से पिपीलिका और मधु वल्मीक नामक जन्तु का उपद्रव शान्त होता है। इसमें दो सौ आहुतियां देनी चाहिये।३१।

तदुत्थं शांतिमायाति शेषैस्तत्र वलिं हरेत्।
अभ्रस्तनित भूकम्पालक्ष्यादौ वनवेतसः।३२

सप्तासं जुहुदेवं राष्ट्रे राज्यं सुखी भवेत् ।
वाँ दिश शतजप्तेन लोष्ठेनाभिप्रताडयेत् ।३३
यतोग्निमारुतादिभ्यो भय तस्य विनश्यति ।
मनसैव जपेदेनां उद्धो मुच्यने बन्धनात् ।३४
भूतरोगविषादिभ्यः स्पृशञ्जप्त्वा विमोचयेत् ।
भूतादिभ्यो विमुच्येत जलं पीत्वाऽभिमंत्रितम् ।३५
अभिमन्त्र्य शतं भस्म न्यसेद्भूतादिशांतये ।
शिरसा धारयेद्भस्म मंत्रयित्वा तदित्यृचा ।३६
सर्वव्याधिविनिर्मुक्तः सुखी जीवेच्छत्तं समाः ।
अशक्तः कारयेत्शांति विप्रं दत्वातु दक्षिणाम् ।३७

तथा बचे हुये पदार्थों से बलि देनी चाहिये । विद्युत्-पात और भूकम्प आदि के प्रकोप में जंगली बेंत की समिधाओं से सात दिन होम करे । इससे राष्ट्र में राज्य सुख की प्राप्ति होती है जो गायत्री के सौ बार मन्त्रोच्चारण से अभिमन्त्रित मिट्टी का ढेला जिस किसी दिशा में फेंकता है, उसमें अग्नि, वायु और शत्रुओं का भय नहीं होता गायत्री का मानसिक जप भी बन्धन से छुड़ाने वाला है ।३२-३४। जो गायत्री मन्त्र का जप करके कुश का स्पर्श करताहै, वह भूत रोग और विषादि से रक्षित होता है । गायत्री से अभिमन्त्रित जल का पान भूत प्रेत के उपद्रव को नष्ट करता है ।३५। गायत्री के सौ जप से अभिमन्त्रित भस्म सिर पर धारण करने से सभी व्याधियाँ मिटती हैं और मनुष्य सुखी होता है । यदि स्वयं न कर सके तो किसी ब्राह्मण को दक्षिणा देकर करावें ।३६-३७।

अथ पुष्टिं श्रियंलक्ष्मीं पुष्पै हुं त्वाऽऽष्नुयाद्द्विजः ।
श्रीकामो जुहुयात्पद्मै रक्तैः श्रियमवाप्नुयात् ।३८
हुत्वा श्रियमवाप्नोति जाती पुष्पैर्नवैः शुभैः ।
शालितंडुलहोमेन श्रियमाप्नोति पुष्कलाम् ।३९

समिद्भिर्बिल्वबृक्षस्य हुत्वा श्रियमवाप्नुयात् ।
विल्वस्य शकलैं हुंत्वा पत्रैः पुष्पैः फलैरपि ।४०
श्रियमाप्नोति परमां मूलस्य शकलैरपि ।
समिद्भिर्बिल्ववृक्षस्य पायसेन च सर्पिषा ।४१
शतं च सप्ताहं हुत्वा श्रियमवाप्नुयात् ।
लाजैस्त्रिमधुरोपते र्होमे कन्यामवाप्नुयात् ।४२
अनेन विधिना कन्या वरमाप्नोति वांछितम् ।
रक्तोत्पलशतं हुत्वा सप्ताहं हेम चाप्नुयात् ।४३
सूर्यबिबे जलं हुत्वा जलस्थं चाप्नुयात् ।
अन्नं हुत्वाप्नुयादन्नं व्रीहीन्व्रीहिपतिर्भवेत् ।४४

पुष्टि, श्री और लक्ष्मी कामना वाले द्विज को पुष्पोंकी आहुति देनी चाहिये । लक्ष्मी की कामना वाला लाल पुष्पोंकी आहुतियाँ देकर लक्ष्मी प्राप्त करता है ।३८। चमेली के पुष्प और शालि चावल का होम करे, तो पुष्कल धन प्राप्त होता हैं ।३९। विल्व वृक्ष के पत्र, पुष्प, फलादि पंचाग से हवन करने पर भी लक्ष्मी प्राप्ति होती है ।४०। विल्व की समिधाओं की खीर के साथ हवन करे । नित्यप्रति सात दिन तक दो-दो सौ आहुति दें, तो श्री की प्राप्ति होती है तथा लावा को त्रिमधु अर्थात् दूध, दही, घृत के साथ हवन करने पर कन्या उत्पन्न होतीहै ।४१-४२। इसी विधि को करके, कन्या भी इच्छित वर पाती है। सात दिन तक लाल कमल होम करने पर स्वर्ण प्राप्त होता है ।४३। सूर्य को जल से तर्पण करने पर जल में पड़ा हुआ स्वर्ण मिल जाता है अन्न के होम से अन्न और ब्रीहि के होम से ब्रीहि का स्वामित्व होता है ।४४।

करीष चूर्णैर्वत्सस्य हुत्वा पशुमवाप्नुयात् ।
प्रियंगुपायसाज्यैश्च भवेद्धोमादिभिः प्रजा ।४५
निवेद्य भास्करायान्नं पायसं होमपूर्वकम् ।
भोजयेत्तदृतुस्नातां पुत्रं परमवाप्नुयात् ।४६
सप्ररोहाभिरार्द्राभिर्हुत्वायुषं समाप्नुयात् ।

समद्भिः क्षीरवृक्षस्य हुत्वाऽऽयुषमवाप्नुयात् ।४७
सप्ररोहाभिरार्द्राभी रक्ताभिर्मधुरत्रयैः ।
ब्राह्मीणां च शतं हुत्वा हेम चायुरवाप्नुयात् ।४८
सुवर्णकुडमलंहुत्वा शतमायुरवाप्नुयात् ।
सुर्वाभिः पयसा वापि मधुना सर्पिषाऽपि वा ।४९
शतं शत च सप्ताहमपमृत्युं व्यपोहति ।
शमी समिद्भिरन्नेनं पयसा वा च सर्पिषा ।५०
शतं शतं च सप्ताहमपमृत्युं व्यपोहति ।
न्यग्रोधसमिधो हुत्वा पायसं होमयेत्ततः ।५१
शतं शतं च सप्ताहमपमृत्युं व्यपोहति ।
क्षीराहारो जपेन्मृत्यो सप्ताहाद्विजयी भवेत् ।५२

गोवत्स के सूखे हुए गोबर के टुकड़ों से होम करे तो पशु-धन की प्राप्ति होती है । प्रियगु, खीर और घत के होम से प्रजा वश बर्तिनी होती है ।४५। खीर का हवन करता हुआ सूर्यको अर्पण 'करे ऋतुस्नाता ब्राह्मणों को भोजन करावे, तो उत्तम पुत्र उत्पन्न होता है ।४६। गीली समिधाओं के होम से दीर्घायु प्राप्त होती है । क्षीर-वृक्षों की समिधा के द्वारा हवन करने से भी दीर्घायु मिलती है ।४७। गीली समिधायें, ब्रीहि और त्रिमधु मिलाकर होम करें तो स्वर्ण और आयु दोनों की प्राप्ति होती है ।४८। स्वर्णिम कमल की आहुति से साधक शतायु होता है । दूर्वं, दूध,मधु और घृत की प्रतिदिन सौ-सौ आहुति एक सप्ताह तक दें, तो अपमृत्यु नहीं होती । शमी की समिधा, दूध और घृत का नित्य सौ-सौ वार सप्ताह में हवन करे तो भी अपमृत्यु से रक्षा होती है । न्यग्रोध की समिधा की आहुति देकर खीरकी सौ-सौ आहुतियां नित्य सात दिनों तक दे, तो भी अपमृत्यु से बचाव होता है । जो केवल दुग्धाहार करता हुआ गायत्री के जप में तत्पर रहता है, वह सप्ताह भर में ही मृत्यु को जीत लेता है ।४९-५२।

अनश्नन्वाग्यतो जप्त्वा त्रिरात्रं मुच्यते यमात् ।
नितज्ज्याप्सु जपेदेव सद्यो मृत्योर्विमुच्यते ।५३
जपेद्बिल्वं समाश्रित्य मासं राज्यमवाप्नुयात् ।
बिल्वं हुत्वाऽऽप्नुयाद्राज्यं समूलफलपल्लवम् ।५४
हुत्वा पद्मशतं मासं राज्यमाप्नोत्यकंटकम् ।
यवागूं ग्राममाप्नोति हुत्वा शालिसमन्वितम् ।५५
अश्वत्थसमिधो हुत्वा युद्धादौ जयमाप्नुयात् ।
अर्कस्य समिधो हुत्वा सर्वत्र विजयी भवेत् ।५६
संयुक्तैः पयसा पत्रैः पुष्पैर्वा वेतसस्य च ।
पायसेन शतं हुत्वा सप्ताह वृष्टिमाप्नुयात् ।५७
नाभिदघ्ने जले जप्त्वा सप्ताहं वृष्टिमाप्नुयात् ।
जले भस्मशतं हुत्वा महावृष्टि निवारयेत् ।५८
पालाशाभिरवाप्नोति समिद्भि र्ब्रह्मवर्चसम् ।
पलाश कुसुमैर्हुत्वा सर्वमिष्टमवाप्नुयात् ।५९
पयो हुत्वाऽऽप्नुयान्मेधामाज्यं बुद्धिमवाप्नुयात् ।
अभिमन्त्र्य पिबेद्ब्राह्म रसं मेधामवाप्नुयात् ।६०

निराहार और मौन रहकर जप करने वाला तीस दिन में यमपाश से मुक्त होता है । जल में निमग्न होकर जप करने वाला तुरन्त ही मृत्-युभय से मुक्त हो जाता है । विल्व वृक्ष के नीचे जप करने वाला, एक मास में राज्य पा लेता है उसे विल्व-पत्र, मूल, पल्लव आदि से होम करना चाहिये ।५४। कमल की सौ आहुतियाँ नित्य प्रति एक मास तक दे, तो निष्कंटक राज्य मिलता है । शालि चूर्ण की खिचड़ी बनाकर होम करने से ग्राम मिलता है ।५५। पीपल की समिधाओं का हवन युद्ध में विजयी बनाता है । आक की समिधाओं के हवन से सर्वत्र जीत होती है ।५६। बेंत के पत्र, पुष्प, दूध और खीर का सात दिन तक सौ सौ हवन करे, तो वृष्टि होती है ।५७। नाभि तक जल में खड़े होकर जप करे तो भी वर्षा होती है । भस्म को जल में सौ आहुतियाँ

दे, तो महावृष्टि रुक जाती है।५८। पलाश की समिधा हवन करने पर ब्रह्मतेज प्राप्त होता है। पलाश के फूलों का हवन सभी इच्छायें पूर्ण करता है। दूध और घृत आदि की आहुति से बुद्धि बढ़ती है ब्राह्मी का अभिमन्त्रित रस पान से बुद्धि शुद्ध होती है।६०।

पुष्पहोमे भवेद्वासस्तंतुभिस्तद्विधं पटम् ।
लवणं मधुसंमिश्रं हुत्वाष्टं वशमानयेत ।६१
नयेदिष्ट वश हुत्वा लक्ष्मीं पुष्पैर्मधुप्लुतैः ।
नित्यमंजलिनाऽऽत्मानमभिषिचेज्जले स्थिरः ।६२
मतिमारोग्यमायुष्यमग्रय् स्वास्थ्यमवाप्नुयात् ।
कुर्याद्विप्रोऽन्यमुदिश्य सोऽपि पुष्टिमवाप्नुयात् ।६३
अथ चारुविधिमसि सहस्रं प्रत्यहं जपेत् ।
आयुष्कामः शुचौ देशे प्राप्नुयादायुरुत्तमम् ।६४
आयुरारोग्यकामस्तु जपेन्मासद्वय द्विज ।
भवेदायुष्यमारोग्यं श्रियैमाहत्रयं जपेत् ।६५
आयुः श्री पुत्रदाराद्यश्चतुर्भिश्च यशा जपात् ।
पुत्रदाराऽऽयुरारोग्यश्रियं विद्यां च पंचभिः ।६६
एवमेवोत्तरान्कामान् मासैरेवोत्तरेव्रजेत् ।
एकपादो जपेदूर्ध्वबाहु स्थित्वा निराश्रयः ।६७
मांस शतत्रयं विप्रः सर्वान्कामानवाप्यात् ।
एवं शतोत्तरं जप्त्वा सहस्रं सर्वमाप्नुयात् ।६८

ब्राह्मी-पुष्पों के हवन से सुगन्धित और तनुओं के हवन से वस्त्र की प्राप्ति होती है। लवण और मधु का हवन इष्टदेव को वश में करता है ।६१। पुष्प और मधु के हवन से लक्ष्मी और इच्छित व्यक्ति वश में होता है। जो गायत्री का जप करते हुये नित्य प्रति अंजलि में जल भर कर अपने ऊपर डालता है, वह बुद्धि, आरोग्य, आयु और स्वास्थ्य लाभ करता है। यदि कोई ब्राह्मण किसी अन्य व्यक्ति के लिये यह कार्य करे, तो उस अन्य व्यक्ति को पुष्टि आदि फल प्राप्त होते हैं ।६२-

६३। श्रेष्ठ विधि के सहित एक हजार गायत्री का नित्य एक मास तक जप करे, तो दीर्घायुकी कामना करने वालोंकी कामना पूर्ण होतीहै। ६४। आयु और आरोग्य दोनों की कामना करने वाले की एक हजार गायत्री का नित्य दो मास तक जप करना चाहिये और आयु अरोग्य तथा धन इन तीनों की इच्छा हो तो तीन मास तक जप करे ।६५। आयु, स्त्री, पुत्र और लक्ष्मी की इच्छा वाले को चार मास तक जप करने से यश सहित कामनायें पूर्ण होती हैं और जो पुत्र, स्त्री, आयु आरोग्य श्री तथा विद्या की इच्छा हो तो पाँच महीने तक इसी प्रकार जप करे ।६६। इस प्रकार मनोरथों की जितनी संख्या हो, उतने मास तक जप करने से सिद्धि होती है। बांहो को ऊपर उठाकर निरालम्ब एक पांव से खड़ा होकर तीन सौ गायत्री प्रतिदिन एक मास तक जपे, तो सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। यदि ग्यारह सौ जप नित्य एक मास तक करे, तो कहने ही क्या ।६७।६८।

रुद्ध्वाप्राणमपानं च जपेन्मासं शतत्रयम् ।
यदिच्छेत्तदवाप्नोति सहस्रात्परमाप्नुयात् ।६९
एकपादो जपेदूर्ध्वबाहू रुद्ध्वाऽनिलं वशी ।
मासं शतमवाप्नोति यदिच्छेदिति कौशिकः ।७०
एवं शतत्रयं जप्त्वा सहस्रं सर्वमाप्नुयात् ।
निमज्ज्याप्सु जपेन्मासं वत्सरादृषितामियात् ।७१
एवं शतत्रयं जप्त्वा सहस्रं सर्वमाप्नुयात् ।
एकपादो जपेदूर्ध्वबाहू रुद्ध्वा निराश्रयः ।७२
नक्तमश्नन्हविष्यान्नं वत्सरादृषितामियात् ।
गौरमोघा भवेदेवं जप्त्वा संवत्सरद्वयम् ।७३
त्रिवत्सरं जपेदेवं भवेत्त्रि काल दर्शनम् ।
आयाति भगवान्देवश्चतुः संवत्सरं जपेत् ।७४
पंचभिर्वत्सरै रेवत्रमणिमादिगुणो भवेत् ।
एवं षड्वत्सरं जप्त्वा कामरु पित्वामाप्नुयात् ।७५

प्राण और अपान को रोककर तीन सौ गायत्री नित्य एक मास तक जपे, तो जो इच्छाहो,वही मिले और एक सहस्र जपे तब तो सभी कुछ, मिल जाय ।६६। कौशिक के मत में ऊपर बाँहु करके एक पाँव से खड़ा होकर श्वास रोके और महीने भर तक सौ जप नित्य करे, तो जो चाहे सो हो जाय ।७०। इसी प्रकार तेरह सौ मन्त्र नित्य महीने भर तक जपे तो सभी मनोरथों की प्राप्ति हो । यदि जल में निमग्न होकर मन्त्र एक महीने तक जपे, तो भी सभी मन चाहा पूर्ण हो ।७१। इसी तरह तेरह सौ जप करे तो अभीष्ट पूर्ण होते हैं । एक पाँव से निरालम्ब खड़ा होकर बाँहें ऊँची कर और एक वर्ष तक जप करे, रात में हविष्यन्न खाकर रहे, तो वह ऋषि हो जाता है दो वर्ष तक ऐसा करने से अमोघवाणी प्राप्त होती है ।६२-७३। तीन वर्ष तक ऐसा करें तो त्रिकाल दर्शी हो जाता है । चार बर्ष तक इसी प्रकार जप करे तो भगवान आकर दर्शन देते हैं ।७४। पाँच वर्ष जपेतो अणिमादि सब सिद्धियाँ और छः वर्ष जपे तो कामरूपत्व की प्राप्ति होती है ।७।

सप्तभिर्वत्सरैरेवममरत्वमवाप्नुयात् ।
मनुत्वं नवभिः सिद्धिमिंद्रत्वं दशभिर्भवेत् ।७६
एशादशभिराप्नोति प्रजापत्यं सुवत्सरैः ।
ब्रह्मत्वं प्राप्नुयादेवं जप्त्वा द्वादशवत्सरान् ।७७
एतेनैव जिता लोकास्तपसा नारदादिभिः ।
शाकमन्ये परे मूल फलमन्ये पयः परे ।७८
घृतमन्ये परे सोममपरे चरुवृत्तयः ।
ऋषयः पक्षमश्नति केचिद् भक्ष्याशिनोऽसनि ।७९
हविष्यमपरेऽश्नंतः कुर्वन्त्यव परं तपः ।
अथं शुद्धयै रहस्यानां त्रिसहस्र जपेद्द्विजः ।८०
मासं शुद्धो भवेत्स्तेयात्सुवर्णस्य द्विजोत्तमः ।
जपेन्मासं त्रिसहस्रं सुरापः शुद्धिमाप्नुयात ।८१

सात वर्ष तक इसी प्रकार से जप करने से देवत्व और नौ वर्ष

करने से मनु पद तथा दस वर्ष करने पर इन्द्र पद प्राप्त होता है ।७६। ग्यारह वर्ष में ब्राह्मत्व मिल जाता है ।७७। इसी प्रकार के तप से नारद आदि ने लोक जीत लिये। इनमेंसे कुछने कन्दमूल-फल और कुछने केवल दूध का ही आहार किया ।६८। कुछ घृत पीकर ही रहते थे। कुछ ने केवल सोमपान और कुछ ने अभक्षण ही किया 'था' कुछ ने प्रति पखवारे एक बार ही भोजन किया और कुछ नित्य प्रति भिक्षान्न का भोजन करतेथे ।७६। बहुतों ने हविष्यान्न का ही भोजन किया था। इस प्रकार बहुतों ने घोर तप किया था। पापों के शोधनार्थ तीन सहस्र गायत्री जप करना चाहिए ।८०। एक मास पर्यन्त जप करने से स्वर्ण चोरी का पाप दूर होता है। तीन हजार गायत्री का जप महीने भर करने से सुरापान के पाप से मुक्ति हो जाती हैं ।८१।

मास जपेत्स्त्रिसहस्रं शुचिः स्याद्गुरुतील्पगः ।
त्रिसहस्रं जपेन्मासं कुटीं कृत्वा वने वसन् ।८२
ब्रह्महा मुच्यते पापादिति कौशिकभाषितम् ।
द्वादशाहं नियुज्ज्याप्सु सहस्रं प्रत्यहं जगत् ।८३
मुच्येरन्नहसा सर्वे महापातकिनो द्विजाः ।
त्रिसाहस्रं जपेन्मासं प्राणानायम्य वाग्यतः ।८४
महापातकयुक्तो वा मुच्यते महतो भयात् ।
प्राणायामसहस्रेण ब्रह्महाऽपि विमुच्यति ।८५
षट्कृत्वस्त्वभ्यसेदूर्ध्वं प्राणापानौ समाहितः ।
प्राणायामो भवेदेषु सर्वपापप्रणाशनः ।८६
सहस्रमभ्यसेन्मासं क्षितिपः शुचितामियात् ।
द्वादशाह त्रिसाहस्रं जपेद्धि गोवधे द्विजः ।८७

गुरु-तल्पगामी भी एक मास तक तीन सहस्र गायत्री जपने से शुद्ध हो जाता है। बन में कुटी बनाकर तीन हजार गायत्री का जप नित्य प्रति एक मास तक करे ।८२। कौशिक के मत में इससे ब्रह्महत्या छूट जाती हैं। जल में निमग्न रहकर एक सहस्र गायत्री

नित्य प्रति बारह दिन तक जपे तो महापापी द्विज भी सब पापों से मुक्त हो जाता है । यदि एक मास तक प्राणायाम पूर्वक मौन रहता हुआ नित्य प्रति तीन हजार गायत्री का जप करे ।८३-८४। तो महापाप युक्त मनुष्य भी महान पाप-भव से छट जाताहै। यदि एक हजार प्राणायाम युक्त जप करेतो ब्रह्म हत्याराभी पाप मुक्तहो जाता है ।८५। प्राण और अपान को चढ़ाकर सावधानी से छः बार गायत्री मन्त्र जपे तो इस प्राणायाम से सभी पाप नष्ट होते हैं ।८६। एक मास तक एक हजार गायत्री नित्य जपने से भूपति शुद्ध होताहै । बारह दिन तक तीन हजार गायत्री के प्रतिदिन जपने से गोहत्या भी छूट जाती है।८७।

अगम्यागमनस्तेपहननाभक्ष्यभक्षणे ।
दशसहस्रसभ्यस्ता गायत्री शोधयेद्द्विजम् ।८८
प्राणायामशतं कृत्वा मुच्यते सर्वकिल्विषात् ।
सर्वेपामेव पापानां शंकरे सति शुद्धये ।८९
सहस्रमभ्यसेन्मासं नित्यजापो वने वसन् ।
उपवाससमं जप्यं त्रिसहस्रं तदित्यृचम् ।९०
चतुर्विंशतिसहस्रमभ्यस्तात्कृच्छ्रसंज्ञता ।
चतु षष्टिसहस्राणि चांद्रायणसमानि तु ।९१
शतकृत्वोऽभ्यसेन्नित्यं प्राणानायम्य सन्ध्ययोः।
तदित्यृचमवाप्नोति सर्वपापक्षयं परम् ।९२
निमज्ज्याप्सु जपेन्नित्य शतकृत्वस्तदित्यचम् ।
ध्यायन्देवीं सूर्यरूपां सर्वपापैः प्रमुच्यते ।९३

अगम्या-गमन, चोरी, हत्या, अभक्ष्य-भक्षण आदि के पाप भी दस हजार गायत्री के जप से दूर हो जाते हैं ।८८। सो प्राणायाम करने से सब पाप छूटते हैं । यदि मिले हुये अनेक पाप हो तो वन में रहकर उपवास पूर्वक एक हजार गायत्री का नित्य जप करे तो सब पाप मिट जाते हैं ।८९-९०। चोबीस हजार गायत्री का जप "कृच्छ्र-व्रत" कहलाता है । चौंसठ हजार गायत्री का जप चान्द्रायण व्रत के ही तुल्य होता है

।६१। प्रातः सायंकालीन संध्याओं के समय प्राणायाम करके सौ गायत्री जपने से सब पाप क्षीण होते हैं ।६२। जल में निमग्न होकर सूर्यस्वरूपा भगवती का ध्यान करता हुआ नित्य प्रति सौ गायत्री जपे तो मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है ।६२।

—×—

गायत्री के कुछ सिद्ध काम्य प्रयोग

गायत्री पटल में वर्णित काम्य प्रयोगों का वर्णन किया जा रहा है—

अथ वेदादिगोतायाः प्रसादजननं विधिम् ।
गायत्र्याः सम्प्रवक्ष्यामि धर्मा-ऽर्थ-काम-मोक्षदम् ।१
नित्य-नैमित्तिके काम्ये तृतीये तपवर्द्धने ।
गायत्र्यास्तु परं नास्ति इह लोके परत्र च ।
मध्याह्ने मितभुङ् मौनी त्रिस्थानार्चनतत्परः ।
जपलक्षत्रयं धीमान् नाऽन्यमानसकस्तु यः ।३
कर्मभिर्यो जपेत् पश्चात् क्रमशः स्वेच्छयाऽपि वा ।
यावत्कार्यं न कुर्वीत न लोपेत् तावता व्रतम् ।।
आदित्यस्योदये स्नात्वा सहस्रं प्रत्यहं जपेत् ।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं धनं च लभते ध्रुवम् ।५
त्रिरात्रोपोषितः सम्यग् घृतं हुत्वा सहस्रशः ।
सहस्रं लाभमाप्नोति हुत्वाऽग्नौ खदिरेन्धनम् ।६
पालाशै.समिधश्चैव घृताक्तानां हुताशने ।
सहस्रं लाभमाप्नोति राहु सूर्य समागमे ।७

इसके उपरान्त वेद-शास्त्रों से बताये हुए गायत्री की प्रसन्नता, की विधि कही जाती है। इसी विधिसे मानवको धर्मार्थ काम मोक्ष चारोंकी प्राप्ति हुआ करती है।१। नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य-इन तीनों प्रकारके

कर्मों की सिद्धि के वास्ते और तपश्चर्या की अभिवृद्धि के लिये दोनों लोकों में गायत्री से भी बड़ा अन्य कोई देवता नहीं हैं ।२। मध्याह्न स्वल्प आहार करके मौन व्रतधारी होकर तीनों कालों में गायत्री का अर्चन तथा ध्यान करते हुए अपने अभीष्ट की सिद्धि के वास्ते गायत्री मन्त्र का एक लक्ष जप करे ।३। किसी भी कामना से या अपनी इच्छा से ही गायत्री का जप अवश्य ही करे। कर्म की सिद्धि की पूर्णता पर्यन्त निरन्तर गायत्री का जप करना चाहिये। विप्र को क्रिया एवं व्रत का लोप कार्य भी नहीं करना चाहिये। भुवन भास्कर भगवान् के उदय से पूर्व ही प्रति दिन स्नान करके एक सहस्र गायत्री का जप करे। ऐसे नित्य जप करने से मानव को आयु-स्वास्थ्य और ऐश्वर्य की प्राप्ति निश्चित रूप से हुआ करती है ।५। तीन दिन उपवास करके घृत में खैर की लकड़ी को डूबोकर नित्य होम करने से सहस्रों रुपयों का लाभ हुआ करता है ।६। घृत में युक्त करके ढाक की समिधाओं से होम करने से बहुत लाभ होता है। सूर्य ग्रहण के समय में एक हजार आहुतियाँ देवे तो निश्चय रूप से सहस्रों का लाभ हुआ करता है ।७।

हुत्वा तु खदिरंवहुनौ घृताक्तं रक्तचन्दनम् ।
सहस्रहेममाप्नोति राहुचन्द्रसमागमे ।८
रक्तचन्दनमिश्रं तु सघृतं हव्यवाहने ।
हुत्वा गोमयमाप्नोति सहस्रं गोमयं द्विजः ।९
जाती-चम्पक-राजार्क-कुसुमानां सहस्रशः ।
हुत्वा वस्त्रमवाप्नोति घृताक्तानां हुताशने ।१०
सूर्यमण्डलविम्बे च हुत्वा तोयं सहस्रशः ।
सहस्रं प्राप्नुयाद्धैमं रौप्यमिन्दुमये हुते ।११
अलक्ष्मीपापसंयुक्तो मलव्याधिविनाशके ।
मुच्येत् सहस्रजाप्येन स्नायाद् यस्तु जलेन वै ।१२
गोघृतेन सहस्रेण लोध्रेण जुहुयाद् यदि ।।
चौरा-ऽग्नि-मारुतोत्थांनि भयानि न भवन्ति वै ।१३

क्षीराहारो जपेद्लक्षमपमृत्युमपोहति ।
घृमाशी प्राप्नुयान्मेधां बहुविज्ञान सञ्चयाम् ।१४

सुवर्ण का लाभ होने के लिये खैर की समिधा अथवा रक्त चन्दन की लकड़ी से घृत में युक्त करके चन्द्रमा के ग्रहण में एक सहस्र आहुतियाँ देनी चाहिये ।८। जो ब्राह्मण रक्त चन्दन से मिश्रित गौ के घृत से युक्त गौ के कण्डे का गायत्री मन्त्र के द्वारा होम किया करता है वह सहस्रों गोमयों अर्थात् रत्न विशेष का लाभ किया करता है ।९। 'चम्पा मालती और मन्दार के पुष्पों को घृत में युक्त करके जो गायत्री मन्त्रके द्वारा हवन करता है, उसे विचित्र वस्त्रों की प्राप्ति हुआ करती हैं ।१०। गायत्री मन्त्र के द्वारा सूर्य मण्डल में जो प्रतिदिन जल से एक सहस्र अर्घ्यं दिया करता है, उसका सुवर्ण का लाभ होता हैं और चन्द्रमंडल में गायत्री से जल का अर्घ्यं प्रतिदिन देना हैं, उसे चांदी का लाभ हुआ करता हैं ।११। दरिद्रता-पाप व्याधि और अशान्ति के निवारण करने के लिये हर रोज एक हजार गायत्री से अभिमन्त्रित जल से स्नान करने चाहिये ।१२। चोर अग्नि और वायुसे समुत्पन्न होने वाले भयको हटाने के लिये लोध्र के फलों को गौ के घीमें डुबोकर गायत्री से प्रतिदिन होम करना चाहिये और एक सहस्र आहुतियाँ देवें । अग्नि में ऐसे होम से कोई भी उपद्रव नहीं हुआ करता है—यह परम सुनिश्चित है ।१३। यदि कोई द्विज दुग्ध-पान करके गायत्री का जप करता है तो उसकी अपमृत्यु और अकाल मृत्यु कभी नहीं होती है और घृत का पान करके एक लाख गायत्री का जप करने से उस जपने से ब्राह्मण की बुद्धि बहुत ही अधिक तीव्र हो जाया करती है तथा वह विशिष्ट ज्ञान से युक्त हो जाया करता है ।१४।

हुत्वा वेतसपत्राणि घृताक्तानि हुताशने ।
लक्षाधिपस्य पदवीं सार्वभौमं न संशयः ।१५
लक्षेण भस्महोमस्य हुत्वा ह्य त्तिष्ठते जलात् ।
आदित्याभिमुखं स्थित्वा नाभिमात्रजले शुचौ ।१६

गर्भपातादि प्रदशश्चाऽन्ये स्त्रीणां महारुजः ।
नाशमेष्यन्ति ते सर्वे मृतवत्सादि दुःखदाः १७
तिलानां लक्षहोमेन घृताक्तानां हुताशने ।
सर्वकामसमृद्धात्मा पर स्थानमवाप्नुयात् ।१८
यवानां लक्षहोमेन घृताक्तानां हुताशने ।
सर्वकामसमृद्धात्मा परां सिद्धिमवाप्नुयात् ।१९
घृतस्याहुपिलक्षेण सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।
पंचगव्याशनो लक्षं जपेज्जातिस्मृतिभवेत् ।२०

बेंत के पत्रों को घृत के साथ अग्नि में हवन करने से मनुष्य लखपति निश्चित रूप से हो जाया करता है और वह सर्वभौम बन जाया करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।१५। जो गर्मी के मौसम में नाभि पर्यन्त जल में स्थित होकर गायत्री मन्त्र से भस्म की एक लाख आहुतियां दिया करता है और फिर जल से बाहर आकर गायत्री के द्वारा सूर्य का उपस्थान किया करता है इसके प्रभावसे गर्भ पात, मृत—वत्सता, प्रदर आदि अनेक स्त्रियों को दुःख प्रद दोष निश्चित रूपसे नष्ट हो जाया करते हैं पैदा होकर बचपन में मर जानाही मृत वत्सा है ।१६-।१७। घी में युक्त तिलों से गायत्री मन्त्र द्वारा एक लाख अग्नि में आहुतियाँ देने से मनुष्य की समस्त कामनाओं की पूर्ति हो जाया करती है और अन्त में सर्वोत्तम लोक का लाभ हुआ करता है ।१८। इसी भांति से घृत में मिश्रित जौओं की एक लाख आहुतियां देने से जो कि गायत्री के द्वारा ही दी जावें तो मानव के सभी मनोरथ पूर्ण हो जाया करते हैं तथा सभी प्रकार की सिद्धियाँ भी उसको प्राप्त हो जातीहै ।१९। गायत्री मन्त्र के द्वारा केवल घृत से अग्निमें एक लाख आहुतियां देने पर सम्पूर्ण कामनायें परिपूर्ण हो जाती हैं । केवल पंचगव्य का पानकर एक लाख गायत्री का जप करने से मनुष्य को अन्य जन्म का भी स्मरण हो जाया करता है ।२०।

तदेवब्रह्मनले हुत्वा प्राप्नोति बहुसाधनम् ।
अन्नादि-हवनान्नित्यमन्नाद्यं च भवेत् सदा ।२१
जुहुयात् सर्वसायानामाहुत्यायुतसंख्यया ।
रक्तसिद्धार्थकान् हुत्वा सर्वान् साधयते रिपून् ।२२
लवणं मधुयुक्तं हुत्वा सर्ववशी भवेत् ।
हुत्वा तु करवीराणि रक्तानि ज्वालयेज्ज्वरम् ।२३
हुत्वा भिल्लांतक तैलं देशादेव प्रचालयेत् ।
हुत्वा तु निम्बपत्राणि विद्वेषशान्तये नृणाम् ।२४
रक्तानां तन्दुलानां च घृताक्तानां हुताशने ।
हुत्वा वयमवाप्नोति शत्रुभिर्न स जायते ।२५
प्रत्यानयनसिद्धयर्थं मधु-सर्पि-समन्वितम् ।
गवां क्षोर प्रदीप्तेऽग्नौ जुह्वतस्ततत्प्रशाम्यति ।२६
ब्रह्मचारी जिताहरो यः सहस्रवत् जपेत् ।
संवत्सरेण लभते धनैश्वर्यं न संशय ।२७
शमी-विल्व-पलाशानातकंस्य तु विशेषतः ।
पुष्पाणां समिधाश्चैव हुत्वा हेममवाप्नुयात् ।२८

पंचगव्य का गायत्री के द्वारा अग्नि में होम करने से सभी प्रकार के साधन प्राप्त हो जाया करते हैं। तथा प्रतिदिन अन्न आदि के होम से अन्नादि का लाभ होता है।२२। लाल सरसों से गायत्रीके द्वारा दश सहस्र आहुतियाँ देने से सभी शत्रु वश में हो जाते हैं ।१२। शहद से मिश्रित सैन्धव नमक के द्वारा गायत्री मन्त्र से दस हजार आहुतियाँ देने से भी सभी मनुष्य वश में हो जाया करते हैं। लाल कन्नेर के पुष्पों के द्वारा गायत्री मन्त्र से हवन करने से सभी तरह के ज्वरों का विनाश हो जाता है ।१३। भल्लातक (भिलाना) के तेज से अग्नि में होम करने से मनुष्य अपने शत्रु को देश से भगा देता है। एक लाख आहुतियाँ देनी चाहिए। नीम के पत्तों से उसी भाँति होम करने से मनुष्य का शत्रु से द्वेष समाप्त हो जाया करता है ।२४। साठी के लाल चावल गौ के घृत

में निर्मित करके एक लाख होम करने से मनुष्य बलवान् हो जाता है और उसको शत्रु कभी भी परास्त नहीं कर सकता है।२५। गो का दूध घृत और मधु सबको मिश्रित करके गायत्री मन्त्रसे एक लाख आहुतियाँ देने से विदेशमें गया हुआ आदमी अपने आप घर पर लौट आया करता है। मन में उस आदमी के विषय में संकल्प करना चाहिये।२६। अपने आहार का संयम करके प्रतिदिन तीन सहस्र गायत्री का जप करेतो एक ही वर्ष के भीतर वह धन-शक्ति और बल प्राप्त कर लिया करता है– इसमें तनिक भी संशय नहीं है।२७। शमी (छौंकर) बेलस्पलाश क्षौर मन्दार के फूल और उसी की समिधा के गायत्री मन्त्रके द्वाराएक लाख आहुतियाँ देने से सुवर्ण का लाभ होता है।२८।

आंब्रह्मत्र्यम्बकादीनां यस्यायतनमाश्रितः।
जपेद्लक्षं निराहारः स तस्य वरदो भवेत्।२९
बिल्वानां लक्षहोमेन घृताक्तानां हुताशने।
परां श्रियमवाप्नोति यदि न भ्रूणहा भवेत्।३०
पद्मानां लक्षहोमेन घृतक्तानां हुताशने।
प्राप्नोति राज्यमखिलं सुसम्पन्नमकण्टकम्।३१
पञ्चविंशतिलक्षेण दधि-क्षीरं हुताशने।
स्वदेहे सिद्ध्यते जन्तुः कौशिकस्य मतं तथा।३२
एकाहं पञ्चगव्याशी एकाहं मारुताशनः।
एकाहं च द्विजान्नाशी गायत्री जप उच्यते।३३
महारोगा विनश्यन्ति लक्षजप्यानुभावतः।
शतेन गायत्र्याः स्नात्वा शतमन्तर्जले जपेत्।
शतेन यस्त्वप पीत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते।३४
गोघ्नः पितृघ्न मातृघ्नौ ब्रह्महा गुरुतल्पगः।
स्वर्णहारी तैलहारी यस्तु विप्रः सुरां पिवेत्।३५
चन्दनद्वयसंयुक्तं कर्पूरं ताण्डुलं यवम्।
लवङ्ग सुफलं आज्यं सिता चाम्रस्य दारुकैः।३६

अन्यं न्यूनविधिः प्रोक्ता गायत्र्याः प्रीतिकारकः।
एवं कृते महासौख्यं प्राप्नोति साधको ध्रुवम् ॥३७
अन्नाज्यभोजनं हुत्वा कृत्वा वा कर्मगर्हितम्।
न सीदेत् प्रतिगृह्णानो महीमपि स सागराम् ॥३८
ये चाऽस्यं उत्थिता लोके ग्रहाः सूर्यादयो भुवि।
ते यान्ति सौम्यतां सर्वे शिवे इति न संशयः ॥३९

ब्रह्मचर्य व्रत से रहने वाला पुरुष किसी के घर पर रहकर निराहार रहते हुए एक लाख गायत्री का जप करे तो वह सम्पूर्ण जगत् को वर देने वाला हो जाता है।२९। घृत में डुबोकर विल्व की समिधा से गायत्री के द्वारा एक लाख आहुतियाँ देने से यदि वह गर्भ की हत्या करने वाला नहीं होता है तो वहुत लक्ष्मी के प्राप्त करने वाला हो जाया करता है।३०। घृत में डुबोकर कमलों का अग्नि में गायत्री मन्त्र द्वारा एक लाख आहुतियाँ देने पर निष्कण्टक परम समृद्ध राज्य को प्राप्त करने वाला होता है।३१। विश्वामित्र जी का मत है कि जो द्विज गौ का दुग्ध तथा दधि से गायत्री द्वारा प्रज्वलित अग्नि में पच्चीस लाख आहुतियाँ देता है वह इसी शरीर से परम सिद्ध हो जाया करता है।३२। वह मनुष्य समस्त पापों से छूट जाता है और गायत्री जप के द्वारा महारोग की शान्ति चाहता है उसे एक दिन पंचगव्य का अशन, दूसरे दिन वायु का आहार तथा तीसरे दिन ब्राह्मण का अन्न ग्रहण करे। ऐसे एक लाख गायत्री का जप करे और प्रतिदिन एक सौ गायत्री से स्नान कर जल में निमग्न हो एक सौ गायत्री का जप करे और एक सौ गायत्री से आचमन करता हुआ जप करे तो सभी पापों से मुक्त हो जाता है।३३-३४। जो गौ, माता-पिता-ब्राह्मण का वध करने वाला हो—गुरु के आसन पर बैठ जाने वाला, सुवर्ण और तेल का चुराने वाला हो, मद्यपान करने वाला हो वह ब्राह्मण दोनों चन्दन, कपूर, चावल, जौलौंग, सुन्दर फल जायफल आदि-घृत-मिश्री आदि का होम आम की समिधा से करे और गायत्री के द्वारा प्रदीप्त अग्नि में एक

लाख आहुतियाँ देवे तो गायत्री देवी उस पर परम प्रसन्न हो जाया करती हैं फिर उसको सभी प्रकार के सुखों की प्राप्ति होती है।३५-३६-३७। कोई भी नीच कर्म अज्ञात रूप से किये जाने पर घृत मिश्रित अन्न की गायत्री द्वारा एक लाख आहुतियाँ प्रज्वलित अग्नि में देने से सागर पर्यन्त भी पृथ्वी का दान लेने पर भी वह पतित नहीं होता है।३८। सूर्यादि ग्रह भी उसके विपरीत हों तो भी उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं होता है और सभी दुष्ट ग्रह भी उसको कल्याण ही देने वाले हो जाया करते हैं—इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं हैं।३९।

—❀—

महिलाओं के लिए मंगलमयी सिद्धिदायक साधनायें

पुरुषों की भाँति स्त्रियाँ भी गायत्री माता की गोद में बैठ कर उसके दिव्य दुग्ध का पान करके जोवन का उत्थान कर सकती हैं। स्त्रियों की बुद्धि को पवित्र व निर्मल बनाने वाली उस कल्याणकारी साधना से बंचित रखना एक आसुरी प्रवृत्ति है। मातृ शक्ति से बालक के जीवन का निर्माण होता है। आधुनिक मनोविज्ञान का सुनिश्चित मत है कि माता की जैसी भावनायें और विचार होते हैं, बालक का भावी ढाँचा भी वैसे ही निर्मित होता है। बालक को महान् और क्षुद्र बनाना माता के अधिकार में है। ईश्वर ने मानव का भविष्य जिसके पास सुरक्षित रखा हो, उसे मानव उत्थान के साधनों से वंचित रखने का प्रयत्न करना मानवता पर ही एक कुठाराघात, ईश्वरीय आदेशों का विरोध और नास्तिकता है। व्यवहारिका रूप में भी स्त्रियाँ लाखों वर्षों से इस साधना की अधिकारिणी रही हैं। वेद इसके साक्षी हैं। स्त्रियाँ वेद मन्त्रों की छटा रही हैं, वेदार्थ उनसे अन्तःकरण में अवतरित हुए हैं। प्राचीनकाल में साधना के क्षेत्र में स्त्रियाँ भी अग्रणी रही हैं।

गायत्री स्त्रीलिंग है। एक स्त्री को ईश्वर की स्त्री के रूप में उपासना करना उचित व व्यावहारिक है। अतः स्त्रियों को गायत्री की साधना का पूर्ण अधिकार है। इसमें कुछ भी सन्देह करना व्यर्थ है।

महिलाओं के लिए यहाँ कुछ उपयोगी गायत्री साधनाओं के विधान का उल्लेख कर रहे हैं।

सधवाओं के लिए गृहस्थको सुखी बनाने वाली साधनायें

सधवाओं के लिए गायत्री साधना मङ्गलमय सिद्ध होती है। दाम्पत्य जीवन को सुखी व समृद्ध बनाने वाली यह श्रेष्ठ उपासना है। उसके अपने स्वभाव में ऐसा अद्भुत् परिवर्तन आ जाता है कि वह अपने परिवार के लिए हँसती खेलती मूर्त्ति सी लगती है। दुःख, अभाव और कष्ट में भी वह प्रसन्नता पूर्वक अपने पति का साथ देती है। दुःख से चिंतित होकर पति को वह चिन्ता बढ़ाती नहीं बरन् नेक सलाह व सहयोग की भावना से उसकी चिन्ता को भी दूर कर देती है। पति के बिगड़े स्वभाव व आचरण को भी सुधार देती है। पतन के मार्ग पर चल रही सन्तान को भी सन्मार्ग पर ला सकती है। गायत्री साधना से स्त्रियाँ परिवार को स्वर्ग बना देती हैं।

परिवार को सुखी व सम्पन्न बनाने के लिए इस प्रकार गायत्री साधना करें :—

तुलसी का माला से पूर्व की ओर मुख करके कुशासन पर बैठकर नित्यप्रति एक माला का जप करें। पीत वस्त्र, पीले सिंह पर आरूढ़, गायत्री का ध्यान करना चाहिए। पूजा की सभी वस्तुयें पीली हों। पुष्प, चावल, वस्त्र, सभी पीले हों। भोजन में एक वस्तु पीली हो तो श्रेष्ठ रहता है। हर पूर्णमासी को व्रत रखकर विशिष्ट जप-उपासना करनी चाहिए।

कुमार्गगामी बच्चों को सुधारने के लिए साधना से बचे जल को पिलाना चाहिए अथवा मार्जन की तरह छिड़कना चाहिए। गोदी के बच्चे को गोद में लेकर जप करे तो वह हर प्रकार से स्वस्थ बना रहता

है। जप करते हुए गुलाबी कमल पुष्पों से लदी हुई हंसारूढ़, शङ्ख, चक्र, धारण किये हुए गायत्री का ध्यान करना चाहिए। दूध पिलाते हुए भी जप करती रहें तो बच्चा सदाचारी होता है। तेजस्वी, चरित्रवान्, बुद्धिमान् व दीर्घजीवी सन्तान प्राप्त करने के लिए गर्भ की स्थिति में प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में सूर्य के प्रचण्ड तेज का ध्यान करते हुए गायत्री का मानसिक जप करना चाहिए।

गृहस्थ जीवन में अनेकों प्रकार के कष्ट और विपत्तियाँ आती हैं, उनके दूर, होने में जो घोर निराशा की स्थिति उत्पन्न हो रही हो तो गायत्री माँ का आँचल चाहिए। श्रद्धापूर्वक गायत्री की उपासना करने वाला कभी निराश नहीं होता है, वह निश्चय ही सफल मनोरथ होता है। स्त्रियों पर तो माता जल्दी प्रसन्न होती हैं। कोई भी कठिनाई उपस्थित होने पर वे माता को पुकारें, भगवती अवश्य उनका कल्याण करेगी। विशेष परिस्थितियों में नौ दिन का लघु अनुष्ठान अथवा चालीस दिनों का पूर्ण अनुष्ठान करना चाहिए। रजोदर्शन के दिनों में विधिवत् साधना बन्द कर देनी चाहिए। रजोस्नानके बाद पुनः आरम्भ किया जा सकता है।

कुमारी कन्याओं के लिये उत्तम वर-प्राप्ति की साधनाएँ

कुमारी कन्याओं को वैसे तो अपनी शिक्षा के उत्तरोत्तर विकास में ही सदैव संलग्न रहना चाहिए परन्तु हर कुमारी को दाम्पत्य जीवन में बँधना ही पड़ता है। इसलिए जब वह भौतिक जीवन की ऊँच-नीच समझने योग्य हो जाती है तो उनका जीवन बरबस अपने भविष्य की ओर जाता है। आर्थिक सुख सुविधा की तो प्रत्येक को इच्छा रहती ही है।। इससे भी अधिक उनकी यह कामना रहती है कि उनका जीवन साथी उनके विचारों के अनुकूल हो और सदाचारी, गुणवान् व चरित्रवान् हो ताकि आर्थिक अभाव में भी वह प्रसन्नता पूर्वक जीवन से संघर्ष कर सकें।

मनोनुकूल पति प्राप्त करने के लिए कुमारी कन्यायें प्राचीनकाल

से उपासना करती आ रही हैं। पार्वती जी ने मन चाहा वर पाने के लिए घोर तपस्या की थी। सीताजी ने भी गौरी की साधना की थी। आज भी कुमारियाँ अभीष्ट प्राप्ति के लिए भगवती गायत्री की आराधना करती हैं। नव दुर्गाओं में यह साधना विशेष रूप से लाभदायक रहती है।

स्नान करके कुश के आसन पर पूर्व की ओर बैठकर गायत्री जप करना चाहिए। जप इस प्रकार से हो कि होठ हिलते रहें परन्तु पास में बैठा-व्यक्ति भी उसे सुन न सके। मन्त्र का उच्चारण शुद्ध होना चाहिए। चौवीस मन्त्रों का जप तो नित्य प्रति होना ही चाहिए। अधिक कर सकें तो उत्तम हैं। चौबीस मन्त्रों का नित्य प्रति लेखन भी किया जा सकता है। सौभाग्य-प्राप्ति, अनुकूल वर व अच्छा परिवार प्राप्त करने में गायत्री साधना एक वरदान सिद्ध होती है।

विधवाओं के लिए आत्म साधना का विधान

विधवाओं के लिए प्रायः भौतिक जीवन का कोई विशेष आकर्षण नहीं रहता। इसे दुर्भाग्य न कहकर पारलौकिक जीवन के उत्थान के लिए शुभ अवसर मिलने का सौभाग्य कहें तो अनुचित न होगा। जो विधवा बहिनें समय का उपयोग करना जानती हैं, वे इस शेष जीवन में समुचित विकास कर सकती हैं। उदर पूर्ति के लिए संघर्ष भी करना पड़ता है। यदि इसमें कुछ सुविधा जान पड़े तो परमार्थ पथ पर आरूढ़ हुआ जा सकता है। वे आत्म संयम, विवेक, अदाचार, इन्द्रिय निग्रह और ब्रह्मचर्य पालन का व्रत लेकर साधना कर सकती है। गायत्री साधना उनके लिये विशेष रूप से उपयुक्त रहेगी क्योंकि कुविचारों के शमन और सद्विचारों के विकास के लिए गायत्री साधना सर्वश्रेष्ठ मानी जाती हैं। स्त्रियाँ निर्भय पूर्वक गायत्री उपासना कर सकती हैं। उन पर ऐसा कोई शास्त्रीय प्रतिबन्ध नहीं है। प्राचीनकाल में अनेक महिलाएँ मन्त्र द्रष्टा हुई हैं। आज भी हजारों बहिनें इस उपासना में संलग्न हैं। सभी को सन्तोषजनक लाभ की प्राप्ति हुई हैं। इस साधना

से मन में अपार शान्ति, स्थिरता, विवेक और संयम की भावना उद्दीप्त होती है और मन को अपने अनुकूल चलाने की शक्ति और सामर्थ्य उत्पन्न होती है। प्राचीन काल में माता का आँचल पकड़ने से अनेकों स्त्रियाँ ब्रह्मवादिनी, तपस्विनी और महान् विदुषी हुई हैं। आज भी तपस्या का वही फल मिल सकता है यदि उसी पवित्र भावना और लग्न से साधना की जाये।

गायत्री जप के नियम व विधि विधान इसी पुस्तक में अलग दिये जा चुके हैं, वहाँ देखना चाहिए। कम से कम १ माला का जप तो करना ही चाहिए। सुविधा हो तो ३, ५, ७, ९, ११ माला का जप नित्य किया जा सकता है। ९ दिनों में २४-२४ हजार के लघु अनुष्ठान और ४०-४० दिनों में सवा-सवा लाख जप के पुरश्चरण किये जा सकते हैं। अनुष्ठान में एक समय अन्न और एक समय दूध फलाहार लिया जा सकता है। अभ्यास हो तो अन्न का त्याग करके दूध व फलाहार पर भी रहा जा सकता है। नमक व मीठे का भी त्याग किया जा सकता है।

जपकाल में वृषभ (बैल) पर सवार, सफेद वस्त्र धारण किये हुए चतुर्भुजी, प्रसन्न मुख प्रौढ़ावस्था गायत्री माता का ध्यान करना चाहिए। चार हाथों में माला, कमण्डलु, पुस्तक व कमल शोभायमान हो रहा हो। मन इधर-उधर भटके तो माता का यह ध्यान बार-बार करना चाहिए।

जो विधवा बहिनें इसे अपनायेंगी उन्हें सधवा जीवन से भी अधिक सुख, शान्ति और सन्तोष की अनुभूति होगी।

गायत्री साधना स्त्रियों के लिए शीघ्र फलदायिनी हैं। इसे वे अपने किसी भी कार्य की सिद्धि के लिए प्रयुक्त कर सकती हैं। पारिवारिक समस्याओं के समाधान, संकट निवारण, शत्रुता के परिहार, आर्थिक व्यवस्था के लिए यह रामबाण औषधि का काम करती है। लड़की का विवाह, नौकरी, पति का विरोध आदि कोई भी संकट हो, तो

साधना से सहज निवारण हो जाता है। जिन स्त्रियों के बच्चे चरित्र-हीन, बुद्धिहीन और अर्द्ध विकसित रहते हैं, उनका उत्थान माताएँ स्वयं कर सकती हैं। शिशु को दूध पिलाते हुए माताएँ गायत्री जप करती रहें। कुछ बड़े बच्चों को गोद में बिठाकर जप करना चाहिए। जो गोदी में न बैठ सकें, उनके शरीर पर हाथों से मार्जन करते हुए जप करते रहना चाहिए।

गर्भवती स्त्रियाँ बुद्धिमान व चरित्रवान् सन्तान प्राप्त करने के लिए गायत्री के प्रचण्ड तेज़ को धारण करें। यह साधना रात्रि को सूर्यास्त होने के बाद अथवा प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में करनी चाहिए। ध्यान करें कि गायत्री के चित्र में से एक प्रचण्ड तेज़ निकल कर गर्भ में प्रविष्ट कर रहा है और उसे हर प्रकार से पुष्ट व विकसित कर रहा है। जिन स्त्रियों के सन्तान न होती हो, वह अपने कटि प्रदेश पर भीगा वस्त्र रखें और ध्यान करें कि गायत्री का प्रचण्ड तेज योनि की ओर से होता हुआ गर्भाशय तक पहुँच रहा है और वहाँ सभी निर्बलताओं का परिशोधन कर रहा है। इस ध्यान के साथ गायत्री जप करते रहना चाहिए।

जिन स्त्रियों की सन्तान रोगी रहती हैं, गर्भपात हो जाते हैं, केवल कन्याएँ ही होती हैं या और कोई दोष, दुर्गुण अथवा संकट हो तो गायत्री साधना परम सहायक सिद्ध होती है। महिलाओं के लिए तो यह साधना वरदान के रूप में परिलक्षित होती है।

—❀—

सिद्धि के प्रत्यक्ष लक्षण

साधना में सफलता या सिद्धि प्राप्त हो रही है या नहीं इसका परीक्षण करते रहना चाहिए क्योंकि सफलता न मिलने पर विधि विधान की या अन्य त्रुटियों और कमियों की ओर ध्यान देना चाहिए उन्हें दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। साधक ने जो तपस्या की है, उसके अनुरूप उसे सिद्धि मिलनी चाहिए। सिद्धि के संकेत अथवा लक्षण

प्रत्येक साधक को दिखाई देते हैं। उससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सिद्धि का मार्ग किस स्तर तक प्रशस्त हो चुका है। सिद्धि के कुछ लक्षण नीचे दिये जा रहे हैं :—

विधि विधान से साधना के नियमों का पूर्ण रीति से पालन करने पर गायत्री साधना के परिणाम सदैव आशाजनक ही निकलते हैं। गायत्री साधना कभी निष्फल नहीं जाती। जप आरम्भ करते ही साधक के मन में एक हलचल सी प्रतीत होती है, एक अद्भुत क्रियाशीलता और परिवर्तन की अनुभूति होती है जिससे लगता है कि साधना अनुकूल दिशा में चल रही है। तप का फल सिद्धि है। जितना तप किया जायेगा, उतनी सफलता मिलना सुनिश्चित है।

साधक स्वयं अनुभव करता है कि साधना आरम्भ करने के पर्व जो उसका मानसिक स्तर था, वह उससे ऊँचा उठ रहा है। विचारों, भावनाओं और वृत्तियों में परिवर्तन हो रहा है। उनमें दिन-दिन नया जीवन, नई शक्ति और स्फूर्ति आ रही है। कार्य करने की ऐसी उमंगें मन में उठती हैं, लगता है उसके शरीर के रोम-रोम में शक्ति के कोष भर गये हैं और वह शक्ति क्रियाशीलता में आन्दोलित हो रही है। यौवन में जैसा उत्साह रहता है, उससे भी कहीं अधिक सिद्ध साधक को अनुभव होता है। वह अपने कार्यों में इसी स्तर की क्रियाशीलता पाता है। आशा और विश्वास की लहरें सदैव उसके मन में हिलोरें लेती रहती हैं निराशा का कभी वहाँ पदार्पण नहीं होता।

उत्थान की कसौटी मानव के विचार हैं। इनमे परिवर्तन आने पर ही लगता है कि विकास की भूमिका प्रशस्त हो रही है। अग्नि में मैली वस्तुओं का मैल छूट जाता है। तप की अग्नि में तपने से साधक के कुविचार, कुप्रवृत्तियाँ लष्ट होने लगती हैं, विचार पवित्र और स्वच्छ होने लगते हैं, असुरता देवत्व में परिणित होने लगती है, अविवेक, अज्ञान दूर होकर विवेक और ज्ञान का उदय होता है, आत्म निरीक्षण

की क्षमता प्राप्त होती है। चरित्र में असाधारण परिवर्तन होता है, निम्न क्षुद्र क्रियाओं का उसके सामने कुछ भी मूल्य नहीं रहता। भौतिक सुख के लिए जिन छोटी-छोटी समस्याओं में उलझा रहता था, वे अब अनावश्यक सी प्रतीत होती हैं।

सिद्ध साधक को मानसिक शान्ति व आनन्द की अनुभूति होती है। ऐसा लगता है कि अमृत रस लगातार उसके अन्तःकरण में टपक रहा है जिससे वहाँ आनन्द की हिलोरें अनुभव होती रहती हैं। अशान्ति उत्पन्न करने वाली परिस्थितियाँ आती हैं परन्तु उनका कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। वह पर्वत की तरह अटल अपने कार्यों में संलग्न रहता है। स्थिरता और गम्भीरता इसके विशेष गुण होते हैं। सांसारिक दुःख, संकट व विरोध आते हैं परन्तु उसे अपने पथ से विचलित नहीं कर सकते। हर हर परिस्थिति में वह मस्त रहना जानता है। भौतिक अभाव उसे निराश नहीं कर सकते। संकट में भी वह हँसने की कला जानता है। वह सभी को अपना प्रिय मानता है, किसी से ईर्षा द्वेष व घृणा नहीं करता, सभी की ओर सहयोग का हाथ बढ़ाता है, अभावग्रस्तों की सहायता करना अपना कर्तव्य समझता है। परमार्थ वृत्ति उसके स्वभाव का एक अङ्ग बन जाती है, स्वार्थ उसे छू नहीं पाता। इस वृत्ति से प्रेरित होकर वह नैतिक, सामाजिक, धार्मिक संस्थाओं के आन्दोलन में निःस्वार्थ भाव से सहयोग देता है, समाज और राष्ट्र को घुन की तरह खाने वाली कुरीतियों और बुराइयों के विरुद्ध सशक्त आवाज उठाता है। उसके जीवन का लक्ष्य विश्व मानव का उत्थान बन जाता है। वह किसी विशेष जाति या सम्प्रदाय से ही सम्बन्धित नहीं रहता वरन् सारा विश्व ही उसका परिवार बन जाता है। समस्त मानव जाति के विकास की वह योजनाएँ बनाता है। काले गोरे या किसी विशेष देश के निवासी में वह ऊँच-नीच नहीं देखता। सभी उसे एक समान लगते हैं। सभी में ईश्वर की अनुभूति करता है। पशु-पक्षियों में

भी वह उसी आत्मा के दर्शन करता है। उनसे आत्मवत् व्यवहार करता है। पशु बलि या अन्य ऐसे ही नृशंस कार्यों का विरोध करता है।

सिद्ध साधक के मन में काम वासनाओं का ताण्डव शांत हो जाता है। वह कामोत्तेजक उपन्यासों, कहानियों और साहित्य से दूर रहता है। ऐसे साहित्य के अध्ययन में उसे कुछ भी रुचि नहीं रहती। अश्लील चलचित्रों की वह उपेक्षा ही करता है। स्त्री जाति का वह देवी तुल्य सम्मान करता है। पराई-बहू-बेटियों को वह कामुक दृष्टि से नहीं देखता। उसे ऐसे साहित्य के अध्ययन में रुचि रहती है जिससे जीवन का उत्थान होता हो, ऐसे साहित्य के प्रचार में वह अपने समय और धन का व्यय करता है। ऐसे महान् कार्य करने वाली संस्थाओं को पूर्ण सहयोग देता है।

इस युग में सर्वत्र बेईमानी का बोलबाला है परन्तु वह ईमानदारी की नीति को दृढ़ता से पकड़े रहता है। आर्थिक समस्या भले ही घोर संकट के रूप में उपस्थित हों परन्तु वह अपने स्वभाव को त्याग करने पर तैयार नहीं होता। सद्‌गुणों के विकास और अस्थिरता के लिए वह बड़े-बड़े त्याग और बलिदान देने के लिए तैयार रहता है।

सिद्धि प्राप्त साधक को आर्थिक समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ता, उनका समाधान अपने आप होता रहता है, प्रतिकूल परिस्थितियाँ भी अनुकूल बनती जाती हैं, नौकरी हो या व्यापार, उसमें सदैव उत्थान के लक्षण दिखाई देते रहते हैं, विशेष आवश्यकताओं की भी पूर्ति होती रहती है। केवल अर्थ सम्बन्धी ही नहीं, शेष भी जीवन की समस्याओं का सहज समाधान होता रहता है, अकस्मात् ऐसे सहयोग मिलते रहते हैं जिनकी कभी आशा नहीं की जा सकती थी। नेता को जन सहयोग मिलता है। लेखक को पुस्तकों के लेखन कार्य की सामग्री सहज में प्राप्त हो जाती है। कभी-कभी तो चमत्कारी रूप से सामने आ जाती

है। आशाजनक विद्वत्ता और प्रतिभा बढ़ती है। वह उच्चस्तर की पुस्तकों का निर्माण करता है, भाषण कला में प्रवीण हो जाता है। उसे ऐसा अनुभव होता है कि विचारों का स्रोत खुल गया है। उसके प्रखर मस्तक में सदैव नए विचारों का सृजन होता रहता है जिससे सभी को आश्चर्य होता है विश्वामित्र की नई सृष्टि की रचना का अभिप्राय भी यही है। साधक का असाधारण बौद्धिक विकास होता है जैसा स्वामी विरजानन्द का गङ्गा में गायत्री जप करने से हुआ है।

जो व्यक्ति आर्थिक व सामाजिक रूप से अपने को उच्च व प्रतिष्ठित समझते हैं, वह भी साधक का सम्मान करते हैं। महान् व्यक्तियों से सहज सम्पर्क हो जाता है, सिद्ध पुरुषों का सहज अनुग्रह और आशीर्वाद प्राप्त हो जाता है। उसमें स्वयं ही शाप और वरदान देने की क्षमता प्राप्त हो जाती है। यह शक्ति विकास के चिह्न हैं। कोई दुखी व्यक्ति उनके पास आता है तो वह उसका सहयोग कर सकते हैं। उसके संकट को दूर कर सकते हैं, चिन्ताओं का निवारण कर सकते हैं। किसी आसुरी प्रवृत्ति वाले व्यक्ति को दिया गया शाप भी कभी विफल नहीं जाता।

भविष्य में होने वाली घटनाओं का चित्रांकन उसके मन में होने लगता है। उसकी भविष्य वाणियाँ सत्य निकलतीं हैं। उसकी सूक्ष्म दृष्टि बड़ी पैनी हो जाती हैं। वह क्षण भर में किसी विचार का अध्ययन कर लेता है। कोई भी व्यक्ति अपने दोषों को उनसे छिपा नहीं सकता। वह चरित्रहीन व्यक्तियों को सन्मार्ग पर लाने की क्षमता रखता है। असाध्य रोगों को दूर कर देता है। वन्ध्या स्त्री की सूनी गोद को भर देता है, आर्थिक चिन्ताओं में जकड़े व्यक्ति को धनवान बना सकता है। उसका व्यक्तित्व उज्ज्वल, आकर्षक व आदर्शपूर्ण बनता जाता है। उनके सम्पर्क में आने वाला हर व्यक्ति प्रभावित होता है।

साधक के शरीर व नेत्र चमकते हैं। उसे दैवी तेज की अनुभूति होती है। त्वचा कोमल व चिकनी हो जाती है। शरीर में हल्कापन व स्फूर्ति आती है। ऐसा लगता है अन्तःकरण में नई शक्तियों का अवतरण, सृजन और विकास हो रहा है। वह अपनी क्षमता और सामर्थ्य का कायाकल्प हुआ ही समझता है क्योंकि प्रत्यक्ष रूप से असाधारण परिवर्तन प्रतीत होता हैं इस शक्ति को वह दूसरों को हस्तान्तरित भी कर सकता है, अपनी शक्ति और तप का कुछ भाग दूसरों को भी दे सकता है। यौगिक भाषा में इसे शक्तिपात कहा जाता है। उसके मन में अपार शान्ति की अनुभूति होती हैं। उसकी शक्ति की विद्युत् तरंगें पास बैठे व्यक्तियों को भी शान्ति प्रदान करती हैं।

साधक को ध्यान में अद्‌भुत् प्रकाश व ज्योतियाँ दिखाई देती है, ऐसी ध्वनियाँ सुनाई देती है जिनमें दिव्यता और आकर्षण होता है, ऐसी वाणियाँ सुनाई देती हैं जिनमें भविष्य की झलक हो।

साधक को स्वयं और उनके निकट सम्पर्क में रहने वाले व्यक्तियों को यह अनुभव होता है कि उनमें अलौकिक, अद्‌भुत, असाधारण और चमत्कारी शक्तियों का अवतरण, सृजन, विकास हुआ है जिससे असम्भव दिखाई देने वाले कार्य भी सुविधापूर्वक हो जाते हैं। सारभूत यही सिद्धि के प्रत्यक्ष लक्षण हैं।

—❀—

* गायत्री सिद्धि समाप्त *
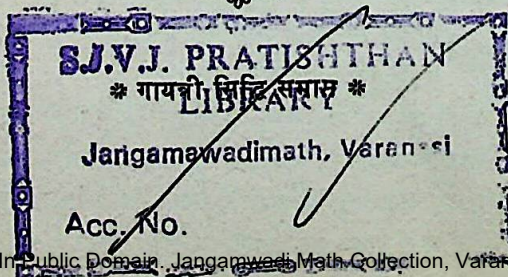
गायत्री साहित्य

१—गायत्री पुराण (भाषा) ... ३०)

२—गायत्री रहस्य ... १५)

३—गायत्री महाविद्या (भा:टी.) .. ११)

४—गायत्री सिद्धि ... १८)

५—गायत्री तन्त्र (भा.टी.) ... १५)

६—महामन्त्र-गायत्री ... १५)

७—गायत्री साधना के चमत्कार ... ९)

८—सरल गायत्री साधना ... ११)

९—गायत्री रत्नावली (भा.टी.) ... ६)

१०—स्त्रियां गायत्री उपासना क्यों करें ? ... ८)

११—गायत्री सहस्रनाम (भा.टी.) ... ५)

प्रकाक:

संस्कृति संस्थान

ख्वाजाकुतुब, वेदनगर, बरेली-२४३००३ (उ० प्र०)